ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला : अपभ्रंश ग्रन्थांक १५

कवि नरसेनदेव विरचित

सिरिवालचरिउ

[हिन्दी प्रस्तावना, अपभ्रंश मूल, हिन्दी अनुवाद, पाठान्तर
तथा शब्दावली सहित]

सम्पादन-अनुवाद
डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन, एम. ए., पी-एच. डी.

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

वीर नि० संवत् २५०० : विक्रम संवत् २०३१ : सन् १९७४
प्रथम संस्करण : मूल्य बारह रुपये

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी द्वारा

संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाके अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड़, तमिल आदि प्राचीन भाषाओंमें
उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक
जैन-साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उसका मूल और यथासम्भव
अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन भण्डारोंकी
सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-
ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी
इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो रहे हैं।

●

ग्रन्थमाला सम्पादक

आ. ने. उपाध्ये, एम. ए., डी. लिट्.
पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री

●

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय : बी/४५–४७, कनॉट प्लेस, नयी दिल्ली–११०००१
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी–२२१००५
मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी–२२१००५

●

स्थापना : फाल्गुन कृष्ण ९, वीर नि० २४७०, विक्रम सं० २०००, १८ फरवरी १९४४

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

स्व० मूर्तिदेवी, मातेश्वरी सेठ शान्तिप्रसाद जैन

JÑĀNAPĪṬHA MŪRTIDEVĪ GRANTHAMĀLĀ : Apabhraṁsa Grantha No. 12

SIRIVĀLACARIU

of

NARASENA DEVA

by

Dr. Devendra Kumar Jain, M. A., Ph. D.

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪṬHA PUBLICATION

VĪRA SAṀVAT 2500 : V. SAṀVAT 2031 : A. D. 1974
First Edition : Price Rs. 12/-

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪṬHA MŪRTIDEVĪ JAIN GRANTHAMĀLĀ

FOUNDED BY

SĀHU SHĀNTIPRASĀD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

SHRĪ MŪRTIDEVĪ

IN THIS GRANTHAMĀLĀ CRITICALLY EDITED JAIN ĀGAMIC, PHILOSOPHICAL, PAURĀṆIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS AVAILABLE IN PRĀKṚTA, SANSKṚTA, APABHRAṀŚA, HINDI, KANNAḌA, TAMIL, ETC., ARE BEING PUBLISHED IN THEIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES
AND
CATALOGUES OF JAIN BHANDARAS, INSCRIPTIONS, STUDIES OF COMPETENT SCHOLARS & POPULAR JAIN LITERATURE ARE ALSO BEING PUBLISHED.

●

General Editors

A. N. Upadhye, M. A., D. Litt.
Pt. Kailash Chandra Shastri

●

Published by

Bharatiya Jnanapitha

Head office : B/45-47, Connaught Place, New Delhi-110001
Publication office : Durgakund Road, Varanasi-221005.

●

Founded on Phalguna Krishna 9, Vira Sam. 2470, Vikrama Sam. 2000, 18th Feb., 1944

प्रधान सम्पादकीय

जिनरत्नकोश (भा. रि. इं. पूना १९४४) में श्रीपालचरित्र नामसे तीससे अधिक रचनाओंका निर्देश है। इनमें बहुसंख्या श्वेताम्बर ग्रन्थकारोंके द्वारा रचित चरित्रोंकी है। इसके अनुसार प्रथम श्रीपाल-चरित १३४१ प्राकृत पद्योंमें नागपुरीय तपागच्छके हेमतिलकके शिष्य रत्नशेखरने संवत् १४२८में रचा था जो दलपतभाई लालभाई पुस्तकोद्धार फण्डकी ओर से १९२३ ई. में प्रकाशित हुआ था। शेष सब चरित्र इसके पश्चात् प्रायः १५वीं-१६वीं शताब्दीमें रचे गये हैं।

दिगम्बर परम्परामें संस्कृतमें कई श्रीपालचरित हैं—यथा सकलकीर्ति रचित, ब्रह्म नेमिदत्त रचित, विद्यानन्दि भ. रचित, शुभचन्द्र रचित आदि। प्राकृतमें कोई रचना नहीं मिली। अपभ्रंशमें दो रचनाएँ उपलब्ध हैं—एक नरसेन रचित और दूसरी रइधू रचित। इनमें-से प्रथम रचना प्रथम बार हिन्दी अनुवादके साथ प्रकाशित हो रही है।

इतनी रचनाओंसे अनुमान किया जा सकता है कि श्रीपालका चरित कितना लोकप्रिय रहा है। किस तरह एक राजा अपनी जिदके कारण अपनी पुत्रीका विवाह एक कुष्टीके साथ कर देता है। किस तरह राजपुत्री मयणासुन्दरी अपने पिताकी आज्ञाका पालन करते हुए कुष्टी पतिको स्वीकार करती है और मुनि-राजके उपदेशसे सिद्धचक्रविधानके द्वारा अपने पतिको उसके सात सौ सुभट सेवकोंके साथ नीरोग करती है और उसके बाद श्रीपालपर जो सुख-दुःखकी घटाएँ आती-जाती हैं वे सब अत्यन्त रोचक और शिक्षाप्रद हैं।

श्रीपालचरितकी इस आकर्षकता और लोकप्रियताका एक प्रमुख कारण है सिद्धचक्रविधानके द्वारा श्रीपालका आरोग्यलाभ। गृहस्थाश्रममें सुख-दुःख लगा ही रहता है। धार्मिक जनसमाज दुःखकी निवृत्तिके लिए धर्माचरणका भी आश्रय लेता है। सिद्धचक्रविधानके इस महत् फलने धार्मिक जनताको इस ओर आकृष्ट किया और इस तरह मैनासुन्दरीके साथ श्रीपालका चरित लोकप्रिय हो उठा। ब्र. नेमिदत्तने तो श्रीपालचरितको 'सिद्धचक्रार्चनोत्तमं' कहा है। श्रुतसागर सूरिने भी अन्तमें लिखा है—सिद्धचक्रव्रतसे अभ्युदय प्राप्त हुआ।

जिनरत्नकोशमें 'सिद्धचक्रमाहात्म्य' नामसे भी कुछ ग्रन्थोंका निर्देश है और वे प्रायः श्रीपालचरित ही हैं। रत्नशेखरके श्रीपालचरितका भी उपनाम सिद्धचक्रमाहात्म्य है। इससे हमारे उक्त कथनकी पुष्टि होती है।

ब्रह्मदेवने (११-१२वीं शताब्दी) द्रव्यसंग्रहकी टीकामें पंचपरमेष्ठीका विस्तृत स्वरूप 'सिद्धचक्रादि-देवार्चनविधिरूपमन्त्रवादसम्बन्धि पञ्चनमस्कार ग्रन्थ'में देखनेका निर्देश किया है। यह ग्रन्थ तो अनुपलब्ध है किन्तु इससे यह स्पष्ट होता है कि सिद्धचक्रविधानकी परम्परा प्राचीन है। संस्कृत सिद्धपूजाकी स्थापनामें आद्यश्लोक इस प्रकार है।

ऊर्ध्वाधोरयुतं सबिन्दु सपरं ब्रह्मस्वरावेष्टितं
वर्गापूरितदिग्गताम्बुजदलं तत्सन्धितत्त्वान्वितम्।
अन्तःपत्रतटेष्वनाहतयुतं ह्रीङ्कारसंवेष्टितं
देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभकण्ठीरवः॥

यह सिद्धचक्रयन्त्रका ही चित्रण है। नरसेनने अपने श्रीपालचरितमें जो इसका चित्रण किया है उसमें चक्रेश्वरी ज्वालामालिनी दस दिग्पाल आदिको भी स्थान दिया गया है। तथा जब धवलसेठ श्रीपालको समुद्रमें गिराकर उसकी पत्नी रत्नमंजूषाका शील हरना चाहता है और रत्नमंजूषा सहायताके लिए पुकारती

है तो मणिभद्र समुद्रको हिलाकर जहाज उलट देता है, चक्रेश्वरी देवी अपना चक्र चलाती है, ज्वालामालिनी आग लगाती है, क्षेत्रपाल कुत्तेकी सवारीपर आता है। इस प्रकार ग्रन्थकारने सब देवी-देवताओंके करतब दिखलाये हैं। अतः सिद्धचक्रयन्त्रमें भी इन्हें स्थान दिया गया है जो उस समयमें देवी-देवताओंके बढ़ते हुए प्रतापका सूचक है।

सिद्धचक्रयन्त्र भी लघु और बृहत् दो हैं। बृहत्में पंचपरमेष्ठीका उल्लेख रहता है जैसा द्रव्यसंग्रहकी टीकासे भी व्यक्त होता है।

आश्चर्य इतना ही है कि श्रीपालकी रोचक कथा कथाकोशोंमें या पुराणोंमें वर्णित आख्यानोंमें देखनेमें नहीं आती। इसका उद्गम स्थानका भी पता ज्ञात नहीं हो सका।

प्रो. श्री देवेन्द्रकुमारने हिन्दी अनुवादके साथ इसका सम्पादन किया है। उन्होंने अपनी प्रस्तावनामें इसका तुलनात्मक परिचयादि दिया है।

हम भारतीय ज्ञानपीठके संस्थापक दानवीर साहु शान्तिप्रसाद जैन और अध्यक्षा श्रीमती रमा जैनके आभारी हैं जिनकी उदारता तथा साहित्यानुरागवश प्राचीन साहित्य सुसम्पादित होकर प्रकाशमें आ रहा है मन्त्री बा. लक्ष्मीचन्दजी भी धन्यवादके पात्र हैं जो इस कार्यको प्रगति देनेमें संलग्न रहते हैं।

—*आ. ने. उपाध्ये*
—*कैलाशचन्द्र शास्त्री*

विषय-सूची

(१७) मुनि द्वारा सिद्धचक्र विधानका उपदेश । (१८) कोढ़ियोंका गन्धोदकसे रोग दूर होना । (१९) राजा पयपालकी प्रसन्नता, उसका समाधिगुप्त मुनिके पास जाना । (२०) श्रीपालका विदेश यात्राका प्रस्ताव । (२१) मैनासुन्दरी द्वारा विरोध व साथ जानेका निश्चय । (२२) मैनासुन्दरी व कुन्दप्रभाका विदाई सन्देश । (२३) मैनासुन्दरीका विदाई दृश्य । (२४) माँका उपदेश । (२५) श्रीपालका प्रस्थान, वत्सनगरमें धवलसेठसे परिचय। (२६) धवलसेठके जहाजों का फँसना और श्रीपाल द्वारा निकालना। धवलसेठका उसे पुत्र मानना । (२७) जहाजों-का कूच, लाखचोरका आक्रमण, धवलसेठका लड़ना । (२८) धवलसेठका वन्दी होना । (२९) कुमार द्वारा उसे छुड़ाना, लाखचोर द्वारा उपहार । (३०) उपहारोंका वर्णन, जहाजोंका प्रस्थान । (३१) हंसद्वीप पहुँचना, हंसद्वीपका वर्णन । (३२) राजा कनककेतुके परिवारका वर्णन, सहस्रकूट जिनमन्दिरका चित्रण । (३३) नगरका वर्णन। (३४) श्रीपालका सहस्रकूटमें जाना और वज्र किवाड़का खोलना। (३५) जिन-भक्ति । (३६) कनककेतुका सपत्नी मन्दिर जाना और रत्नमंजूपासे श्रीपालका विवाह, विवाहका वर्णन । (३७) रत्नमंजूपाके साथ श्रीपालका विडग्रह पहुँचना, धवलसेठका मनमें कूढ़ना, श्रीपाल द्वारा नववधूको अपना परिचय । (३८) प्रस्थान, धवलसेठका रत्नमंजूपापर आसक्त होना, उसका वर्णन । (३९) मन्त्री द्वारा सेठकी सहायता । (४०) घूस देकर श्रीपालका समुद्रमें गिराया जाना । (४१) श्रीपाल द्वारा जिननामका उच्चारण, जिननामकी महिमा । (४२) धवलसेठका कपटाचार, रत्नमंजूपाका विलाप । (४३) रत्नमंजूपा का विलाप । (४४) सखीजनोंका समझाना, धवलसेठकी दूतीका आना, सेठकी कुचेष्टा और जलदेवीगणका आना। (४५) देवों द्वारा धवलसेठकी दुर्दशा । (४६) जिननामके प्रभावसे श्रीपालका समुद्र पार करना और दलवट्टण नगर पहुँचना, राजा धनपालकी लड़की गुणमालासे उसका विवाह । (४७) विवाहका वर्णन । १

दूसरी सन्धि (१) श्रीपालका घरजँवाई होकर रहना, धवलसेठका राजदरवारमें पहुँचना, राजा द्वारा सम्मान, श्रीपालको देखकर सेठका माथा ठनकना । (२) साथियोंसे कूटमन्त्रणा और डोमोंकी सहायतासे षड्यन्त्र रचना । (३) डोमोंका प्रदर्शन करना और श्रीपालको अपना सम्बन्धी वताना, धनपालका श्रीपालपर क्रुद्ध होना । (४) तलवरका श्रीपालको वाँधना और दूतीका गुणमालाको खबर देना, गुणमालाका श्रीपालके पास आना । (५) गुणमालाका रत्नमंजूपाके पास जाना, रत्नमंजूपा द्वारा सही वात वताना, धनपालका श्रीपालसे क्षमा माँगना । (६) श्रीपालका अपना परिचय देना, गुणमाला और उनका मिलन । (७) रत्नमंजूपासे भेंट, धवलको वचाना और उससे हिस्सा लेना । (८) एक वणिग्वरका आना और उसका कुण्डलपुर जाना । (९) वहाँ चित्रलेखा आदि सुन्दरियोंसे विवाह । (१०) एक दूतका आगमन और श्रीपालका कंचनपुर जाना और वहाँ विलासमतीसे विवाह, वहाँसे दलवट्टणके लिए कूच । (११) श्रीपालका आना, कोंकण जाना, समस्यापूर्ति द्वारा सौभाग्यगौरी आदिसे विवाह । (१२) मल्लिवाड, तेलंग आदि देशोंसे होकर दलवट्टण वापस आना और रातमें उज्जैन जानेके लिए सोचना । (१३) उज्जैनके लिए प्रस्थान । (१४) मैनासुन्दरी और कुन्दप्रभाकी वातचीत, श्रीपालका आकर मिलना । (१५) छावनीमें जाकर मैनासुन्दरीका अन्तःपुरसे मिलना, पिताके सम्बन्धमें उसका प्रस्ताव । (१६) श्रीपालका दूत भेजना । (१७) पयपालका शर्त मानना, सम्मानपूर्वक श्रीपालसे उसका मिलना, अनेक चीजें भेंटमें देना, श्रीपालका सम्मानपूर्वक नगरमें प्रवेश । (१८) श्रीपालको चम्पापुरीका स्मरण होना और चतुरंग सेना सहित

दो शब्द

कथ्यकी सम्प्रेपणीयताकी दृष्टि से 'सिरिवाल चरिउ' वेजोड़ काव्य है। श्रीपाल जैसे पुराण काव्यके 'नायक' को दो सन्धियोंके लघु काव्यमें इस प्रकार चित्रित कर देना कि पौराणिक गरिमा और मानवी संवेदना एक साथ वनी रहे, यह कवि नरसेन के ही वूतेका काम था।

लम्वे अरसेसे सोच रहा था कि किसी 'अपभ्रंश-चरित-काव्य' का सम्पादन करूँ। मुख्य कठिनाई थी, किसी उपयुक्त और महत्त्वपूर्ण पाण्डुलिपिकी प्राप्तिकी। इसे हल करनेका श्रेय है, डॉ. कस्तूरचन्द्र कासलीवाल जयपुरको। उन्होंने एक नहीं—तीन-तीन प्रतियाँ 'महावीर भवन' जयपुरसे भिजवानेकी व्यवस्था की।

जिस समय मैं सम्पादन कर रहा था, अचानक एक साथ कई आपत्तियाँ आयीं और सारा काम अस्तव्यस्त हो गया। परिस्थितियोंसे जूझनेके वाद जो समय वचता, मैं उसमें सम्पादन करता रहता, यह सोचकर कि यदि श्रीपाल लकड़ीके टुकड़ेके सहारे समुद्र तिर सकते हैं तो क्या मैं इस काममें लगे रहकर वाधाओंसे उत्पन्न मानसिक तनावको कम नहीं कर सकता? आपत्तियाँ गिनानेसे लाभ नहीं क्योंकि पाठकोंको श्रीपालके जीवनमें ही संसारका इतना उतार-चढ़ाव मिल जायेगा कि कहीं उनका मन संवेदनासे सक्रिय हो उठेगा और कहीं वे भाग्यकी विडम्वनाको कोसेंगे, कहीं करुणासे उनकी आँखें नम हो उठेंगी और कहीं धवलसेठके काले कारनामे उनके हृदयको सफेद वनायेंगे। श्रीपाल और धवलसेठ जीवनके दो पक्ष हैं—एक सत् प्रवृत्तिका प्रतीक है और दूसरा असत् का।

'सिरिवाल चरिउ'की पाण्डुलिपियाँ सोलहवीं सदीके दूसरे और तीसरे चरणके वीचकी उपलव्ध हैं। यह वह समय है, जव आधुनिक भारतीय आर्यभापाओंका न केवल विकास हो चुका था, वल्कि उसमें साहित्यकी रचना भी होने लगी थी। इन नयी-नयी भाषाओंमें जैन साहित्य भी मिलता है। परन्तु इस समय, अपभ्रंश-चरित काव्यकी धारा भी चली आ रही थी। अतः परवर्ती भाषाओंके विकासके विचारसे इस प्रकारकी साहित्य कृतियोंका क्या महत्त्व और सीमाएँ होनी चाहिए? यह एक विचारणीय प्रश्न है। कतिपय जैन लेखक १८वीं सदी तक अपभ्रंशकी 'चरित शैली'को एक काव्यरूढ़िके रूपमें अपनाये रहे। युग और नयी भाषाओंके प्रभावसे आलोच्य काव्यकी भापामें मिलावट न होना आश्चर्यकी वात होती। इसमें दो मत नहीं कि इसकी भापा, तथाकथित परिनिष्ठित अपभ्रंश नहीं है; परन्तु उसमें उतनी अव्यवस्था और अप्रामाणिकता भी नहीं है जो हमें पृथ्वीराज रासोकी भापामें दिखाई देती है। पण्डित नरसेन द्वारा लिखित पाण्डुलिपि न मिलनेसे भी मूल पाठोंका निश्चय और अर्थ करनेमें वहुत कठिनाई हुई है। प्रतिलिपिकारोंने ह्रस्व-दीर्घ, शब्दस्वरूप, अनुस्वार, अनुनासिकध्वनि य् व् श्रुतिके प्रयोगमें मनमानी की है। सम्पादनके लिए मुझे पहले दो प्रतियाँ मिलीं। उनके आधारपर मैंने पूरी रचनाका सम्पादित पाठ तैयार कर लिया। वादमें ज्ञानपीठके विद्वान् सम्पादकोंने सुझाव दिया कि एक और प्रतिका उपयोग करना जरूरी है। फलस्वरूप तीसरी प्रति उपलव्ध कर दुवारा 'सम्पादित पाठ' प्रस्तुत किया। फिर भी उसमें भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा निर्धारित आदर्शपाठकी दृष्टिसे कुछ कमियाँ रह गयीं। फलतः तीसरी वार पुनः पूरी प्रतिको सँवारना पड़ा। यह सव हो चुकनेके वाद, जो प्रश्न मुझे खटकता रहा वह यह कि 'सोलहवीं सदी'के अपभ्रंशचरितकाव्यकी भापा और पाठोंमें जो मिलावट या नयापन है, उसके वारेमें क्या किया जाये। संक्रमणयुगके ऐसे ग्रन्थोंके सम्पादनके लिए वही नियम और प्रतिमान उपयोगी नहीं हो सकते जो १०वीं सदीके अपभ्रंशचरित काव्योंके सम्पादनके लिए मान्य किये जा चुके हैं और जिनके आधारपर विविध अपभ्रंशचरितकाव्य सम्पादित हुए हैं, सम्भवतः यह समस्या ज्ञानपीठके सम्पादकोंके मनमें भी थी और श्रद्धेय डॉ. हीरालाल जीने न केवल पूरे मूलपाठका संशोधन किया वल्कि कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव भी दिये: इनमेंसे कुछ सुझाव निम्नलिखित हैं।

१. यह कि आलोच्य ग्रन्थ, उस प्रतिमित और नियमित मध्यकालीन आर्यभाषामें रचित नहीं है कि जिसमें स्वयम्भू और पुष्पदन्तने अपने काव्यकी रचना की है, यह नव्य भारतीय आर्यभाषाके शब्दों-रूपों और अभिव्यक्तियोंसे मिश्रित है, इसका अपना महत्त्व है, क्योंकि यह संक्रमणकालका प्रतिनिधित्व करता है।

२. परन्तु दोनों माध्यमोंकी विशेषताओंको सुरक्षित रखनेके लिए जरूरी है कि लिखावट की चूकों और भूलोंसे उन्हें अलग रखा जाये।

३. मैंने टेक्स्टका संशोधन कर दिया है और कहीं-कहीं अधिक संगत पाठ भी सुझाया है।

४. इस बातका निर्णय करना जरूरी है कि क्या कतिपय 'मध्यग व्यंजनों'को उसी रूपमें रखनेकी अनुमति दी जाये कि जिस रूपमें वे प्रयुक्त हैं। परन्तु काव्य भारतीय आर्यभाषाकी प्रवृत्ति उन्हें सुरक्षित रखनेकी है ? 'ब' और 'व' का निर्णय संस्कृत परम्पराके अनुसार किया जाये।

५. अपभ्रंशचरितकाव्यके सम्पादनके लिए जो आदर्श स्थापित हैं उन्हें सुरक्षित रखा जाये। मैं इन्हें इसलिए महत्त्व देता हूँ क्योंकि भाषाविज्ञानके दृष्टिसे वे मूल्यवान् हैं और सम्पादित ग्रन्थको विद्वानोंके बीच सम्माननीय बनाते हैं।

जैन साहबके उक्त निर्देशोंसे मेरा मानसिक बोझ कुछ कम हुआ। उनके अधिकतर संशोधन विभक्तियों से सम्बन्धित हैं। आलोच्य कविने प्रायः निर्विभक्तिक पदोंका प्रयोग किया है, यह बात तीन पाण्डुलिपियोंमें समान रूपसे दिखाई देती है, डॉ. जैनने ऐसे पदोंमें विभक्ति जोड़ दी है (बशर्ते ऐसा करते समय छन्दोभंग न हो) मैंने इसे मान्यता दी है 'सिरिपाल'की जगह 'सिरिवाल' रखनेमें मैंने उनके निर्देशका पालन किया है, परन्तु बहुतसे ऐसे स्थल हैं कि जहाँ नयी भाषाओंके ठेठ प्रयोग और विभक्ति चिह्न हैं, उन्हें डॉ. जैनने ज्योंका त्यों रहने दिया है। मैंने भी ऐसे प्रयोगोंसे छेड़छाड़ नहीं की। जहाँ तक मध्यम व्यंजनोंका प्रश्न है, हम इस भाषा वैज्ञानिक तथ्यको नहीं भूल सकते हैं कि स्वयम्भू और पुष्पदन्तमें भी इनके प्रयोगके अपवाद नहीं हैं, अन्तर केवल इतना है कि प्राचीन अपभ्रंश कवि अपनी अभिव्यक्ति सशक्त बनानेके लिए संस्कृतकी ओर बढ़ते थे जबकि १६वीं सदीके अपभ्रंश कवि आधुनिक आर्यभाषाओंकी ओर। जब कवि अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए संघर्ष करता है तो उसमें ऐसा मिश्रण (Confusion) होगा। फिर भी डॉ. जैनके सुझावोंका, पाठोंके प्रस्तुतीकरणमें एकरूपता और प्रामाणिकताकी दृष्टिसे बहुत बड़ा महत्त्व है, इस महत्त्वको क्षति न पहुँचाते हुए, अधिक सन्दिग्ध और अस्पष्ट पाठोंकी पुनर्रचना करनेमें भी, मुझे इससे बड़ी सहायता मिली है। इस प्रयोगमें जो कुछ सीखनेको मिला है, वह भविष्यमें काम आयेगा। डॉ. जैन साहबके अतिरिक्त डॉ. ए. एन उपाध्येने भी जो सुझाव दिये हैं उनको पूरा कर दिया गया है। इसके बाद भी जो स्थल समझे नहीं जा सके, उन्हें मूलरूपमें रख दिया गया है प्रश्नवाचक चिह्नके साथ, जिससे भविष्यमें उनपर विचार की सम्भावना बनी रहे। 'सिरिवाल चरिउ'की एक विशेषता यह है कि उसकी रचना हिन्दी प्रदेशमें हुई है और उसकी पाण्डुलिपियाँ भी इसी प्रदेशमें लिखी गयी हैं। इससे यह अनुमान कि 'अपभ्रंशचरितकाव्य' हिन्दी प्रदेशके किनारोंपर लिखा गया, निरस्त हो जाता है।

भारतीय ज्ञानपीठके उक्त मान्य विद्वान् सम्पादकों (डॉ. हीरालाल जैन और डॉ. ए. एन. उपाध्ये) के प्रति पूर्ण कृतज्ञता व्यक्त करनेके बाद, डॉ. कस्तूरचन्द्र कासलीवाल जयपुरके प्रति अपना आभार व्यक्त करना मेरा पुनीत कर्तव्य है, उन्होंने 'सिरिवाल चरिउ'की ३ पाण्डुलिपियाँ भेजनेकी उदारता दिखायी। आचार्य पण्डित बाबूलालजी शास्त्री इन्दौर, डॉ. राजाराम जैन, मगधविश्वविद्यालय, श्री मदनलाल जैन एम. ए. इन्दौरका भी मैं आभारी हूँ कि इन्होंने सन्दर्भ ग्रन्थोंको उपलब्ध करानेमें सहायता की। 'प्रेस कापी' तैयार करनेका श्रेय मेरे छात्र श्री दीनानाथ शर्मा एम. ए. इन्दौरको है वह मेरे साधुवादके पात्र हैं।

३ अप्रैल '७१
११४ उषा नगर
इन्दौर-२

—देवेन्द्रकुमार जैन

प्रस्तावना

कवि नरसेन

पण्डित नरसेनके समय और जीवनके वारेमें कोई जानकारी नहीं मिलती, सिवाय इसके कि पाण्डु-लिपिकारोंने लिखा है—"इह सिद्धकहाए महाराय सिरिवालमदनासुन्दरिदेविचरिए पण्डित नरसेन देव-विरइए; इहलोय-परलोय सुहफल कराए।" अथवा कवि कहता है—

"सिद्ध-चक्क-विहि रइय मइं णरसेणु णइ विय सत्तिए।"

कवि 'दिगम्बर मत' का उल्लेख वार-वार करता है। वह अपनी काव्यकथाके स्रोतके विषयमें चुप है, लेकिन उसने 'सिद्धचक्र मन्त्र' की रचनामें जो दोनों परम्पराओंका समन्वय किया है, उससे लगता है कि वह विचारोंमें उदार था। सिद्धचक्र विधानकी पूजा और पूजा विधिमें कुछ वातें वीसपन्थी मतसे मिलती-जुलती हैं। अतः यह असम्भव नहीं कि वे वीसपन्थके माननेवाले रहे हों। उपलब्ध सामग्रीके आधारपर नरसेनके सम्बन्धमें इससे अधिक कुछ कहना सम्भव नहीं। 'सिरिवाल चरिउ' की पहली प्रति वि. सं. १५७९ (ईसवी १५२२) की है। इससे अनुमान है कि पण्डित नरसेन अधिकसे अधिक १६वीं सदीके प्रारम्भमें अपने काव्यकी रचना कर चुके थे, और उनका समय १५वीं और १६वीं सदियोंके मध्य माना जा सकता है। अभी तक नरसेनकी यही एक रचना मिली है।

प्रति-परिचय

['क' प्रति]—'सिरिवाल चरिउ' की कवि नरसेन द्वारा लिखित पाण्डुलिपि नहीं मिल सकी। प्रति-लिपिकारोंमेंसे भी किसीने यह उल्लेख नहीं किया कि उनकी आधारभूत पाण्डुलिपि क्या थी ? तीनों प्रतियाँ मुझे डॉ. कस्तूरचन्द्र कासलीवाल महावीर भवन, जयपुरसे प्राप्त हुई हैं। इनमें पहली 'क' प्रति है। इसका आकार (लम्वाई ११.३" और चौड़ाई ४.७") है। प्रतिकी लिखावट साफ सुथरी है। 'घत्ता' और 'कड़वक'-की संख्या लाल स्याहीमें है, जवकि शेष काव्य गहरी काली स्याहीमें। पन्नोंके वीचमें चौकोर जगह खाली है। पन्नेके नीचे या ऊपर सिरेपर, संख्या वताकर कठिन शब्दोंके अर्थ या पर्यायवाची शब्द दिये हुए हैं। 'वर्तनी' के सम्बन्धमें कोई निश्चित नियम नहीं है। एक प्रकारसे उसमें अराजकता है। ग्रन्थके अन्तमें प्रति-लिपिकारने इस प्रकार लिखा है—

"इति पण्डित श्रीनरसेन-कृत 'श्रीपाल' नाम शास्त्रं समातं। अथ संवत्सरे स्मिन् श्री विक्रमादित्य राज्ये संवत् १५९४ वर्ष भादौ वदि रविवासरे, मृगशिरनक्षत्रे, साके १४४९ गत पद्माद्वयो मध्य मन्मथ नाम संवत्सरे प्रवर्त्तते। सुलितान मीर वव्वर राज्य प्रवर्त्तमाने। श्री कालपी राज्य आलम साहि प्रवर्तनमाने, दौलतपुर शुभस्थाने श्रीमूलसंघे वलाकार गणे सरस्वती गच्छे, कुंदकुंदचार्यान्वये भट्टारक श्री पद्मनन्दि देव, तत्पट्टे श्री जिनचन्द्रदेव तदाम्नाये वलं वकंचुकान्वय जद्व से समुद्भव, जिन चरणकमल चंचरीकान्, दानपूजा-समुद्यतान् परोपकार विरतान्, प्रशस्त चित्तान् साधु श्री थेद्यु तद्भार्या धर्मपत्नी सुशीला साध्वी-अमा। तस्योदर समुत्पन्न जिन चरणाराधन तत्परान् सम्यक्त्व—प्रतिपालकान् सर्वज्ञोक्त—धर्म रंजित चेतसान्, कुटुम्वभार-धर धुरान्, साधु श्री नीकमु तद्भार्जा सीलतोय-तरंगिनी हीरा, तयो पुत्र सर्वगुणालंकृत, देवशास्त्र गुरू विनयवंत, सर्वजीव दया प्रतिपालकान्, उद्धरणधीरान्, दान श्रेयांस औंतारान् आभार-मेरान्, परमश्रावक महासाधु श्री महेश सुतेनेदं श्रीपालु नाम शास्त्रं कर्मक्षय-निमित्तं लिखायितम्॥ शुभं भूयात्। मागल्यं ददातु। लिपितं पंडित वीरसिंधु।

(१) तैलं रक्षं जलं रक्षं रक्षं शिथिलवन्धनम् ।
मुक्तहस्तेन दातव्यं एवं वदति पुस्तकम् ॥
ज्ञानवान् ज्ञानदानेन निर्भयोऽभयदानतः ।
अन्नदानात् सुखी नित्यं नित्यं निर्व्याधि भेषजाभवेत् ॥
"शुभं भूयात्" ।

पाण्डुलिपिकार पण्डित वीरसिन्धु का कहना है कि उन्होंने वि. सं. १५९४ (ईसवी १५३७) भादों वदी रविवारको यह समाप्त की। उस समय सुलतान मीर बावरका राज्य था और कालपीमें आलमशाही की हुकूमत थी। उसके अन्तर्गत दौलतपुरमें इसे समाप्त किया। श्री मूलसंघ वलात्कार गण सरस्वतीगच्छ। कुन्दकुन्दाम्नाय। उसके अन्तर्गत भट्टारक श्री पद्मनन्दी देव जिनचन्द्र देव। उसके आम्नायमें लम्बकंचुक वंशके महेशने कर्मक्षयके लिए यह शास्त्र लिखाया और पण्डित वीरसिन्धुने इसे लिखा।

['ख' प्रति]—दूसरी 'ख' प्रति का आकार है—लम्बाई ११ इंच और चौड़ाई ४ इंच, गहरी काली स्याही। लिखावट 'क' प्रति-जैसी सुन्दर नहीं है, एक-सी भी नहीं है। 'वर्तनी'में अपेक्षाकृत अधिक अनियमितताएँ हैं। पाण्डुलिपिकारकी प्रशस्ति इस प्रकार है—

संवत् १५७९ वर्षे मागसिर मासे द्वैजदिवसे, बुधवारे रोहिणी नक्षत्रे, सिद्धनामजोगे, टोंकपुरनाम नगरे, पार्श्वनाथ चैत्यालये श्रीमूलसंघे····सरस्वती गच्छे वलात्कारगणे भट्टारक श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये, तस्य पट्टे श्री पद्मनन्दिदेव तस्य पट्टे श्री शुभचन्द्रदेव, तस्य पट्टे भट्टारक श्री जिनचन्द्र देवाः तस्य पट्टे भ. प्रभाचन्द्र देवाः। तदाम्नाये खण्डेलवालन्वये ॥ टोंग्या गोत्रे ॥ सन्धरम सी। तस्य भार्या पातु। तयो पुत्र चत्वारि। प्रथम पुत्र संती कै ॥ तस्य भार्या गल्ली। तत्पुत्र हामा। दुतीय पुत्र जाल्हा। तृतीय पुत्र नेता। चतुर्थ पुत्र श्रीवन्त साह हामा। तस्य भार्या सोना। तत्पुत्र तेजसी। साह जाल्हा। तस्य भार्या पद्मा। तत्पुत्र सहसमल्ल साह नेता। तस्य भार्या ऊदी। तत्पुत्र चुचमल्ल। द्वितीय पुत्र पद्मसी। तृतीय पुत्र रणमल : सं. लाषा। तस्य भार्या रोहिणी। तत्पुत्रं गुणराज। दुतीय कारु। तृतीय साह रामदास। तस्य भार्या रयणादे, तत्पुत्र साह कुन्त। तस्य भार्या धरम। तत्पुत्र गोइन्दे। साह वस्तु। तस्य भार्या नीक। साहं नीक। साह डुंगर। तस्य भार्या पेतु। तत्पुत्र चाणा। तस्य भार्या चादण दे। एतेसां मध्ये इदं शास्त्रं लिपायतं। श्रीपाल चरित्रं। वाई पदमसिरि जोग्य दातव्यं। ज्ञानवान ज्ञान दानेन निर्भयो। भयदानतः अन्नदानात् सुषी नित्यं निर्व्याधि भेषजा भवेत्। शुभं भवतु।

'ख' प्रति इस प्रकार टोंक (राजस्थान) में लिखी गयी वि. सं. १५७९ (ईसवी १५२२) मगसिर द्वितीया को पार्श्वनाथ चैत्यालय में साह डूंगर, उसकी पत्नी खेतू, उसका पुत्र चाणा, उसकी पत्नी चादन दे, इनके बीच यह शास्त्र लिखा गया। लिखनेवाले ने अपना नाम नहीं दिया। इस प्रति की विशेषता यह है कि इसके कई पाठोंसे आधारभूत पाठोंको समझनेमें बहुत बड़ी सहायता मिली।

['ग' प्रति]—"ओं वीतरागाय" से प्रारम्भ होती है। दोनों सन्धियोंकी कड़वक संख्या अलग-अलग है। पहलीमें ४६ कड़वक हैं जबकि दूसरीमें ३६। पहली सन्धिकी समाप्तिपर निम्नलिखित उल्लेख है :

"इय सिद्धि-चक्क-कहाए महाराय सिरिपाल मयणासुन्दरि देविचरिए, पंडितसिरिणरसेण विरइए इह लोय परलोय सुहफल-कराए रोर-घोर कोढ़वाहि भवानुभव-णासणाए मयणासुन्दरि-रयण-मजूसा गुणमाला-विवाह-लाभो णाम पढमो संधि परिछेओ समत्तो।"

अन्तिम प्रशस्ति है—

"अथ प्रसस्ति लिख्यते। यथा ग्रन्थ संख्या ९२५ अथ संवत्सरे नृपति विक्रमादित्य राज्ये। संवत् १५९० वर्षे, माघ वदि आठ बुधे, श्रीमूल संघे वलात्कार गणे, सरस्वती गच्छे, कुंदा कुंदा चार्चानुये, भट्टारक श्रीपद्मनंदीदेव तत्पट्टे, भट्टारक श्रीशुभचन्द्रदेव तत्पट्टे, भट्टारक श्रीजिनचन्द्रदेव तत्पट्टे।" भा. पृ. ४८

अन्तिम प्रशस्ति अधूरी होनेके कारण प्रशस्तिकारके विषयमें कुछ भी जानकारी नहीं मिलती। कुल

पन्ने ४८ हैं। घत्ता, कड़वक संख्या और समाप्ति बतानेके लिए लाल स्याहीका प्रयोग है। लिखावट स्वच्छ और स्पष्ट। सम्पादकके लिए उपलब्ध प्रतियों में यह सबसे बादकी प्रति है।

श्रीपालचरित कथाकी परम्परा

'श्रीपाल' की कथा 'सिद्धचक्र विधान' या 'नवपद मण्डल'की पूजाविधिकी फलश्रुतिसे सम्बद्ध है। 'श्रीपाल'पर आधारित पहली रचना प्राकृतमें 'श्रीपाल चरित्र'है। डॉ. हीरालाल जैनने लिखा है—"रत्नशेखर सूरि कृत 'श्रीपाल चरित्र' में १३४२ गाथाएँ हैं, जिसका प्रथम संकलन वज्रसेनके पट्टशिष्य प्रभु हेमतिलक सूरिने किया और उनके शिष्य हेमचन्द्र साधुने वि. सं. १४२८ (ई. १३१७) में इसे लिपिबद्ध किया। यह कथा 'सिद्धचक्र विधान' का माहात्म्य प्रकट करनेके लिए लिखी गयी है। उज्जैनकी राजकुमारीने अपने पिताकी दी हुई समस्याकी पूर्तिमें अपना यह भाव प्रकट किया कि प्रत्येकको अपने पुण्य-पापके अनुसार सुख-दुख प्राप्त होता है। पिताने इसे अपने प्रति कृतघ्नताका भाव समझा और क्रुद्ध होकर मयनासुन्दरीका विवाह श्रीपाल नामके कुष्ट रोगीसे कर दिया। मयनासुन्दरीने अपनी पतिभक्ति और सिद्धपूजाके प्रभावसे उसे अच्छा कर लिया। श्रीपालने नाना देशोंका भ्रमण किया तथा खूब धन और यश कमाया।[1] ग्रन्थके बीच-बीचमें अनेक अपभ्रंश पद्य भी आये हैं और नाना छन्दोंमें स्तुतियाँ निबद्ध हैं। रचना आदिसे अन्त तक रोचक है।

इसके बाद अपभ्रंशमें दो 'सिरिवाल चरिउ' उपलब्ध है। एक कवि रइधू कृत, जिसका सम्पादन डॉ. राजाराम जैन, आरा कर चुके हैं और जो शीघ्र प्रकाश्य है। दूसरा पं. नरसेनका। रइधूका समय वि. सं. १४५०-१५३६ (ई. १३९३-१४७९) है। निश्चित ही नरसेन उसके बादके हैं।

'श्रीपाल रास' गुजराती भाषामें है। प्रारम्भमें लिखा है[2]—"श्रीपालराजानः रासः। इसकी चौथी आवृत्ति अक्तूबर १९१० में हुई थी। प्रकाशक हैं भीमसिंह माणक — — —— —— माण्डवी *शाकगली मध्ये।* इसमें *कुल चार खण्ड और ४१ ढालें हैं।* पहलेमें ११, *दूसरेमें ८, तीसरेमें ८ और चौथेमें* १४। इसके मूल रचयिता हैं महोपाध्याय श्री कीर्तिविजय गणिके शिष्य श्री विनय विजय गणि उपाध्याय। उसीके आधारपर यह 'श्रीपाल रास' रचा गया। यह वस्तुतः श्री विनय विजय कविके 'प्राकृतप्रबन्ध'का गुजराती अनुवाद है। प्रारम्भमें लिखा है—"श्री नवपद महिमा वर्णने श्रीपालराजानो रासः ॥"

स्व० नाथूराम जी प्रेमीने दो श्रीपाल चरित्रोंका उल्लेख किया है। भट्टारक मल्लिभूषणके शिष्य ब्र. नेमिदत्तने वि. सं. १५८५ में श्रीपाल चरित्रकी रचना की थी। दूसरे, भट्टारक वादिचन्द्रने वि. सं. १६५१ 'श्रीपाल आख्यान' लिखा था। भाषा गुजराती मिश्रित हिन्दी है।

पण्डित परिमल्लने हिन्दीमें 'श्रीपाल चरित्र' लिखा था, जिसे बाबू ज्ञानचन्द्रजी लाहोरवालोंने १९०४ ई. में प्रकाशित किया। बादमें 'दिगम्बर जैन भवन' सूरतने ई. १९६८ में पुनः प्रकाशित किया। अन्तिम प्रशस्तिमें कवि कहता है—

"गोप गिरगढ़ उत्तम थान।
शूरवीर जहाँ राजा 'मान'॥
ता आगे चन्दन चौधरी।
कीरति सब जगमें विस्तरी॥
जाति वैश्य गुनह गंभीर।
अति प्रताप कुल रंजन धीर॥
ता सुत रामदास परवान।
ता सुत अस्ति महा सुर ज्ञान॥

---

१. भारतीय संस्कृतिमें जैनधर्मका योगदान, पृ. १४२
२. जैन साहित्य और इतिहास, पृ. ४९०।

तास कुल मण्डन परिमल्ल।
वसै आगरामें अरिसल्ल।
ता सम बुद्धिहीन नहिं आन।
तिन सुनियो श्रीपाल पुरान॥
ताकी ई मति कछु भई।
यह श्रीपाल कथा वरनई॥
नव-रस-मिश्रित गुणह निधान।
ताकौ चौपाई किया वखान॥" (२२९९–२३०२)

ग्रन्थ ई० १५९४ में लिखा गया। इस समय अकवरका शासनकाल था—

"वावर वादशाह हो गयो।
ता सुत हुमायूँ भयो॥
ता सुत अकवर साह प्रमान।
सो तप तपै दूसरो मान॥
ताकै राज न होय अनीत।
वसुधा सकल करी वस जीत॥
केतर देस तास की आण।
दूजो और न ताहि समान॥
ताकै राज कथा यह करी।
कवि परमल्ल प्रकट विस्तरी॥"

दिगम्वर समाजमें इस समय जिस श्रीपाल चरित्रका वाचन होता है वह कवि परमल्ल कृत श्रीपाल चरित्रपर ही आधारित है। इनमें एक अनुवाद पं. दीपचन्द्र वर्णीका है और दूसरा सिंघई परमानन्दका। प्रकाशक क्रमशः 'दिगम्वर जैन पुस्तकालय' गाँधी चौक, सूरत; और 'जैन पुस्तकालय भवन' १६१, हरिसन रोड, कलकत्ता–७।

कवि परमल्ल अपनी रचनाके मूल स्रोतके विषयमें इतना ही कहते हैं कि मैंने 'श्रीपाल पुरान' सुना था उसकी छायापर मैंने श्रीपाल कथाका वर्णन किया है। अनुमान यही है कि किसी संस्कृत श्रीपाल चरितके आधारपर ही कवि परमल्लने अपने काव्यकी रचना की होगी। यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि वि. सं. १६५१ में पं. परमल्ल और भट्टारक वादिचन्द्र दोनों अपनी रचनाएँ एक साथ समाप्त करते हैं। हो सकता है दोनोंने ब्रह्मचारी नेमिदत्त द्वारा रचित काव्यसे सहायता ली हो।

मूल 'श्रीपाल चरित्र' से तुलनाके विना इस सम्वन्धमें निश्चय पूर्वक कुछ कहना कठिन है। 'श्रीपाल आख्यान' वम्वई में 'पन्नालाल सरस्वती भवन'में (सन्दर्भ २१८२/१४८) सुरक्षित है।[1]

हिन्दी भापा कथा—चौपाई वन्ध हेमराज इटावा (वि. सं. १७३८)।

हिन्दी-भापा-वचनिका, पं. नाथूलाल दोशी खण्डेलवाल।

'अढाईव्रत'—खरौआ जातिके भट्टारकके शिष्य विश्वभूपण द्वारा रचित है।

अष्टाह्निका सर्वतोभद्र—'कनककीर्ति भट्टारक'।

श्वेताम्वर परम्परामें श्रीपाल चरितपर आधारित निम्नलिखित रचनाओंका उल्लेख डॉ. राजाराम जैनने किया है—

१. श्रीपाल चरित (प्राकृत) रत्नशेखर सूरि (वि. सं. १४२८)

२. श्रीपाल चरित्र—सत्यराज गवि (पूर्णिमा गच्छीय गुणसागर सूरि के शिष्य) सं. १५१४।

---

१. जैन साहित्य और इतिहास, पृ. ४१०।

३. श्रीपाल नाटकगत रसवती—(वर्णन वि. सं. १५३१)
(इससे लगता है कि कोई श्रीपाल नाटक भी था)
४. श्रीपाल कथा—लब्धसागर सूरि (वृद्ध तपागच्छीय) वि. सं. १५५७
५. श्रीपाल चरित्र—ज्ञानविमल सूरि (तपागच्छीय) वि. सं. १७३८
६. श्रीपाल चरित्र व्याख्या—क्षमा कल्याण (खरतर गच्छीय—वि. सं. १८६९)
७. श्रीपाल चरित्र—जयकीर्ति ।
गुजरातीमें निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध हैं—
सिद्धचक्र रासा अथवा श्रीपाल रास
ज्ञानसागर (वि. सं. १५३१)
श्रीपाल रास—विनयविचय यशो विजय (वि. सं. १७३८)
श्रीपाल-रास—ज्ञानसागर (वि. सं. १७२६)
जिनहर्ष—श्रीपालरास—जिनहर्ष (वि. सं. १७४०)

२. श्रीपाल रास और श्रीपाल चरित्रकी कथाकी तुलना

नरसेनके 'सिरिवाल चरिउ' की कथाके तुलनात्मक अध्ययनके लिए जरूरी है कि श्वेताम्वर और दिगम्वर परम्पराकी दोनों प्रतिनिधि कथाओंका सार समझ लिया जाये। ये प्रतिनिधि कथाएँ—'श्रीपाल रास' और 'श्रीपाल चरित्र' के आधारपर यहाँ संक्षेपमें दी जा रही हैं।

'श्रीपाल रास' (श्री विनयविजय) के पहले खण्डमें राजा श्रेणिक पूछता है कि पवित्र पुण्य धारण करनेवाला श्रीपाल कौन था ? उत्तरमें गौतम गणधर कहते हैं—मालवाके उज्जैनके राजा प्रजापालकी दो रानियाँ हैं, सौभाग्यसुन्दरी और रूपसुन्दरी। एक मिथ्यात्वको मानती है, दूसरी जैन है। उनकी दो कन्याएँ हैं—सुरसुन्दरी और मयनासुन्दरी। एक ब्राह्मण गुरुसे पढ़ती है दूसरी जैन गुरु से। एक दिन राजसभामें राजा पूछता है—तुम्हारी सुख-सुविधाका श्रेय किसको है ? सुरसुन्दरीका उत्तर है—पिताको। मदनासुन्दरीका उत्तर है—कर्मफल को। राजा सुरसुन्दरीका विवाह, उसकी इच्छाके अनुसार शंखपुरीके राजा अरिदमनसे कर देता है। क्रुद्ध होकर, मयनासुन्दरीके लिए वर खोजने निकल पड़ता है। रास्तेमें कोढ़ियोंका समूह मिलता है, राजा उन्हें दान देना चाहता है। कोढ़ी अपने कोढ़ी राजा श्रीपालके लिए कन्या माँगते हैं। राजा उनकी माँग मानकर स्वजन और पुरजनोंके विरोधके वावजूद मयनासुन्दरी, कोढ़ीराजको व्याह देता है। मयनासुन्दरीको गुरु आगमोक्त नवपदविधि वताते हैं। वह सेवा और नवपदविधिके अनुष्ठानसे सात सौ कोढ़ियों सहित श्रीपालको भलाचंगा कर लेती है। इसी वीच श्रीपालकी माँ उज्जैन आती है। वह अपनी समधिन रूपसुन्दरीको वताती है कि किस प्रकार पतिके मरनेके वाद, देवरने षड्यन्त्र किया और उसे अपने पाँच वर्षके वेटेको लेकर कोढ़ियोंमें शरण लेनी पड़ी। यह कोढ़ उन्हींके संसर्गसे उसे हुआ। श्रीपाल घरजँवाईके रूपमें रहता है। दूसरे खण्डमें, घरजँवाईके कलंकको धोनेके लिए विदेश जाता है। वत्सनगरमें वह एक धातुवादीकी सहायता कर, उससे दो विद्याएँ और सोना लेकर भड़ौच पहुँचता है। यहाँ धवलसेठसे उसकी भेंट होती है। सेठके खाड़ीमें फँसे ५०० जहाज चलाकर, वह १०० स्वर्ण दीनार किरायेपर उसके जहाजपर वैठकर चल देता है। वह धवलसेठकी नौकरी नहीं करता। चुंगी नहीं चुकानेपर, वव्वरकोटमें सेठ पकड़ लिया जाता है, परन्तु श्रीपाल अपनी वीरतासे उसे छुड़ा लेता है। सेठसे वह आधे जहाज तो लेता ही है, परन्तु वव्वरकोटका राजा भी उसे खूब धन और अपनी कन्या मदनसेना व्याह देता है। एक दूतके कहनेपर वह रत्नसंचयनगर जाकर, विद्याधर कनककेतुकी कन्या मदनमंजूषासे विवाह करता है। तीसरे खण्डमें फिर वह सेठके साथ प्रवासपर जाता है। मदनमंजूषाको देखकर, सेठकी नियत खराव हो जाती है। वह धोखेसे श्रीपालको मचानपर वुलाता है, जहाँसे श्रीपाल समुद्रमें गिरा दिया जाता है। वह तैरकर 'कोंकण द्वीप' पहुँचता है। इधर जलदेवता मदनमंजूषाके शीलकी रक्षा करते हैं और सेठको कड़ी सजा देते हैं। सेठ कोंकण

द्वीप पहुँचकर राजदरबारमें उपहार लेकर जाता है। वह भांडोंकी मददसे श्रीपालको डोम सिद्ध करनेका कुचक्र करता है, परन्तु भण्डाफोड़ हो जानेसे उसे निराशा हाथ लगती है। वह रातमें गोहके सहारे श्रीपालका वध करने दीवालपर चढ़ता है, परन्तु गिरकर मर जाता है। उसका धन मित्रोंमें बाँट दिया जाता है। कोंकण द्वीपमें भी उसका मदनमंजरीसे विवाह पहले ही हो चुकता है। एक सार्थवाह कुण्डलपुरके राजाकी कन्या भुवनमालाका पता देता है। श्रीपाल वीणाप्रतियोगितामें उसे जीत लेता है। उससे विवाह कर वह कंचनपुरकी कन्या त्रैलोक्यसुन्दरीके स्वयंवरमें जाता है, कन्या उसका वरण करती है। वहाँसे वह दलवट्टण नगर जाता है। वह समस्यापूर्ति कर शृंगारसुन्दरीसे विवाह करता है। उत्तर-प्रत्युत्तर पुतलीके माध्यमसे होता है। फिर वह कोल्लागपुरमें जाकर जयसुन्दरीसे विवाह करता है। उसे मयनासुन्दरीकी याद आती है। वह अपनी आठों पत्नियोंके साथ मरहट्ठ, सौराष्ट्र, मेवाड़, लाट, भोट आदि देशोंको जीतता हुआ उज्जैन आ जाता है।

चौथे खण्डमें माँ और पत्नीसे भेंट करता है। वह अपने ससुर राजपालको बुलाता है। नाटकके आयोजनमें मयनासुन्दरीकी बड़ी बहन सुरसुन्दरी नर्तकीके रूपमें उपस्थित है। रास्तेमें उसका पति लूट लिया जाता है और वह बेच दी जाती है। विधिका खेल कि उसे नर्तकी बनना पड़ता है। यह है उक्त प्रश्नका उत्तर कि मनुष्य ,जो कुछ है वह अपने कर्मके कारण। श्रीपाल, चाचा अजितसेनपर आक्रमण करता है। घमासान लड़ाईके बाद, अंगरक्षक उसे बाँधकर ले आते हैं। श्रीपाल उन्हें मुक्त करता है, वह दीक्षा ले लेता है। श्रीपाल राज-काज सम्हालता है। मुनि अजितसेन अवधिज्ञानी बनकर चम्पापुर आता है। श्रीपाल वन्दनाभक्तिके लिए जाता है। उपदेश ग्रहण करनेके बाद वह, मुनिवरसे वर्तमान जीवनकी सफलताओं-विफलताओंके बारेमें पूछता है। मुनि बतलाते हैं—"हिरण्यपुरमें राजा श्रीकान्त-रानी श्रीमती थे। आखेटके व्यसनके कारण राजाने कई काम किये। जैसे—

१. राजाका पशुओंको मारना।
२. कायोत्सर्गमें खड़े रोगी मुनिको सताना।
३. मुनिको नदीमें ढकेलना।
४. गोचरीके लिए जाते हुए मुनिसे अपशब्द कहना।
५. मुनिके समझानेपर सिद्धचक्र-विधान करना।
६. उसके सातसौ आदमियोंका राजा सिंहराजका उपद्रव करना, सिंहराज द्वारा उसकी हत्या कर देना।

इन्हीं कर्मोंके फलस्वरूप श्रीपाल, तुम्हें यह सब सहन करना पड़ा। सिंहराज ही मुनि अजितसेन हैं और जिन सखियोंने सिद्धचक्रका समर्थन किया था, वे ही तुम्हारी पत्नियाँ बनती हैं। तुम्हें अभी कर्मका फल भोगना है। नौवें जन्ममें तुम मोक्ष-प्राप्त करोगे।

३.

पण्डित परिमल्लका 'श्रीपाल चरित्र' ६ सन्धियोंका काव्य है। कथा चम्पापुरसे प्रारम्भ होती है। राजा अरिदमन, छोटा भाई वीरदमन, रानी कुन्दप्रभा, पुत्र श्रीपाल। अरिदमनकी मृत्युके बाद श्रीपाल राजा बनता है। परन्तु कोढ़ हो जानेसे प्रजाके हितमें चाचाको राजपाट देकर उद्यानमें चला जाता है। दूसरी सन्धिमें उज्जैनका राजा पहुपाल, उसकी दो कन्याएँ हैं, सुरसुन्दरी और मयनासुन्दरी। दोनों दो अलग-अलग गुरुओंसे पढ़ती हैं। सुरसुन्दरीका विवाह कौशाम्बीके राजा हरिवाहनसे होता है। तीसरी सन्धिमें मयना-सुन्दरीके कर्मसिद्धान्तवाले उत्तरको सुनकर राजा चिढ़कर कोढ़ी श्रीपालसे उसका विवाह कर देता है, बादमें पछताता है। सिद्धचक्र-विधान और सेवा करके मयनासुन्दरी सात सौ राजाओं सहित श्रीपालको ठीक कर लेती है। चौथी सन्धिमें उसकी माँ आती है। घरजँवाईके कलंकको धोनेके लिए श्रीपाल प्रवासपर जाता है। वत्सनगरमें दो विद्याएँ प्राप्त करता है। पाँचवीं सन्धिमें भड़ौंचमें धवलसेठसे पहचान। खाड़ीमें

फँसे जहाज निकालता है, दसवें हिस्सेकी शर्तपर साथ जाता है। रास्तेमें लाखचोरका आक्रमण। सेठ वन्दी बना लिया जाता है। धवलको श्रीपाल बचाता है। दस्यु उसे सात जहाज रत्न देते हैं। छठी सन्धिमें वह रत्नमंजूपासे विवाह करता है। फिर प्रवास करता है। धवलसेठ रत्नमंजूषापर मुग्ध हो जाता है। वह श्रीपालको धोखेसे समुद्रमें गिरा देता है। जलदेवता, रत्नमंजूषाके शीलकी रक्षा करते हैं और सेठकी बुरी दशा करते हैं। श्रीपाल तैरकर कुंकुम द्वीप पहुँचता है। गुणमालासे विवाह करता है। धवलसेठ भी वहीं पहुँचता है और दरवारमें श्रीपालसे टकराता है। वह कुचक्र कर, श्रीपालको डोम सिद्ध करवाना चाहता है, परन्तु वादमें सही बात ज्ञात होनेपर, राजा प्राणदण्ड देता है। श्रीपाल उसे बचाता है, उसका धन ले लेता है। इसके वाद श्रीपाल चित्ररेखा, गुणमाला आदि कुल मिलाकर ८००० कन्याओंसे विवाह करता है। अवधि पूरी होनेपर वह उज्जैन आकर माँ और पत्नीसे भेंट करता है। अंगरक्षकोंके साथ चम्पापुर पर आक्रमण। चाचा वीरदमन दीक्षा ग्रहण कर लेता है। श्रीपाल राज्य करने लगता है। एक दिन मुनि आते हैं, वह वन्दना भक्ति करनेके लिए जाता है। उपदेश ग्रहण करनेके वाद, राजा अपने पूर्वभव पूछता है। मुनि पूर्व-जीवनके श्रीकान्त और श्रीमतीको पूरी कहानी सुनाता है। अन्तमें श्रीपाल तप कर मोक्ष प्राप्त करता है।

४.

'श्रीपाल चरित्र' (पं. परिमल्ल) ६ खण्डोंकी कथाका, 'श्रीपाल रास' के ४ खण्डोंमें निम्नलिखित रूपसे सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। 'श्रीपाल रास' की कथा उज्जैनसे प्रारम्भ होती है। अतः 'श्रीपाल चरित्र' की पहली सन्धिकी कथा स्वतः छूट जाती है। पं. परिमल्लकी तीसरी और चौथी सन्धियोंमें सुरसुन्दरी-मयनासुन्दरीके विवाहसे लेकर माँ कुन्दप्रभाके उज्जैन आने तककी घटनाएँ आती हैं। यह कथा 'श्रीपाल रास' में एक खण्डमें है। अतः 'श्रीपाल रास' में जो विदेशयात्रा दूसरे खण्डमें है वह 'श्रीपाल चरित्र' में चौथी सन्धि में।

जहाँ तक पण्डित नरसेनके 'सिरिवाल चरिउ' की कथा का प्रश्न है, दो परिच्छेदोंमें समूची कथा वर्णित है। कथा संक्षिप्त एवं स्पष्ट है। उसका मुख्य उद्देश्य मानवी परिस्थितियों और संवेदनाओंके उतार-चढ़ावके बीच कर्मफलके सिद्धान्तको प्रतिपादित करना है। 'श्रीपाल रास' की तुलनामें उनकी कथा पं. परिमल्लकी कथासे मिलती है। फिर भी दोनोंमें कई महत्त्वपूर्ण विभिन्नताएँ हैं। केवल इसीलिए नहीं कि कथा दो सन्धियोंमें सिमटी हुई है, वरन् उसके कई कारण हैं। पहले 'श्रीपाल रास' और 'श्रीपाल चरित्र' (परिमल्ल) की कथाओंकी विभिन्नताओंको हम लें।

श्रीपाल रास	श्रीपाल चरित्र (पं. परिमल्ल)
(१) उज्जैनका राजा प्रजापाल है। उसकी दो पत्नियाँ हैं—सौभाग्य-सुन्दरी, रूपसुन्दरी। एक शैव और दूसर जैन। एकसे सुरसुन्दरी जन्म लेती है और दूसरीसे मयनासुन्दरी।	(१) राजा पहुपाल है। उसकी एक पत्नी है—रूपसुन्दरी, जो जैन है। रूपसुन्दरीसे ही दोनों कन्याएँ जन्म लेती हैं।
(२) एक शैवगुरुके पास पढ़ती है, दूसरी जैन-गुरुके पास।	(२) इसमें भी यही है।
(३) सुरसुन्दरी वापका श्रेय मानती है।	(३) मयनासुन्दरी 'कर्म'का।
(४) सुरसुन्दरीका विवाह शंखपुरीके राजा अरिदमनसे होता है।	(४) सुरसुन्दरीका विवाह कौशाम्बीके राजा हरिवाहनसे होता है।

श्रीपाल रास

(५) पाँच वर्षकी आयु में श्रीपालका पिता मर जाता है। उसे वाल राजा घोषित किया जाता है, परन्तु चाचा अजितसेन माँ-बेटेको मरवानेका कुचक्र रचता है। दोनों भागकर कोढ़ियोंकी शरण में जाते हैं। वहीं श्रीपालको कोढ़ होता है।

(६) श्रीपालकी माँका नाम कमलप्रभा है।

(७) वत्सनगरमें धातुवादीसे श्रीपालकी भेंट होती है।

(८) धवलसेठ चुंगी न चुकानेपर वब्बरकोट बन्दरगाहपर पकड़ा जाता है। श्रीपाल उसे छुड़ाता है, फलस्वरूप आधे जहाज सेठसे ले लेता है। वब्बरकोटका राजा महाकाल उसे अपनी कन्या मदनसेना व्याह देता है। यहींसे जाकर मदनमंजूषा (रत्नसंचयपुर) से विवाह करता है।

(९) धवलसेठके जहाजपर वह १०० दीनार प्रतिमाह किराया देकर बैठता है।

(१०) धवलसेठ मचान बनाकर श्रीपालको बुलाकर धोखेसे गिरा देता है।

(११) तैरकर कुमार कोंकण द्वीप पहुँचता है। वहाँ मदनमंजरीसे विवाह कर घरजँवाई बनकर रहता है।

(१२) भण्डाफोड़ होनेपर धवलसेठ श्रीपालको मारनेकी नीयतसे गोहके सहारे दीवालपर चढ़ता है और कूदकर मर जाता है।

(१३) वह कुण्डनपुरकी गुणमाला, कंचनपुरकी त्रैलोक्यसुन्दरी, कोल्लागपुरकी जयसुन्दरी, महासेन राजाकी तिलकसुन्दरीसे विवाह करता है। कुल आठ कन्याओंसे विवाह करता है।

(१४) श्रीपालके चाचा अजितसेन ही युद्धमें हारकर दीक्षा ग्रहण करते हैं। अवधिज्ञान होनेपर चम्पापुरी आते हैं और पूर्वभवकी कथा सुनाते हैं।

(१५) श्रीपाल नौवें जन्ममें मोक्ष प्राप्त करेगा।

श्रीपाल चरित्र (पं. परिमल्ल)

(५) पिता अरिदमनकी मृत्युके वाद, श्रीपाल गद्दीपर बैठता है, परन्तु कोढ़ हो जानेसे अपने ७०० अंगरक्षकोंके साथ स्वतः राज छोड़ देता है।

(६) श्रीपालकी माँका नाम कुन्दप्रभा है।

(७) विद्या सिद्ध करते हुए विद्याधरसे भेंट होती है।

(८) रास्तेमें लाखचोर (जलदस्यु) सेठपर हमला कर उसे पकड़ लेते हैं। श्रीपाल उन्हें हराता है। जलदस्यु उसे रत्नोंसे भरे ७ जहाज देते हैं।

(९) दसवाँ हिस्सा देनेकी शर्तपर श्रीपाल धवलसेठके साथ जाता है। जहाज हंस द्वीप पहुँचते हैं। वहाँ वह रत्नमंजूषासे विवाह करता है।

(१०) मरजियाको एक लाख रुपयेकी घूस देकर रस्सी कटवा देता है और श्रीपाल मस्तूलसे गिर पड़ता है।

(११) तैरकर कुंकुम द्वीप पहुँचता है और गुणमालासे विवाह करता है।

(१२) गोहवाली घटना नहीं है। श्रीपाल सेठको शूलीपर चढ़नेसे बचता है और आधा धन ले लेता है।

(१३) चित्ररेखा आदि ८००० कन्याओंसे विवाह करता है।

(१४) जैन मुनि चम्पापुर आते हैं और पूर्वजन्म सुनाते हैं।

(१५) उसी जन्ममें मोक्ष प्राप्त कर लिया।

इस प्रकार दोनों परम्पराओं (दिगम्बर-श्वेताम्बर) की कथाओंके तुलनात्मक अध्ययनसे निम्नलिखित समान निष्कर्ष निकलते हैं—

(१) श्रीपाल चम्पापुरका राजपुत्र है।

(२) इस जीवनमें जो उसे कोढ़ी होना पड़ता है, डोम कहलाना पड़ता है और समुद्रमें गिरना पड़ता है, वह पूर्वजन्मके कर्मके कारण ।

(३) मदनासुन्दरी की सिद्धान्तवादितासे उसका पिता अप्रसन्न होकर कोढ़ीसे विवाह कर देता है ।

(४) सिद्धचक्र विधान और सेवासे मदनासुन्दरी सबको चंगा कर लेती है ।

(५) 'घरजँवाई'के कलंकसे बचनेके लिए श्रीपाल साहसी यात्राएँ करता है और अपनी उद्योग-शीलता और उदार साहसका परिचय देता है ।

(६) धवलसेठ खलनायक है ।

(८) कतिपय घटनाओं और चरित्रों में थोड़ी-बहुत भिन्नता होते हुए भी केन्द्रीयकथा और उसके लक्ष्य में मूलभूत समानता है । क्योंकि यह दोनों परम्पराएँ मानती हैं कि श्रीपाल और मदनासुन्दरी जीवन में जो कुछ सिद्धियाँ पाते हैं, वह पूर्वजन्मके फल और सिद्धचक्रविधानकी महिमाके कारण ।

५. मूल प्रेरणास्रोत

मुख्य प्रश्न है कि कथाकी मूलप्रेरणा क्या है ? 'सिद्धचक्र विधान' या 'नवपदमण्डल'की पूजाकी महिमा बताना, उसकी मूल समस्या नहीं है; वह तो समस्याका धार्मिक अथवा दार्शनिक समाधान है । उसकी मूल प्रेरणा इस समस्याका हल खोजना है कि मनुष्य अपना जीवन किसी दूसरेके भरोसे जीता है, या अपनी कर्मचेतनापर ? भाग्य मनुष्यकी एक पूर्व निर्धारित लीक है कि जिसपर उसे चलना है, या वह उसके ही पूर्वसंचित कर्मोंका फल है ? दूसरे शब्दों में—मनुष्य किसी तर्कहीन दैवी विधानके अन्तर्गत अपना जीवन जीता है या वह अपनी ही पूर्वनिर्धारित उस कर्मचेतनाके बलपर जीवन जीता है कि जिसका विधायक वह स्वयं है ? सुरसुन्दरी और मयनासुन्दरी इन्हीं दो विचारचेतनाओंके प्रतीक पात्र हैं । चूँकि जैनदर्शन कर्मवादका पुरस्कर्ता दर्शन है, अतः वह दूसरी विचारचेतनापर विशेष जोर देता है । यही कारण है कि जब मयनासुन्दरी ऋद्धि-सिद्धियोंके चरम बिन्दुपर होती है, तब रास्तेमें लूटी गयी बेचारी सुरसुन्दरी, उसके सम्मुख नर्तकीके रूपमें पेश की जाती है । मैं समझता हूँ कि व्यापक मानवी सन्दर्भमें समस्याका यह हल धार्मिक, एकांगी और न्यायचेतनासे शून्य प्रतीत होगा; फिर भी यह तो स्वीकारना ही पड़ता है कि आलोच्य कृतिमें आकस्मिकताओंके तारतम्यमें मानवजीवनके उतार-चढ़ावोंका सुन्दर और सजीव चित्रण है । कुल मिलाकर यह कथा जीवनमें उद्यमशीलता, आचरणकी पवित्रता और धार्मिक जीवनकी प्रेरणा देती है; क्योंकि उद्यमके बिना जीवन दरिद्र है, आचरण-की पवित्रताके बिना आन्तरिक सुख-शान्ति असम्भव है और धार्मिक चेतनाके बिना मनुष्य संवेदना और आशाकी उस आन्तरिक शक्तिको खो देगा, जो बाह्य निराशा और संकटमें जीवनको आन्तरिक विवेक और शक्ति देती है ।

नरसेन कविने अपने 'सिरिवाल चरिउ' में कुछ परिवर्तन किये हैं । उदाहरणके लिए कथाको संक्षिप्त बनानेके लिए वह चम्पापुरसे लेकर उज्जैन नगरीमें आने तककी घटनाओंका उल्लेख नहीं करता । उज्जैनसे अपनी कथा प्रारम्भ कर, वह मूल समस्यापर आ जाता है । पहुपाल क्रोधके आवेशमें स्वयं मयनासुन्दरी कोढ़ीराजको दे देता है । सुरसुन्दरीका विवाह कौशाम्बीके शृंगारसिंहसे करवाता है, हरिवाहनसे नहीं । अपनी सास कुन्दप्रभासे जब मयनासुन्दरीको यह मालूम हो जाता है कि श्रीपाल राजकुमार है, तभी वह उसका कोढ़ दूर करनेके लिए सिद्धचक्र विधान करती है । अर्थात् कर्मचेतनाके बावजूद उसमें कुलीनताका बोध बराबर है ।

६. नन्दीश्वर द्वीप पूजा

'सिरिवाल चरिउ' में जिस 'सिद्धचक्र यन्त्र'का वर्णन है, उसमें दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्पराके प्रचलित यन्त्रोंसे भिन्नता है । इसके 'सिद्धचक्र विधान' को 'नन्दीश्वर पर्व' या 'अष्टाह्निका पूजाविधि' भी कहते हैं । परम्पराके अनुसार यह पर्व प्रति वर्ष, कार्तिक, फागुन, आसाढ़के अन्तिम आठ दिनोंमें पड़ता है ।

विशुद्ध रूपसे यह धार्मिक पर्व है। इन दिनों देवता लोग नन्दीश्वर द्वीपमें जाकर ५२ अकृत्रिम चैत्यालयोंमें देवपूजा कर पुण्यार्जन करते हैं। अढाई द्वीप यानी मनुष्य क्षेत्रके लोग, चूँकि वहाँ नहीं जा सकते, इसलिए अपने गाँव या मन्दिरमें परोक्ष रूपसे उसकी प्रतीक पूजा करते हैं। मनुष्य क्षेत्रसे नन्दीश्वर द्वीप तक कुल आठ द्वीप हैं–१. जम्बूद्वीप, २. धातकी खण्ड, ३. पुष्करवर, ४. वारुणीवर, ५. क्षीरवर, ६. घृतवर, ७. इक्षुवर और ८. नन्दीश्वर द्वीप। इसे अढ़ाई द्वीपपूजा कहते हैं। एक पूजा तो संस्कृत-प्राकृत मिश्रित है। इसके अतिरिक्त भाषापूजा लिखनेवाले हैं—पण्डित द्यानतराम अग्रवाल आगरा, पं. टेकचन्द भद्रपुर, पं. डालूराम इत्यादि। वस्तुस्थिति यह है कि अढाई द्वीपपूजा प्राचीन है, परन्तु श्रीपालके माध्यमसे वह १३–१४वीं सदीमें अधिक लोकप्रिय हुई। कहते हैं पोदनपुरका एक विद्याधर राजा, किसी मुनिसे नन्दीश्वर द्वीपकी महिमा सुनकर विमानसे वहाँसे जाता है। उसका विमान मानुषोत्तर पर्वतसे टकराकर चूर-चूर हो जाता है। मरकर वह देव होता है, नन्दीश्वर द्वीपमें पूजा करता है और उसके फलसे अगले जन्ममें मोक्ष प्राप्त करता है। उसकी पत्नी सोमारानी भी यह पूजा करती है। तीसरा सन्दर्भ है राजा हरिषेणका। अयोध्यामें सूर्यवंशी राजा हरिषेण था। वह अपनी पत्नी गन्धर्वसेनाके साथ दो चारणमुनियोंके दर्शन करता है और उनसे अपने पूर्वजन्म पूछता है। मुनि बताते हैं कि पूर्वभवमें कुबेर वैश्यकी सुन्दरी नामक पत्नीके तीन पुत्र थे—श्रीवर्मा, जयकीर्ति और जयचन्द। तीनोंने उस भवमें नन्दीश्वर व्रतका पालन किया। उसके फलसे श्रीवर्मा इस भवमें हरिषेण बना और शेष दो भाई—पूर्वभव बतानेवाले स्वयं चारणमुनि। हरिषेण तप कर मोक्ष प्राप्त करता है। एक हरिषेण नामका १०वाँ चक्रवर्ती राजा भी हुआ है। उसका समय है बीसवें तीर्थंकर, मुनिसुव्रतका शासनकाल। उपलब्ध तथ्योंके आधारपर यह कहना कठिन है कि दोनों हरिषेण एक हैं या अलग-अलग। एक सम्भावना यह की जा सकती है कि नन्दीश्वरद्वीप पूजा प्राचीन थी, बादमें 'सिद्धचक्र' या 'नवपद विधिपूजा' से वह सम्बद्ध कर दी गयी। बादमें श्रीपालके आख्यानने उसे पुराणका रूप दिया। दोनों परम्पराएँ, कथाका प्रारम्भ गौतम गणधरसे करती हैं, परन्तु तथ्योंकी उक्त भिन्नतासे सिद्ध है कि कथाकार, समय और क्षेत्रीय आवश्यकताओंके अनुसार उसमें परिवर्तन करते रहे।

७. सिद्धचक्र यन्त्र और नवपदमण्डल

सिद्धचक्र या नवपद विधिकी यन्त्ररचनाके मूलमें पंच परमेष्ठी या णमोकार मन्त्र है, परन्तु दिगम्बर परम्पराके यन्त्रमें केवल णमोकार अरहंताणं है, जबकि श्वेताम्बर परम्परामें पाँच परमेष्ठियोंका उल्लेख है, जैसा कि संलग्न चित्रोंसे स्पष्ट है। यह अब भी ऐतिहासिक खोजका विषय है कि सिद्धचक्र यन्त्र कब और कैसे अस्तित्वमें आया? उसका कहीं तान्त्रिक साधनासे तो सम्बन्ध नहीं है?

'सिरिवाल चरिउ'में मयनासुन्दरीके पूछनेपर पापका हरण करनेवाले समाधिगुप्त मुनि कहते हैं—

'सिद्धचक्र' सद्भावसे लेना चाहिए, अष्टाह्निका करनी चाहिए। आठ दिन सिद्धचक्रका विधान करना चाहिए और आठदलके सिद्धचक्र दलके सिद्धचक्र यन्त्रकी आराधना करनी चाहिए। अ सि आ उ सा परममन्त्रको उसमें लिखें। कूटसहित तीन वलय (वृत्त) हों। उसमें ओंकारको कौन छोड़ता है। चार कोनोंमें आठ त्रिशूल लिखे जायें। बीचमें पाँच परमेष्ठी लिखे जायें। उसमें चार मंगलोत्तम लिखे जायें। विचारकर जिनधर्मके अनुसार पूजा की जाये। फिर प्रत्येक दलमें समस्त आठ (वर्ग क च ट प आदि) लिखे जायें। दलके भीतर, सुन्दर दर्शन-लाभ-चरित्र और तप लिखा जाये।

फिर चक्रेश्वरी, ज्वालामालिनी, परमेश्वरी अम्बा, पद्मिनी, दस दिशापाल भालसहित यक्षेश्वर गोमुख। फिर मण्डलके बाहर मणिभद्र। फिर दसमुख नामक व्यन्तरेन्द्र। प्रतिदिन चारों ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए। इन्द्रियप्रसारको रोको और आठों दिन एक चित्त रहो।"

'नवपद मण्डल' और 'सिद्धचक्र यन्त्र'से जब हम नरसेनके 'सिद्ध चक्र यन्त्र'की तुलना करते हैं तो उसमें चक्रेश्वरीदेवी, ज्वालामालिनी आदि शासन देवी आदि यक्ष और व्यन्तरका भी उल्लेख है। यह उल्लेख साभिप्राय है। क्योंकि ये धवलसेठसे रत्नमंजूषाकी शीलकी रक्षा करते हैं। जब रत्नमंजूषा सहायताके लिए पुकारती

है तो (नरसेनके 'सिरिवाल चरिउ'में) माणिभद्र समुद्र हिलाता है। जहाज पकड़कर सेठका मुख नीचा करता है। सिंहके रथपर बैठकर अम्बादेवी आती है। क्षेत्रपाल कुत्तेपर बैठकर आता है। ज्वालामालिनी आग लगाती है। दसमुँह व्यन्तर भी आता है।

'श्रीपाल रास'में सबसे पहले क्षेत्रपाल रौद्ररूप धारण करता है। फिर ५२ वीरोंसे घिरा माणिभद्र, पूर्णभद्र, कपिल और पिंगल चार देव आते हैं। चक्रेश्वरी सिंहरथपर बैठकर आती है, वह पकड़नेका आदेश देती है। वे उसके मुँहमें गन्दी चीजें भरते हैं। शरीरके टुकड़े करके चारों दिशाओंमें छिटका देते हैं। सेठ थर-थर काँप उठता है। (पृष्ठ ७५, छठा संस्करण)

पं. परिमल्ल यह काम जलदेवतासे करवाते हैं। इस प्रकार 'श्रीपाल रास' और नरसेनके 'सिरिवाल चरिउ'में रत्नमंजूषा (मदनमंजूषा)के शीलकी रक्षा करनेवाले देवताओंके नामों और कार्यविधिमें बहुत कम अन्तर है। परन्तु इन देवी-देवताओंका उल्लेख न तो दिगम्बरोंके सिद्धचक्र यन्त्रमें है और न श्वेताम्बरोंके नवपद मण्डल या मकारके आठ पंखुड़ियोंवाले कमलमें। श्वेताम्बरोंके नवपदमण्डल और आठ पंखुड़ियोंके कमलमें यही अन्तर है कि एकमें णमोकार मन्त्र (पाँच परमेष्ठी) उनमें वर्ण एवं दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तपका उल्लेख है। जबकि नवकार-कमलमें पाँच परमेष्ठियोंके साथ, प्रत्येक वैकल्पिक दलमें।

'एसो पंच णमोयारो सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेंसि पढमं होइ मंगलं'

ये दोनों बातें श्वेताम्बर परम्पराके 'नवपदमण्डल' और आठ पंखुड़ियोंके कमलके अनुरूप हैं। परन्तु नरसेनने दिगम्बर परम्पराके 'अ क च ट त प श य' वर्गोका भी उल्लेख किया है। इसी प्रकार अ सि आ उ सा चार उत्तम मंगलोंका भी विधान किया है।

यह बातें दिगम्बर परम्पराके विनायक यन्त्रमें है। 'ओं'की भी यही स्थिति है। लगता है पं. नरसेनने 'नवपदमण्डल', 'सिद्धचक्रयन्त्र' और 'विनायक तन्त्र'की बातें एकमें मिला दी हैं। परन्तु चक्रेश्वरी आदि देवियोंका उल्लेख उक्त तीनों ग्रन्थोंमें नहीं है। सम्भवतः शासनदेवताओंके माध्यमसे जिनभक्तिका प्रभाव स्थापित करनेके लिए ही कविने ऐसा किया।

●

कथावस्तु

पहली सन्धि

सन्धिका प्रारम्भ मंगलाचरणसे किया गया है। मंगलाचरणके बाद विपुलाचलपर महावीरके समवसरणका उल्लेख आता है। राजा श्रेणिक परिवार सहित समवसरणमें जाकर पद-वन्दना करके 'सिद्धचक्र विधान'का फल पूछता है। उत्तरमें गौतम गणधर कहते हैं—

अत्यन्त प्रसिद्ध और सुन्दर नगरी उज्जैनीमें पयपाल (प्रजापाल) नामका राजा रहता है। उसकी दो कन्याएँ हैं—बड़ी सुरसुन्दरी और छोटी मैनासुन्दरी। बड़ी कन्या ब्राह्मण गुरुसे और छोटी जैन मुनिसे पढ़ती है। सुरसुन्दरीका विवाह उसकी इच्छानुसार कौशाम्बी पुरके राजा सिंगारसिंहसे कर दिया जाता है।

मैनासुन्दरी अनेक विद्याओं और कलाओमें दक्षता प्राप्त कर लेती है तथा अनेक भाषाएँ भी सीख लेती है। जब वह सयानी होती है तब उससे भी पयपाल अपनी इच्छानुसार वर चुननेके लिए कहता है। परन्तु मैनासुन्दरी कहती है—"कुलीन कन्याका वर तो उसके माँ-बाप निश्चित करते हैं। माथेपर लिखे कर्मको कोई मेट नहीं सकता।" यह उत्तर सुनकर राजा क्रोधित हो जाता है। वह मैनासुन्दरीका विवाह एक कोढ़ीसे कर देता है। कोढ़ीसे मैनासुन्दरीका विवाह होनेसे सभी अप्रसन्न हैं। उसको देखकर सारा कुटुम्ब और नगर दुःखी होता है, परन्तु मैनासुन्दीको सन्तोष है। वह उसे कामदेवसे भी अधिक सुन्दर समझती है। रोती हुई माँ और बहनको समझाती है—"विधाताका लिखा कौन टाल सकता है?" कोढ़ी अंगदेशका राजा श्रीपाल है, जो पूर्वजन्मकी मुनिनिन्दाके फलस्वरूप कोढ़ी है और आत्मनिर्वासनका जीवन व्यतीत कर रहा है। उसके साथ सात सौ सामन्त भी कोढ़की यातना सह रहे हैं। उन सबको उज्जैन नगरीके बाहर स्थान दिया जाता है। कुछ दिन पश्चात् श्रीपालकी माँ कुन्दप्रभा आती है। उससे मैनासुन्दरीको मालूम होता है कि श्रीपाल राजा है और कोटिभट वीर है। मैनासुन्दरी जिनशासनके प्रमुख मुनिसे 'सिद्धचक्र विधि' पूरी करती है। 'सिद्धचक्र विधि' से राजा और उसके साथियोंका कोढ़ दूर हो जाता है। राजा पयपालको यह जानकर खुशी होती है। वह श्रीपालको अपने यहाँ घरजवाँई बनाकर रख लेता है। परन्तु श्रीपालको इस प्रकार रहना पसन्द नहीं है। जगहँसाईके कारण श्रीपाल बारह वर्षके लिए विदेश चला जाता है। मैनासुन्दरी जाते समय कहती है—"यदि तुम बारह वर्षमें नहीं आये तो मैं महान् तप करूँगी।" मैनासुन्दरी और श्रीपालकी माँ—कुन्दप्रभा उसे अनेक उपदेशात्मक बातें कहती हैं और विदा देती हैं।

अनेक योद्धाओंको साथ लेकर श्रीपाल देश-देशान्तरकी सैर करता हुआ वत्सनगरमें आता है जहाँ अवगुणोंका घर धवलसेठ रहता है। धवलसेठके पाँच सौ जहाज समुद्रमें रुक जाते हैं। लोग कहने लगे कि बत्तीस लक्षणोंवाला मनुष्य जब इसे चलायेगा तब ये चलेंगे। वणिक्-समूह श्रीपालको पकड़कर ले आता है। श्रीपाल उन पाँच सौ जहाजोंको पैरसे चला देता है। धवलसेठ श्रीपालको अपना पुत्र मान लेता है। वह श्रीपालको अपनी आयका दसवाँ हिस्सा देनेका वचन भी देता है।

पाँच सौ जहाज समुद्रमें चलने लगते हैं। रास्तेमें जलदस्यु (लाखचोर) आक्रमण करते हैं और धवलसेठको बन्दी बना लेते हैं। श्रीपाल धवलसेठको छुड़ा लेता है। सभी दस्यु श्रीपालको अपना स्वामी मान लेते हैं। जहाज हंसद्वीपमें जा लगते हैं। हंसद्वीपके राजा विद्याधर कनककेतुकी एक कन्या और दो पुत्र हैं। एक दिन राजा गुरु महाराजसे पूछता है—"मेरी कन्या रत्नमंजूषा किसे दी जाये?" गुरु महाराजने कहा—"सहस्रकूट जिनमन्दिरके वज्रके समान किवाड़ोंको जो खोल देगा, उसीके साथ कन्याका विवाह कर देना।" श्रीपाल जिनमन्दिरके किवाड़ोंको खोल देता है और रत्नमंजूषाका विवाह श्रीपालसे हो जाता है।

वणिक् वर्गके साथ श्रीपाल रत्नमंजूषाको लेकर यात्रापर चल देता है। धवलसेठ रत्नमंजूषा पर मोहित हो जाता है। उसका मन्त्री स्थितिको समझकर धवलसेठको समझाता है—"तुम अनुचित बात मत करो, रत्नमंजूषा तुम्हारी पुत्रवधू है।" धवलसेठ पर इसका कोई असर नहीं होता है। वह मन्त्रीको लालच देता है। धवलसेठ मन्त्रीसे कहता है कि तुम इस बातकी घोषणा करो कि जलमें मछली उछल पड़ी है। श्रीपाल उसे देखनेके लिए निश्चित ऊपर चढ़ेगा। तुम रस्सी काट देना ताकि वह जलमें गिर पड़े। मन्त्री वैसा ही करता है। श्रीपाल मछलीको देखनेके लिए जैसे ही चढ़ता है, रस्सी काटकर उसे पानीमें गिरा दिया जाता है।

धवलसेठ रत्नमंजूषाके साथ दुर्व्यवहार करना चाहता है। रत्नमंजूषा उसे खूब फटकारती है। धवलसेठ तो कामान्ध है। जल-देवता आकर रत्नमंजूषाकी लाज बचाते हैं और धवलसेठकी खूब खबर लेते हैं।

श्रीपाल समुद्रमें बहने लगता है। सौभाग्यसे उसे एक लकड़ीका टुकड़ा मिल जाता है। उसकी सहायतासे वह दलवट्टणके किनारे पहुँचता है। वहाँके राजा धनपालके तीन पुत्र और एक पुत्री है। राजा अपनी पुत्री गुणमालाका विवाह श्रीपालसे कर देता है। ज्योतिषीके अनुसार गुणमालाका विवाह करना उसीसे तय था जो पानीमें तैरकर आवेगा। धवलसेठके षड्यन्त्रसे श्रीपाल पानीमें गिरता है और तैरकर दलवट्टणमें आकर गुणमालासे विवाह करता है।

दूसरी सन्धि

संयोगसे धवलसेठ भी अपने काफिलेके साथ दलवट्टण नगरमें पहुँचता है। राजदरबारमें वह श्रीपाल को देखकर सन्न रह जाता है। पूछताछ करनेपर उसको ज्ञात होता है कि श्रीपाल राजाका दामाद है। वह अपने डेरेमें आकर मन्त्रियोंसे इस समस्यापर विचार-विमर्श करता है। वह डोम-चाण्डाल आदिको बुलाकर एक योजना बनाता है। वह उन सबसे कहता है—'तुम राजदरबारमें जाकर नृत्य करना और वहाँ श्रीपालको अपना सम्बन्धी बताना। मैं निश्चय ही तुम्हें एक लाख रुपया दूँगा।' डोम-मण्डली पूर्व नियोजित कार्यक्रमानुसार राजाके दरबारमें नाचती है। उसी अवसरपर नृत्यके बाद कोई श्रीपालको अपना बेटा, कोई भाई, कोई नाती इत्यादि-इत्यादि बतलाकर अपना रिश्ता प्रकट करता है। राजा श्रीपालपर, कुल छिपाकर शादी करनेका अभियोग लगाता है और मृत्युदण्डकी सजा सुनाता है। गुणमालाको जब यह मालूम होता है तो वह सचाई जाननेके लिए श्रीपालसे जाकर पूछती है—'तुम्हारी कौन-सी जाति है? तुम्हारा कुल बताओ।' श्रीपाल गुणमालासे कहता है कि डेरोंके पास एक सुन्दर सुलक्षण नारी है, उसीसे तुम जाकर पूछो। गुणमाला रत्नमंजूषाको साथ लेकर अपने पिताके पास आती है। राजा रत्नमंजूषासे सारी घटनाओंका विवरण व सचाई जानकर, धवलसेठको मृत्युदण्डका आदेश देता है। परन्तु श्रीपाल उसे बचा लेता है और उससे सब धन ले लेता है।

इसके बाद श्रीपालकी विवाह-यात्राएँ हैं। कुण्डलपुरके मकरकेतु नामक राजाकी कन्या चित्रलेखासे श्रीपाल विवाह करता है। विवाहकी शर्त यह रहती है कि जो नगाड़ा बजाकर और सौ कन्याओंके साथ गायेगा, वह उन सबसे विवाह करेगा। इस प्रकार श्रीपाल चित्रलेखाके साथ अन्य और सौ कन्याओंसे विवाह करता है।

श्रीपाल कंचनपुरके राजा वज्रसेनकी कन्या विलासवतीके साथ विवाह करता है और उसके साथ ९०० कन्याओंसे भी विवाह करता है।

इसके पश्चात् श्रीपाल कोंकण द्वीप पहुँचता है। वहाँके राजा यशोराशिविजयकी आठ कन्याएँ हैं। वे श्रीपालसे अपनी-अपनी पहेलियाँ (समस्याएँ) पूछती हैं और श्रीपाल उन सभीका समाधान कर देता है। इस प्रकार शर्तके अनुसार वह उन आठ राजकुमारियोंके साथ-साथ अन्य सोलह सौ कुमारियोंसे भी विवाह करता है। इसके बाद पंच पाण्ड्य सुप्रदेशमें दो हजार कन्याओंसे वह विवाह करता है। मल्लिवाडमें

सात सौ और तेलंग देशमें एक हजार कन्याओंसे वह विवाह करता है। इस प्रकार विवाह यात्राओंसे लौटकर वह दलवट्टण नगर आता है।

एक दिन वह सोचता है कि अब यदि वह उज्जैन नहीं लौटता, तो मैनासुन्दरी मोक्ष देनेवाली दीक्षा ले लेगी। उसने राजा धनपालसे आज्ञा ली और उज्जैनके लिए वह चल पड़ता है।

रास्तेमें सौराष्ट्रमें पाँच सौ और महाराष्ट्रमें भी पाँच सौ कन्याओंसे वह विवाह करता है। गुजरातकी चार सौ कन्याओंसे वह विवाह करता है। मेवाड़की दो सौ कन्याओंसे वह विवाह करता है। अन्तर्वेदकी ९६ कन्याओंसे वह विवाह करता है। इस प्रकार बारह वर्ष पूरे होते ही वह उज्जैन नगरीमें पहुँचता है।

सारे नगरमें हलचल मच जाती है। लोग समझते हैं कि कोई राजा चढ़ाई करने आया है। श्रीपाल अकेला मैनासुन्दरीसे मिलने जाता है।

मैनासुन्दरी अपनी सास से कहती है—"यदि आपका बेटा आज भी नहीं आया तो मैं दीक्षा ले लूँगी।" जब श्रीपालकी माँ उसे एक दिन रुक जाने के लिए कहती है तो मैनासुन्दरी साससे कहती है—हे माँ! शत्रुने पिताजीको घेर लिया है। श्रीपाल यदि आयेगा भी तो कैसे आयेगा। उसी समय श्रीपाल आ जाता है। श्रीपाल मैनासुन्दरीको साथ लेकर वहाँ जाता है जहाँ सेनाका पड़ाव है। सभी रानियाँ मैनासुन्दरीके पैरों पड़ती हैं।

मैनासुन्दरी श्रीपालसे कहती है—"मेरे पिताने मेरे आचरणका उपहास किया है और सभामें मुझे दुतकारा है। इसलिए उनसे यह कहा जाये कि वे कम्बल पहनकर गलेमें कुल्हाड़ी डालकर ही हमसे भेंट करने आयें, नहीं तो उनकी कुशल नहीं है।" ऐसा कहकर मैनासुन्दरी एक दूतको यह सन्देश लेकर भेज देती है। दूतका सन्देश सुनकर राजा क्रोधित हो जाता है। परन्तु मन्त्रीके समझानेपर शान्त हो जाता है। दूत आकर सब वृत्तान्त सुना देता है। श्रीपाल मैनासुन्दरी को समझाता है और वह स्वयं ससुरसे मिलने जाता है। ससुरके साथ वह अपने बाल-सखा सात सौ राजाओंसे भी भेंट करता है।

वह अनेक राजपुत्रोंसे सेवा कराता है। बहुत-से देश और उपराज्यों को साधता है। उसके अन्तः-पुरमें कुल ८,००० हजार रानियाँ हैं।

वह अपनी चतुरंग सेना व अन्तःपुरके साथ चम्पानगरीमें जाता है जहाँ उसका चाचा वीरदमन है। श्रीपाल अपने चाचाके पास दूत भेजता है। दूत जाकर कहता है—"तुम्हारा भतीजा श्रीपाल आया है, वह तुम्हें बुला रहा है। तुम उसका पुरुषार्थ स्वीकार करते हो?" दूतकी बातपर क्रोधित होकर वीरदमन कहता है—"मैं श्रीपालको युद्धमें हराकर बन्दी बनाऊँगा।" वह रणभेरी बजवा देता है और श्रीपाल से युद्धके लिए निकल पड़ता है। दूत आकर सारा वृत्तान्त सुनाता है। श्रीपाल भी युद्धमें आ डटता है। वीरदमन हार जाता है। श्रीपाल उसे क्षमा कर देता है। वीरदमन श्रीपालको राज्य सौंपकर क्षमा याचना करता है।

श्रीपाल संजय महामुनिसे पूछता है—"किस पुण्यसे मैं अतुलनीय योद्धा और तीनों लोकोंमें विख्यात हुआ? किस कर्मसे कोढ़ी हुआ, समुद्रमें फेंका गया, डोम कहलाया और मैनासुन्दरी मेरी भक्त हुई?"

मुनिवर श्रीपालसे उसके पूर्वजन्म की कथा कहते हैं—"तुमने एक अवधिज्ञानी मुनिको कोढ़ी कहा था। नदी किनारे शिलापर बैठे मुनिको तुमने पानीमें ढकेल दिया था। तपस्यामें लीन मुनिको तुमने डोम कहा था। तुमने 'सिद्धचक्रविधि' अंगीकार की थी इसलिए तुम इन संकटोंसे निकल सके।"

श्रीपाल यह सुनकर अपनी आठ हजार रानियों सहित व्रत करता है। उनके साथ अन्य अनेक राजकुमार भी 'सिद्धचक्रव्रत' ग्रहण करते हैं। इस प्रकार श्रीपाल जीवनमें मनोवांछित फल प्राप्त करके, अन्तमें दीक्षा ले लेता है। उसके साथ उसकी अट्ठारह हजार रानियाँ भी संन्यासी हो जाती हैं।

अन्तमें 'सिद्धचक्रविधि' का महत्त्व बतलाया गया है। यह व्रत दुःखोंको हरता है और सुख देनेवाला और मोक्ष प्रदान करता है।

भावात्मक और वर्णनात्मक स्थल

प्रवन्ध काव्यमें इतिवृत्तमें दो प्रकार के स्थल होते हैं—

(१) भावात्मक, और

(२) वर्णनात्मक

पहलेका सम्बन्ध हृदयकी रागात्मक चेतनासे है। जबकि दूसरेका सम्बन्ध उन वाह्य परिस्थितियोंसे है, जिनमें मनुष्य रहता है। 'सिरिवाल चरिउ'में दोनों प्रकारके प्रसंगोंका कविने सुन्दर निर्वाह किया है।

भावात्मक वर्णन

भावात्मक स्थलोंको कविने कुशलतापूर्वक सँजोया और सँवारा है। मर्मस्थलको छू लेनेवाले संवादों तथा करुणाको उभारनेवाले दृश्योंका, निपुणतापूर्वक कविने वर्णन किया है। ऐसे स्थलोंमें—मैनासुन्दरीके विवाहका प्रसंग, कुन्दप्रभाका पुत्र-विछोहका दृश्य, मैनासुन्दरीका वियोग, रत्नमंजूषाका विलाप, प्रमुख हैं।

खच्चरपर सवार कोढ़ी (श्रीपाल)का करुण व सजीव चित्र कविने उपस्थित किया है—

"खच्चरपर सवार, विगलित शरीर, सिरपर टेसूके पत्तोंका छत्र। मुनिका निन्दक, पूर्वकर्मोंसे लड़ता हुआ। उसी अपराध और पापसे पीड़ित। घण्टियोंकी ध्वनियोंके साथ वहुत-से ढलते हुए चँवर, शृंगीनादका कोलाहल; नाक, हाथों और पैरोंकी अंगुलियाँ एकदम गली हुई। दूसरे कोढ़ी एकदम उससे मिले हुए।"

मैनासुन्दरीका कोढ़ीसे विवाह कर देनेसे कोई भी प्रसन्न नहीं है। रनिवास रोते हुए कह रहा है—

"यह कन्या-रत्न कोढ़ीके लिए उपयुक्त नहीं है। जो माला त्रिभुवनका सम्मोहन कर सकती है, क्या वह कुत्तेको वाँध देनेसे शोभा पा सकती है?" (१।१२)

करुणाका एक सुन्दर चित्र देखिए—मैनासुन्दरीका कोढ़ीसे विवाह हो रहा है। विवाहके समय मंगल-गीत गाये जाते हैं, परन्तु वेमेल विवाहके कारण स्त्रियाँ अमंगल कर रही हैं। सव दुःखी हैं, परन्तु मैनासुन्दरीके मनमें धीरज है। वह समझती है कि उसे कामदेव ही मिल गया है। वह रोती हुई माँ और वहनको समझाती है—"विधाताका लिखा हुआ कौन टाल सकता है? (१।१४)

श्रीपाल वारह वर्षके लिए प्रवासपर जाता है, तव मैनासुन्दरी उसका आँचल पकड़कर रोकती है। श्रीपाल इस प्रकार रोकनेको अपशकुन वतलाता है, तव मैनासुन्दरी कहती है—

"ओ प्रवासपर जानेवाले, तुम मुझपर क्रुद्ध क्यों हो? पहले मैं किसे छोड़ूँ—अपने प्राणोंको या तुम्हारे आँचलको? (१।२३)

माँ कुन्दप्रभा भी श्रीपालको प्रवासपर जानेसे मना करती है। वह कहती है—

"हे पुत्र! तुम्हें देखकर मुझे सहारा था। हे वत्स! जवतक मैं तुम्हें अपनी आँखोंसे देखती हूँ, तवतक मैं अपने पति अरिदमनके शोकको कुछ भी नहीं समझती। मैंने आशा करके ही अपने हृदयको धारण किया है। हे पुत्र! तुम मुझे निराश करके मत जाओ।" (१।२४)

रत्नमंजूषाके विलापका मनोवैज्ञानिक चित्रण कविने किया है—

"हे स्वामी! तुम कहाँ गये? हे चम्पा-नरेशके पुत्र श्रीपाल! हे कनककेतु!! हे कनकमाला!!! हे भाई चित्र और विचित्रवीर, मैं यहाँ हूँ और समुद्रके किनारे मर रही हूँ।........हे नाथ! हे नाथ!!........ धरतीके स्वामी, हे श्रीपाल! तुम्हारे विना जीते हुए भी मैं मरी हुई हूँ।" (१।४२)

विलाप करते हुए रत्नमंजूषा कहती है—"जो कुछ मैंने वोया है मैं ही उसे काटूँगी, लेकिन पिताने परदेशीसे मेरा विवाह क्यों किया?"

"काहे वप्प दिण्ण परएसहँ ?॥" (१।४३)

वर्णनात्मक स्थल

वर्णनात्मक स्थलोंका सुन्दर चित्रण है। कहीं-कहीं दृश्य 'व्यक्ति' या 'वस्तु'का 'शब्दचित्र' उसका प्रत्यक्षीकरण कर देता है। ऐसे प्रसंगोंमें हैं अवन्ती, मालव, उज्जैन, रत्नद्वीप, हंसद्वीप, कोंकणद्वीप, सहस्रकूट जिनमन्दिर, राजा कनककेतु, उसका परिवार, क़ोढ़ी श्रीपाल, धनपालकी आत्मग्लानि तथा युद्धका वर्णन।

अवन्ती

"इस भरत क्षेत्रमें अवन्ती नामक सुन्दर देश है, जहाँ राजा सत्यधर्मका पालन करता है। जहाँ गाँव नगरोंके समान हैं और नगर भी देवविमानोंको लज्जित करते हैं। जिसमें नगरोंके समूह और पुर, शोभासे सुन्दर हैं और जो द्रोणमुख[1], कव्वड[2] और खेड़ों[3]से बसा हुआ है। जिसमें सरि, सर और तालाब कमलिनियोंसे ढके हुए हैं। हंसोंके जोड़े हंसिनियोंके साथ शोभा पाते हैं। जिसमें गायों और भैंसोंके झुण्ड एक कतारमें मिलकर उत्तम धान्य (कलम शालि) इच्छा भर खाते हैं। जिसमें नील कमलोंसे सुवासित पानी बहता है, जिसका गम्भीर जल धीवरोंके लिए वर्जित है। जहाँ पथिक छह प्रकारका भोजन करते हैं और कोई दाख और मिरच (काली) चखते हैं। सभी लोग ईखका रस लेकर पीते हैं और प्याऊसे पानी पीते हैं। अवन्ती देशमें मालव जनपद है जो तरह-तरहसे शोभित और कई देशोंसे घिरा हुआ है। जिसकी स्त्रियाँ मसीली और अत्यन्त सुकुमार हैं। उनके हाथ मानो मालती कुसुमोंकी मालाएँ हों। जो भूमण्डलके मण्डलमें अग्रणी हैं, जिसका राजा जयश्रीके मण्डलमें सबसे आगे है। जहाँ गृहमण्डलको कोई ग्रहण नहीं करता, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति निडर है और वह शत्रुमण्डलसे नहीं डरता। जहाँ विद्वान् पुरुष बहुत-सी भाषाएँ पढ़ते हैं और जिसमें श्री-सम्पन्न वैश्य निवास करते हैं। जिस प्रकार गाय अपने चारों थनोंसे सन्तानका पोषण करती है, उसी प्रकार राजा भी धन-कण (अन्न)से प्रजाका पोषण करते हैं। जिसे अकीर्ति कभी नहीं छू सकती और जिसे छूनेके लिए अमरावती आती है।" (१।३,४)

उज्जैनी

"उसमें उज्जैनी नामकी नगरी अत्यन्त प्रसिद्ध है, जो, सोना और करोड़ों रत्नोंसे जड़ी हुई है और ऐसी जान पड़ती है मानो अमरावती ही आ पड़ी है। यद्यपि उसे देवता शक्ति-भर थामे हुए थे। वह अनोखी नगरी उपवनोंसे शोभित है। पक्षियोंके बच्चे उसमें चहचहा रहे हैं। लतागृहोंमें किन्नर रमण करते हैं। साल-वृक्षोंपर कोयलें कूक रही हैं। कमलोंसे ढँकी हुई जलपरिखाएँ शोभित हैं। तीन परकोटोंसे घिरी हुई वह नगरी यद्यपि पंचरंगी है, फिर उसके भीतर है बाजारका मार्ग, मानो वह रत्नोंसे निर्मित मोक्षका मार्ग हो। हाथी शुद्ध स्फटिक मणियोंसे निर्मित दीवालोंमें अपना प्रतिबिम्ब देखकर उसमें छेद करने लगते हैं। उसमें नौ, सात और पाँच भूमियोंवाले घर हैं, जिनपर बँधे हुए वन्दनवार शोभित हैं। जहाँ लोग छत्तीस प्रकारके भोगोंको भोगते हैं। सभी लोगोंकी जिनधर्ममें आसक्ति है।" (१।४,५)

हंसद्वीप

"हंस द्वीपके विषयमें कविका कहना है कि द्वीपमें विधाताने शुद्ध स्फटिक मणिके समान कोमल, अट्ठारह खानें बनायी हैं। सार, टार, गय, कणय आदि खदानें जिसमें प्रधान खदानें थीं। लाट, पाट, जिवादि, कस्तूरी, कुंकुम, हरिचन्दन और कपूर जिसमें हैं। जिसमें ऊँचे धवलगृह और जिनमन्दिर थे। हंसद्वीपमें प्रचुर घन गरजते हैं। दसलक्षण धर्म भी (ज्ञान विचक्षण) सभी वणिक् स्वीकार करते हैं। जिसके बाजारोंमें मणि और रत्न भरे हुए थे। समुद्रकी तरंगसे चंचल तटोंवाला है। उसमें जैनोंकी वैश्याटवी (बाजार) शोभित थी। स्त्रियाँ जहाँ नियमसे निकलती थीं। परमेश्वरके समान जिसमें मेघ गरजते थे। जिसमें पर-स्त्रीको देखना दण्डित समझा जाता था। लोग परस्त्री देखना सहन नहीं करते थे। जहाँ मधुर (मीठा)

---

१. वह नगर, जिसे स्थल और जलमार्ग जोड़ते हैं। २. खराब नगर। ३. छोटा गाँव।

वोला जाता और खाया जाता, परन्तु लोग मधु (शराव) न तो देते थे और न छूते थे। जिसकी सीमाओं-पर असंख्य मालाकार थे, परन्तु आत्म-ऋद्धिके लिए विष प्रयोग नहीं था। जिसमें पुष्कर और मगरवाली वहुत वगीचियाँ थीं। वहाँ यह कोई नहीं जानता था कि वगीचियाँ कहाँ हैं। जिसमें नग्न श्रमण श्रावकोंको अनुशासनमें रखते थे। देव, शास्त्र और गुरुकी भक्तिमें वे व्रत धारण करते थे। जिसमें भ्रमर मधुमाह (वसन्त) में मदसे छक जाते थे। लेकिन लोग मधुमाहमें निर्मद और विरक्त थे।" (१।३०).

सहस्रकूट जिनमन्दिर

सहस्रकूट जिनमन्दिरके वैभवका वर्णन उदात्त है। उसकी भव्यता और मोहकताके वर्णनमें कविकी भक्तिभावना निहित है—"सुवर्णसे निर्मित वह लालमणि और रत्नोंसे जुड़ा हुआ था और जो स्फटिक मणियों और मूँगोंसे सजा हुआ था। राजपुत्रोंने उसपर वड़े-वड़े मणि लगा रखे थे। वह सूर्यकान्त और चन्द्रकान्त मणियोंसे चमक रहा था। उसका मध्य भाग अभीष्ट मोतियोंसे चमक रहा था। उसमें श्रावकोंकी सभा गरुड़के आकारकी वनी हुई थी। उसके चारों ओर इन्द्रनीलमणि लगे हुए थे। उसकी श्रेष्ठ पंक्तियाँ गोमेध रत्नोंसे जड़ी हुई थीं। पुष्कर, गवय, गवाक्ष आदि अनेकों स्वच्छ रत्नोंसे उसकी नीचेकी भूमि जड़ी हुई थी, जो ऐसी लगती थी, मानो शुक्रके उदयमें मोती प्रतिविम्बित हों। उसके सिंहद्वारपर वज्रके दरवाजे लगे हुए थे।" (१।३४)

राजा कनककेतु, उसकी स्त्री कनकमाला, उसके पुत्र चित्र और विचित्र तथा उसकी पुत्री रत्नमंजूषाके गुणोंका परिचयात्मक वर्णन सुन्दर और सजीव है।

"उसमें (हंसद्वीपमें) विद्याधर राजा कनककेतु था, जिसके सोलह शिखरोंपर स्वर्णपताकाएँ थीं। उसने अपने शरीरसे कामदेवको जीत लिया था। वह कामदेव, राजनीतिके अंगोंको कुछ भी नहीं समझता था। वह अपनी पत्नीमें अनुरक्त था। जो धनकी खेतीकी रक्षा करनेमें किसान था। जिसके वचनसे विरुद्ध जो भी राजा होता, वह वैसे वहुत प्रकारके राजाओंको नष्ट कर देता। जो दीन और दयनीय लोगोंके लिए कल्पवृक्ष था और जो पापरूपी कलानिधिके नष्ट करनेके लिए दुष्ट था। जो असहनशील लोगोंके लिए प्रलय दिखा देता था और प्रचण्डवाहु, अतुलको तोल लेता था। जो वहुत-से सुख-धर्मका चिन्तन करता था। दिन-रात जो जीवकी मन्त्रणा करनेमें प्रमुख था और जिसने युद्धके मैदानमें प्रधानोंको नष्ट कर दिया था।"

"परिजनोंके लिए दुर्लभ उस प्रिय पतिकी घरवाली रति, रस, रूपमें सुन्दर थी। दृष्टिसे वह देखती और फिर देखती तो ऐसी लगती जैसे डरी हुई हिरनी हो। (१।३१)

गजके समान गमन करनेवाली कनकमाला उसकी स्त्री थी। इतनी प्यारी जिस प्रकार मणियोंकी माला हो। कोयलों के समान मधुर वोलनेवाली। वह सती अपने गुरु और प्रियके चरणोंकी वन्दना करती, उसी प्रकार जिस प्रकार भक्तिसे इन्द्राणी इन्द्रके पैर पड़ती है।

उसके प्रचुर गुणवाले दो पुत्र उत्पन्न हुए, जो परोपकारमें सावनके मेघोंके समान थे। निर्मल और पवित्र चित्तवाले। उन्होंने सारे संसारको ढक लिया था। उनका चित्त मोती और कपासके समान स्वच्छ था। एकका नाम चित्र और दूसरेका नाम विचित्र। उनका चित्त एक पलके लिए साहस नहीं छोड़ता था।

'मोतिउ कपासु णं साइचित्त।' (१।३२)

तीसरी उनकी वेटी थी—रत्नमंजूषा। वह शीलके आभूपणोंसे युक्त और गम्भीर थी। वह स्नेह और रूपकी सुन्दर अर्गला थी। उसके दोनों नेत्र ऐसे थे मानो शुक्र तारे हों। (१।३२)

इसी प्रकारका एक परिचयात्मक वर्णन प्रस्तुत है—दलवट्टण नगरके राजा धनपाल, उसकी स्त्री, उसके पुत्र और उसकी पुत्रीका—

"वहाँ (दलवट्टण नगर) राजा धनपाल धरतीका पालन करता था। उसे धनद और यक्ष नमस्कार करते थे। उसकी पट्टरानीका नाम वनमाला था। अपनी कोमल भुजाओंसे वह मालतीकी माला थी। (१।४६)

उसके पहले तीन सुन्दर पुत्र थे—कण्ठ, सुकण्ठ और श्रीकण्ठ। नरपतिके उन पुत्रोंकी उपमा किससे दी जाये?

उसकी एक पुत्री थी, जो स्नेहकी गुणमाला थी। मानो विधाताने स्नेह-गुणमालाका निर्माण किया हो। वह अपने रूप और उन्मुक्त सौन्दर्य से शोभित थीं। वह बहत्तर कलाओंसे सब मनुष्योंको मोहित करती थी।" (१।४६)

कविने कोढ़ी श्रीपालके विवाहके समयका सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। श्रीपाल राजा है परन्तु पूर्व-जन्मके कर्मोंसे वह कोढ़ी है। कवि उस कोढ़ीका वर्णन भी इतने सुन्दर ढंगसे करता है कि श्रीपाल कोढ़ी होते हुए भी किसी राजासे कम नहीं।

"श्रीपालको मुकुट बाँध दिया गया मानो एकछत्र राज्य ही बाँध दिया गया हो। हाथमें कंगन, वक्षपर हारावलि ऐसी लगती है मानो पहाड़पर स्थित धरतीपर राज्य करता हो। उसकी अंगुलिमें अँगूठी उसी प्रकार दी गयी, जिस प्रकार समुद्रपर पृथ्वी विलसित है, इस प्रकार 'सिद्धचक्र' के पुण्य-प्रभावसे उसने उत्साहसे उस कन्या-रत्नसे विवाह कर लिया।

आत्मग्लानि और पश्चात्तापका एक सुन्दर चित्रण—

"सिद्ध-चक्र-विधिसे श्रीपालका कोढ़ दूर हो जाता है। प्रजापाल अपनी बेटीसे कहता है—'हे पुत्री! मेरा मुँह काला हो गया था परन्तु तुमने उसे स्फटिक मणिके समान उज्ज्वल बना दिया। मेरा अपयश समूचे धरती-तलपर फैल गया था, परन्तु तुमने उसे बिलकुल मिटा दिया। मैं बहुत बड़ी विषम मतिसे मारा जाता। तुमने फिर एकाएक जीवित कर दिया। हे पुत्री! मेरा नाम कोई भी नहीं लेता। मैं लोकमें बेचारा वीर रह गया'।" (१।१९) श्रीपाल और वीरदमनके युद्धका सजीव चित्र है। (२।२३)

●

चरित्र-चित्रण

'सिरिवाल चरिउ' एक मध्ययुगीन चरित्र काव्य है जिसका नायक और कथानक दोनों ही पौराणिक परम्परासे सम्बद्ध हैं, जहाँ कथा और उसके पात्र परम्परागत होते हैं तथा उनका चरित्र भी वहुत कुछ रूढ़ और परम्परागत होता है। अनुभूति-युगीन यथार्थको उसमें खोजना व्यर्थ है। अतः ऐसे काव्योंमें चरित्र-चित्रणका अर्थ यह देखना है कि उसमें कितनी नवीनता और परिस्थितिके अनुकूल कितना स्पन्दन हमें मिलता है। इस दृष्टिसे, यद्यपि मैनासुन्दरीको प्रमुख चरित्र माना जाना चाहिए था, क्योंकि श्रीपाल पूर्वजन्ममें और इस जन्ममें जो कुछ है, उसके इस होनेमें मैनासुन्दरीका वहुत कुछ योगदान है। लेकिन मध्ययुगीन काव्योंमें नायक अधिकतर पुरुष ही होता है, अतः श्रीपाल ही उसका नायक है।

मैनासुन्दरी

मैनासुन्दरी उज्जैनके राजा प्रजापालकी छोटी कन्या है। उसकी वड़ी वहन, सुरसुन्दरीका कोई चरित्र नहीं है। वह अपने मनपसन्द विवाहके वाद सन्तुष्ट है। मैनासुन्दरीकी समस्या यह है कि वह जैनधर्ममें दीक्षित है, जैनमुनियोंसे उसने दीक्षा ग्रहण की है। सभी आगम विद्याओं और कलाओंमें वह निपुण है। गीत और नृत्यमें भी उसकी असाधारण गति है। उसने जैनधर्म भी पूरा पढ़ा है। राजा उससे अपनी पसन्दका वर माँगनेके लिए कहता है। लेकिन उसका कहना है कि विवाह एक सामाजिक वन्धन है, यह माँ-वापका काम है कि वे विवाह करें, लेकिन उसके वाद लड़कीका भाग्य। पिता उसके भाग्यवादी दर्शनसे चिढ़ जाता है। और क्रोधमें आकर, कोढ़ी—श्रीपालसे उसका विवाह कर देता है। मैनासुन्दरी उसे सहर्ष स्वीकार कर लेती है। रनिवास और माँके करुण क्रन्दनके वावजूद, मैनासुन्दरी विवाह कर लेती है और उसे यह अच्छा नहीं लगता कि उसके पतिको कोई कोढ़ी कहे। वह उसे कामदेवके समान सुन्दर मानती है। कवि यह तो कहता है कि श्रीपालने 'सिद्धचक्र विधि' के प्रभावसे मैनासुन्दरी-जैसी पत्नी पा ली, पर मैनासुन्दरीके लिए क्या कहा जाये? वह इसे विधाताका अमिट लेख मानकर स्वीकार कर लेती है। यही उसका भाग्यवाद है। लेकिन अपने सारे भाग्यवादी दर्शनके वावजूद मैनासुन्दरीके मनमें यह पीड़ा अवश्य है कि वह एक साधारण पुरुषको व्याह दी गयी, क्योंकि जव उसकी सास कुन्दप्रभा आती है और उससे मालूम होता है कि श्रीपाल राजपुत्र है, तव वह प्रसन्न हो उठती है और उसका सन्देह दूर हो जाता है। तव 'सिद्धचक्र विधि' से अपने प्रियकी कोढ़ दूर करनेका निश्चय करती है और वह इसमें सफल भी होती है। श्रीपाल घरजँवाई वनकर रहता है। उसे यह अच्छा नहीं लगता कि वह घरजँवाई वनकर वहाँ रहे। इस वातसे वह खिन्न रहता है। मैनासुन्दरी समझती है कि श्रीपाल किसी सुन्दरीपर आसक्त है। वह श्रीपालकी खुशीके लिए मनचाही स्त्रीको अपनानेकी स्वीकृति उसे दे देती है। मैनासुन्दरीको भी यह अच्छा नहीं लगता कि उसका पति घरजँवाई वनकर रहे।

पत्नी सव कष्ट सहन कर सकती है, परन्तु पतिका विछोह उसके लिए असहनीय है। श्रीपाल वारह वर्षके लिए प्रवासपर जाता है। मैनासुन्दरी भी उसके साथ जाना चाहती है। वहुत कहने-सुननेके वाद भी जव नहीं ले जाता तो वह कहती है—"वारह वर्षमें यदि तुम नहीं आये तो मैं महान् तप करूँगी।" पतिके विना वह संन्यास ही लेगी, इसके अलावा और कोई रास्ता भी नहीं है। विदाईके समय वह श्रीपालको कुछ शिक्षाप्रद और अपने कर्तव्य सम्बन्धी वातोंका स्मरण दिलाती है जिससे उसे प्रवासमें कठिनाइयोंका सामना न करना पड़े। वह श्रीपालको याद दिलाती है कि जिनभगवान्, माता कुन्दप्रभा, अंगरक्षकों, स्वाभिमान तथा कर्तव्योंको मत भूलना। पहले वह साथमें जानेके लिए श्रीपालसे अनुनय-विनय करती है परन्तु

कर्तव्यका स्मरण कराते समय अपने विषयमें केवल इतना ही कहती है—"मुझ दासीको मत भूलना।" वह नहीं चाहती कि पतिके मार्गमें रोड़ा वने। परन्तु उसके प्रति स्नेह जतानेके लिए इतना अवश्य कहती है—"वारह वर्षमें तुम लौटकर नहीं आते तो मुझे मौतका सहारा ही है।"

श्रीपाल वारह वर्षकी अवधिके पश्चात् लौटकर आता है। मैनासुन्दरी अपने पिता द्वारा किये गये दुर्व्यवहारके वारेमें वताती है। वह श्रीपालसे कहती है कि आप उनसे यह कहें कि वे कम्वल पहनकर और गलेमें कुल्हाड़ी डालकर उपस्थित हों। वह दूत भी भेज देती है। पिताके प्रति इस प्रकारके व्यवहारकी अपेक्षा उससे नहीं की जाती। जो मैनासुन्दरी पिताकी आज्ञाको सिर-आँखोंपर रखकर कोढ़ीसे विवाह करती है और विवाहके वाद १२ वर्ष तक उसके घर रहती है। उसका पिताके प्रति इस प्रकारका व्यवहार लोकसम्मत नहीं है। इस प्रकार वह धार्मिक आस्थाकी प्रतीक पात्र है।

श्रीपाल

कृतिका नायक—श्रीपाल, सिद्ध पुरुष है, इसलिए उसके कार्य-कलापोंमें मानवीय संवेदना व स्वाभाविकता नहीं है। वह जो कुछ करता है ऐसा लगता है मानो उसे यह करना ही था और यह पहलेसे ही निर्धारित है। वह कहीं भी असफल नहीं होता। महान् उपलब्धियोंके वावजूद भी वह खुश नहीं दिखता और भयंकर त्रासके समय भी उसका मन द्रवित, दुःखी या निराश नहीं होता है। ऐसा लगता है कि वह चेतन नहीं, जड़ है। प्रारम्भसे लेकर अन्त तक, पूरी कृतिमें कहीं भी उसके मानसिक अन्तर्द्वन्द्वका तथा मनः-स्थितिके उतार-चढ़ावका चित्रण नहीं मिलता है। वह इस जन्ममें जो कुछ भी है वह पूर्वजन्मके कर्मों और पुण्योंका फल है। इसलिए उसका चरित्र, वरदानों और अभिशापोंका परिणाम मात्र है। वरदानोंके कारण वह अतिशय सुन्दर और अजेय है तथा अभिशापोंके कारण वह अतिशय कोढ़ी है। इस प्रकार वह दो चरम स्थितियोंमें रहता है। ऐसा लगता है कि नायक पूर्वजन्मके कर्मोंके हाथका खिलौना है। इसके अतिरिक्त वह जो कुछ है, वह मैनासुन्दरीके द्वारा वनाया हुआ है। मैनासुन्दरी उसे दो वार उवारती है। पूर्वजन्ममें 'सिद्ध-चक्र विधि' द्वारा उसके पापोंको दूर करती है और इस जन्ममें कोढ़ दूर करती है। पूरी कृतिमें वह मैनासुन्दरीके प्रति कृतज्ञ रहता है।

वारह वर्षकी अवधिके लिए प्रवासपर जा रहे श्रीपालके मनमें अपनी माँ और स्त्रीके प्रति कोई संवेदना नहीं है। उसको छोड़नेका उसे कोई दुःख नहीं है। जाते समय माँ उससे कहती है कि पतिके वाद उसका ही सहारा था, अव वह सहारा भी नहीं रहेगा। कुन्दप्रभाके वचन सुनकर किसी भी कठोर-हृदयका मन द्रवित हो सकता है परन्तु श्रीपालपर इसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। मैनासुन्दरी भी उसके साथ चलनेके लिए कहती है परन्तु वह उसे समझा देता है। मैनासुन्दरीसे विछुड़नेका भी श्रीपालको कोई दुःख नहीं है।

धवलसेठके जहाजों को वह पैरोंसे चला देता है, लाख चोरोंको अकेला ही हरा देता है। श्रीपालका चरित्र एक पौराणिक चरित्र है। इसलिए उसके कार्योंमें हमको अस्वाभाविकता लगती है। परन्तु जिस उद्देश्य के लिए उसका चरित्र चित्रण किया गया है, उसकी पूर्ति वह करता है। पौराणिक काव्यका नायक इसी प्रकार कार्य करता है। वह सिद्ध पुरुष है, इसलिए अजेय है। इसके अतिरिक्त कवि 'कर्मोंके फल' को वताना चाहता है। पूर्वजन्मके कर्मोंके कारण ही वह कोढ़ी है, समुद्रमें फेंका जाता है और डोम कहलाता है। पूर्व जन्मके अच्छे कर्मोंके कारण ही वह असफल नहीं होता और मैनासुन्दरीके समान पत्नी पाता है।

धवलसेठ उसे षड्यन्त्र द्वारा समुद्रमें गिरा देता है। उसकी पत्नी रत्नमंजूषाके प्रति दुर्व्यवहार करता है। डोमोंसे मिलकर षड्यन्त्र रचकर उसे डोम सिद्ध कर देता है। अन्तमें जव रत्नमंजूषासे सचाई मालूम होती है तव राजा धनपाल, धवलसेठको मृत्यु दण्ड देनेकी आज्ञा देता है, परन्तु श्रीपाल उसे छुड़ा देता है। वह उससे अपना हिस्सा ले लेता है। ऐसे व्यक्तिके प्रति भी उसके मनमें कोई द्वेष-भाव उत्पन्न नहीं होता है। इसके अतिरिक्त समुद्रमें वहते समय भी उसके मनमें धवलसेठके प्रति कोई आक्रोश या प्रतिशोधकी भावना

दिखाई नहीं देती है। जिसने उसे दो बार मार डालनेका षड्यन्त्र रचा और उसकी पत्नीके साथ दुर्व्यवहार किया, उसे केवल धन लेकर (पुत्रका हिस्सा) छोड़ देना, तर्कसंगत नहीं लगता है, बल्कि वह धनपालसे कहता है कि "यह (धवलसेठ) नहीं होता तो मुझे गुणमाला नहीं मिलती।"

श्रीपाल कुल आठ हजार कन्याओंसे विवाह करता है। यह संख्या चौंका देनेवाली है और इस प्रकारकी कल्पना भी करना इस युगमें कठिन है। परन्तु कविने श्रीपालको एक सिद्ध पुरुषके रूपमें उपस्थित किया है। इसलिए अधिक कन्याओंसे विवाह करना भी उसके वैभवको बतानेका एक साधन है।

गुणमालासे विवाह करनेके बाद श्रीपाल चित्रलेखा और उसके साथ अन्य सौ कन्याओंसे विवाह करता है। विवाहकी यह शर्त थी कि नगाड़ा बजाकर उन कन्याओंको नचाना और उनको जीतना। इसके पश्चात् वह विलासवती और उसके साथ ९०० कुमारियोंसे विवाह करता है। कोंकणद्वीपमें वह यशोराशिविजयकी आठ कन्याओंकी समस्याओंकी पूर्ति करके उनसे विवाह करता है। इसके बाद पंच पाण्ड्य, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र, गुजरात, मेवाड़, अन्तर्वेद आदि देशोंमें अनेक कन्याओंसे विवाह करता है। कन्याओंसे विवाहके समय कहीं भी उसकी मनोदशाका वर्णन नहीं मिलता है। इन विवाहोंसे उसके मनमें क्या प्रतिक्रिया होती है, वह उन कन्याओंके प्रति क्या भाव रखता है, यह कहीं भी मालूम नहीं होता। जहाँ भी और जितनी भी कन्याओंसे विवाहकी बात होती है, वह तुरन्त तैयार हो जाता है और विवाह कर लेता है। केवल एक बार वह मनमें मैनासुन्दरीके लिए सोचता है—"अब यदि मैं उज्जैन नहीं जाता हूँ तो मेरी प्रिया मैनासुन्दरी, शाश्वत सुख देनेवाली दीक्षा ले लेगी।" वैसे बारह वर्ष पूरे हो गये थे, इसलिए यह भी निश्चित है कि अब श्रीपालको वापस आना है, क्योंकि उसके सभी कार्य पूर्व निर्धारित हैं। इसके अतिरिक्त उसका वचन न टूटे इसलिए भी यह आवश्यक है कि वह समयपर लौट आये।

मैनासुन्दरी अपने पिताके द्वारा किये गये दुर्व्यवहारकी शिकायत उससे करती है। वह पिताको कम्बल ओढ़कर तथा गलेमें कुल्हाड़ी डालकर दरबारमें उपस्थित होनेके लिए दूत भेजती है। इसमें कविने श्रीपालकी उदारता व महानता दिखानेका प्रयत्न किया है। वह अपने चाचा वीरदमणको भी हराता है। इस प्रकार श्रीपाल कहीं भी असफलताका मुँह नहीं देखता। वह जहाँ भी रहता है और जिन परिस्थितियोंमें रहता है, वे सब उसके अनुकूल रहती हैं।

वह मुनिराजसे अपनी सफलताओं तथा यशस्वी होनेका कारण पूछता है। वह यह भी पूछता है कि किन कारणोंसे वह कोढ़ी हुआ, समुद्रमें फेंका गया और डोम सिद्ध किया गया? तब मुनि महाराज उसके पूर्वजन्मकी कथा सुनाकर उसे बतलाते हैं कि पूर्वजन्मोंके कर्मोंके कारण ही श्रीपालपर विपत्तियाँ आयीं तथा पुण्योंके प्रभावसे ही उसने जीवनमें सफलता, यश आदि अर्जित किये। स्पष्ट है कि वह जो कुछ है, वह पूर्वजन्मके कर्मोंका फल है। पूर्वजन्मके संचित कर्मोंको वह इस जन्ममें सुख और दुःखके रूपोंमें भोग रहा है। परम्पराके अनुसार अन्तमें वह अपनी रानियों सहित संन्यास ले लेता है।

धवलसेठ

धवलसेठका चरित्र, खलनायकका चरित्र है। कथानकमें उत्तेजना व मोड़ देनेका काम खलनायक ही करता है। धवलसेठ एक धूर्त, कपटी, कामान्ध और धोखेबाज है। स्वार्थ-सिद्धिके लिए वह नीचतम हरकतें भी करता है।

श्रीपाल उसके जहाज चलाता है, तब वह खुश होकर उसे अपना धर्म-पुत्र मान लेता है। श्रीपाल उससे दसवाँ हिस्सा माँगता है। जलदस्युओंसे भी श्रीपाल उसकी रक्षा करता है। परन्तु कामान्ध धवलसेठ, रत्नमंजूषापर आसक्त हो जाता है। वह यह भूल जाता है कि उसने श्रीपालको धर्मपुत्र माना है। धवलसेठको उसका मन्त्री समझाता भी है कि यह पाप है। परन्तु सेठकी आँखोंपर वासनाका चश्मा चढ़ा हुआ होनेसे उसे और कुछ नहीं दिखाई देता। वह मन्त्रीसे रत्नमंजूषाको प्राप्त करनेके षड्यन्त्रमें सहायताके लिए कहता है और एक लाख रुपया देनेका लालच भी देता है। श्रीपाल मच्छ देखनेके लिए मस्तूलपर चढ़ता है,

परन्तु रस्सी काटकर उसे समुद्रमें गिरा दिया जाता है। धवलसेठ दिखावा करने के लिए तुरन्त दौड़कर आता है।

धवलसेठ अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए दूतीको रत्नमंजूपाके पास भेजता है परन्तु रत्नमंजूपा दूतीको खूब फटकारती है। तव धवलसेठ रत्नमंजूपाके हाथ जोड़कर और पैर पकड़कर मनाता है। रत्नमंजूपा उसे खरी-खोटी सुनाती है। उसे सुअर, कुत्ता, गधा, कलमुखी, पापी कहती है। परन्तु उस निर्लज्जपर इसका कुछ भी असर नहीं होता। रत्नमंजूपा उसे अपना ससुर मानती है इसलिए ससुरका वहूके प्रति इस प्रकारका व्यवहार पाप है। अन्तमें जलदेवता आकर रत्नमंजूपाकी रक्षा करते हैं।

धवलसेठ दलवट्टण नगरमें आता है। राजाके दरवारमें वह श्रीपालको देखकर सन्न रह जाता है। वह डोमोंकी सहायतासे पड्यन्त्र रचता है। वह डोमोंसे कहता है कि तुम राज-दरवारमें नृत्य करके श्रीपालको अपना सम्वन्धी वताओ। इस कार्यके लिए वह डोमोंको एक लाख रुपया देनेके लिए वचन देता है। राजा श्रीपालको अपनी जाति छिपानेके लिए दण्ड देनेके लिए तैयार हो जाता है परन्तु रत्नमंजूपा द्वारा सही स्थिति-का ज्ञान करानेपर, वह श्रीपालको छोड़कर, धवलसेठको पकड़ता है। वह धवलसेठके हाथ, कान, नाक छेद देता है। वह उसे मरवानेके लिए तैयार हो जाता है, परन्तु श्रीपाल उसे छुड़ा देता है। वस्तुतः धवलसेठके चरित्र-चित्रणमें कवि मानवी संवेदनासे दूर है, वह भी श्रीपालकी तरह सिद्ध चरित्र है।

रत्नमंजूषा

रत्नमंजूपा हंसद्वीपके राजा कनककेतुकी कन्या है। वह रूपवती और गुणवती है। कनककेतु जिन-मन्दिरमें जाकर गुरु महाराजसे पूछता है कि वह कन्या किसको दी जाये? मुनि महाराज उसे वताते हैं कि जो सहस्रकूट जिनमन्दिरके वज्र किवाड़ोंको खोल दे, उसीसे रत्नमंजूपाका विवाह कर देना। श्रीपाल उन किवाड़ोंको खोल देता है। इस प्रकार रत्नमंजूपाका विवाह श्रीपालसे हो जाता है। श्रीपाल उसे अपना पूरा परिचय देता है। रत्नमंजूपा अपने पतिसे सन्तुष्ट है। उसे अच्छा वर मिल गया।

वह अपने पतिके साथ जहाजमें जाती है। परन्तु दुर्भाग्यसे धवलसेठके पड्यन्त्रके कारण उसे शीघ्र ही पतिका वियोग सहना पड़ता है। वह धवलसेठके द्वारा सतायी जाती है। ऐसे क्षणमें वह अपने भाग्यको कोसती है और परदेशीके साथ विवाह करनेपर पिताको उलाहना देती है। वह कहती है कि पिताने परदेशी-के साथ मेरा विवाह क्यों किया? ऐसे समय वह अपने-आपको असहाय महसूस करती है। इसलिए वह अपने माँ-वाप, भाई-वहनको याद करती है। श्रीपालकी वीरताकी वातें याद कर विलाप करती है। वह इसे अपने कर्मोंका ही फल मानती है। उसे यह विश्वास है कि श्रीपालसे उसकी भेंट होगी, क्योंकि मुनिने कहा है कि १२ वर्ष वाद मैनासुन्दरीसे श्रीपालका मिलाप होगा। मुनिके वचनोंमें उसे दृढ़ विश्वास है। इसके अतिरिक्त उसका विवाह भी नैमित्तिकके कहनेके अनुसार हुआ है, इसलिए उसे विश्वास है कि श्रीपालसे उसका मिलाप होगा।

धवलसेठ उसके पास दूती भेजता है। वह दूती और धवलसेठ दोनोंको फटकारती है। धवलसेठको वह अनेक खरी-खोटी वातें सुनाती है। वह पतिव्रता है और अन्य पुरुपको देखना भी पाप समझती है। धवलसेठको वह पितातुल्य और ससुर समझती है। अन्तमें हारकर फिर वह अपने भाग्य व पूर्वजन्मके कर्मोको इस आपत्तिके साथ जोड़ती है। वह इसे पूर्वजन्मके कर्मोका फल ही मानती है।

उसके रोनेपर जलदेवताका समूह आकर उसकी रक्षा करते हैं। धवलसेठके पड्यन्त्रसे श्रीपाल डोम सिद्ध कर दिया जाता है। गुणमाला श्रीपालसे उसकी जाति पूछती है। वह गुणमालाको जानकारी लेनेके लिए रत्नमंजूपाके पास भेजता है। गुणमालासे रत्नमंजूपा पहले यह पूछती है कि यह श्रीपाल कौन है। जव उसे यह पूर्ण विश्वास हो जाता है कि यह श्रीपाल उसका पति ही है, तव वह गुणमालासे सारा रहस्य नहीं वताती

है। उसके मनमें यह आशंका होगी कि कहीं धवलसेठ फिर कोई षड्यन्त्र न करे। वह जाकर राजाको ही सारी घटना सुनाती है।

रत्नमंजूषा हमारे सामने एक वियोगिनीके रूपमें ही आती है।

प्रजापाल

राजा प्रजापाल (पयपाल) उज्जैनीका राजा है। उसकी नरसुन्दरी नामकी पत्नी है। उसकी दो कन्याएँ हैं—सुरसुन्दरी और मैनासुन्दरी। वह सुरसुन्दरीका विवाह तो उसके मनपसन्द वर—कौशाम्बीके राजा सिंगारसिंहसे कर देता है। मैनासुन्दरीसे भी वह कहता है, "तुम अपने पसन्दके वरसे विवाह कर लो।" परन्तु मैनासुन्दरी कहती है, "माँ-बापके द्वारा तय किये गये वरसे ही कुलीन कन्याएँ विवाह करती हैं। माँ-बाप विवाह करते हैं, आगे उसका भाग्य।" पयपाल अपनी बेटीके भाग्यवादी दर्शनसे क्रुद्ध हो जाता है और उसका विवाह कोढ़ीसे कर देता है। कोई भी पिता अपनी कन्याका विवाह जानते हुए और विना किसी मजबूरीसे कोढ़ीसे नहीं करता। वह अपनी जानकारी और समझमें अच्छेसे अच्छे वरकी तलाश करता है और उसीसे विवाह करनेका प्रयत्न करता है। बेटीके शब्दोंको असत्य सिद्ध करनेके लिए या उसको अपने भाग्यपर छोड़ देनेके लिए ही क्रोधमें आकर पयपाल कोढ़ीसे उसका विवाह कर देता है। भाग्यपर विश्वास करनेका अर्थ यह नहीं कि जान-बूझकर कुएँमें गिर पड़ना। पयपाल जान-बूझकर उसको कोढ़ीके पल्ले बाँध देता है। सारा रनिवास इस बातसे दुःखी होता है। माँ और बहन भी रोती हैं। पयपालकी पत्नी व मन्त्री भी उसे समझाते हैं। मन्त्री उस कोढ़ी और मैनासुन्दरीकी तुलना करके बतलाता है कि यह कन्यारत्न उस कोढ़ीसे विवाह करनेके योग्य नहीं है। पयपालने किसीकी भी चिन्ता नहीं की और उसने मैनासुन्दरीका विवाह कोढ़ीसे कर दिया।

परन्तु बादमें वह अपने कियेपर पश्चात्ताप करता है। वह यह स्वीकार करता है कि उसने यह कार्य क्रोधमें आकर किया है। उसने अपनी पत्नी व मन्त्रीकी बात न मानकर गलती की है। वह यह मानता है कि उसने अपनी कन्याके जीवनको नष्ट कर दिया है। वह यह मानता है कि मौतके विना अब कोई प्रायश्चित्त नहीं किया जा सकता है परन्तु वह यह भी मानता है कि इसमें उसका दोष नहीं है, क्योंकि शुभ और अशुभ कर्मोंका फल है।

मैनासुन्दरी 'सिद्धचक्र विधि' से श्रीपालका कोढ़ दूर कर देती है। पयपालके मनमें जो पश्चात्तापकी आग जल रही थी, वह अब शान्त हुई। वह श्रीपालके पास जाकर कहता है कि तुमने गुणोंसे युक्त कन्यारत्न प्राप्त किया है। वह मैनासुन्दरीके प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करता है। वह कहता है, "मेरा मुँह काला हो गया था, परन्तु हे बेटी ! तुमने उसे स्फटिक मणिके समान उज्ज्वल बना दिया।"

श्रीपाल बारह वर्षके बाद लौटता है। मैनासुन्दरी अपने पिता द्वारा किये गये दुर्व्यवहारका बदला लेना चाहती है। वह श्रीपालसे शिकायत करती है और दूत भेजकर प्रजापालको कम्बल ओढ़कर तथा गलेमें कुल्हाड़ी डालकर उनसे मिलनेके लिए कहती है। प्रजापाल दूतके समाचार सुनकर क्रुद्ध हो जाता है। परन्तु मन्त्रीके समझानेपर वह शान्त हो जाता है। इस प्रकार प्रजापालका चरित्र पहले एक सनकीके रूपमें, बादमें प्रायश्चित्तकी आगमें जलते हुए और अन्तमें समझौतावादीके रूपमें हमारे सामने आता है।

कुन्दप्रभा

कुन्दप्रभा श्रीपालकी माँ और अरिदमणकी पत्नी है। पतिके मर जानेके पश्चात्, उसका एकमात्र सहारा श्रीपाल ही है। श्रीपाल पूर्वजन्मोंके कर्मोंके फलस्वरूप कोढ़ी है। मैनासुन्दरी 'सिद्धचक्र विधि' द्वारा उसका कोढ़ दूर कर देती है। कुन्दप्रभा यह जानकर बहुत प्रसन्न होती है। तब वह मैनासुन्दरीको बताती है कि श्रीपाल राजा है।

श्रीपाल घरजँवाई बनकर प्रजापालके यहाँ रहना पसन्द नहीं करता है। वह बारह वर्षके लिए विदेश जाना चाहता है। कुन्दप्रभाका एकमात्र सहारा भी उससे छिन रहा है, इसलिए वह व्याकुल हो उठती है। वह श्रीपालको बार-बार समझाती है और विदेश जानेके लिए मना करती है। वह कहती है—"हे पुत्र ! तुम ही मेरे एक सहारे हो। पतिकी मृत्युके पश्चात् मैं तुम्हारी आशासे अपने दुःखको भूली हूँ। तुम मुझे निराश करके मत जाओ।" कुन्दप्रभाके हृदयमें श्रीपालके प्रति अतिशय स्नेह है। परन्तु जब समझाने और मनानेपर भी श्रीपाल रुकनेके लिए तैयार नहीं होता तो वह विवश हो जाती है। माँ अपने पुत्रके लिए अनेक कष्ट सहती है। वह चाहती है कि उसका पुत्र सदैव उसकी आँखोंके सामने रहे ताकि वह उसके दुःख-दर्दको दूर कर सके। श्रीपाल प्रवासपर जा रहा है इसलिए कुन्दप्रभा उसे सीख देती है। वह उसको उन सारी कठिनाइयोंसे सावधान कर देती है, जो बाहर कभी भी उसके सामने आ सकती है। वह श्रीपालको कुछ बुराइयोंसे दूर रहनेके लिए कहती है। उसका हृदय माँकी ममतासे ओत-प्रोत है। श्रीपालकी वापसीकी आशा न रहनेपर मैनासुन्दरी कुन्दप्रभासे कहती है—"आज भी तुम्हारा पुत्र नहीं लौटता है तो मैं दीक्षा ले लूँगी।" कुन्दप्रभा उसे एक दिनके लिए रुक जानेकी सलाह देती है। उसके मन में दृढ़ विश्वास था कि श्रीपाल अवश्य लौट आयेगा। एक माँ यह कल्पना कैसे कर सकती है कि उसका पुत्र, प्रवाससे लौटकर नहीं आयेगा।

इस प्रकार कुन्दप्रभाको पुत्र-वियोगमें दुःखी और उसके आगमनकी प्रतीक्षामें ही चित्रित किया गया है।

रस और अलंकार

रस योजना

'सिरिवालचरिउ'में रस योजनाकी वही स्थिति है जो दूसरे अपभ्रंश चरित काव्योंमें है, और चरित काव्योंकी रसात्मक स्थिति यह है कि उसकी अन्तिम परिणति शान्त रसमें होती है। इन काव्योंमें यह आवश्यक नहीं है कि उनमें उपलब्ध रसोंमें अनिवार्य रूपसे अंगांगी भाव हो। यदि अन्तिम परिणतिके आधारपर रसकी मुख्यता मानी जाये, तो यही कहा जा सकता है कि 'सिरिवाल चरिउ'में शान्त रसकी मुख्यता है, नहीं तो विभिन्न प्रसंगोंमें रसोंकी स्वतन्त्र सत्ता भी स्वीकार की जा सकती है। शान्त रसकी मुख्यताके साथ 'भक्ति रस'के अस्तित्वका भी प्रश्न जुड़ा हुआ है। जैनधर्मकी दार्शनिक प्रतिक्रियामें 'भक्ति' मुक्तिका साक्षात् साधन नहीं है। हाँ, चित्तशुद्धि, वैराग्य आदिके लिए भक्ति उपयोगी है। मैं समझता हूँ कि अन्य अपभ्रंश काव्योंकी तरह आलोच्य कृतिमें भक्तिके प्रसंग और किसी रसके प्रसंगोंसे अधिक प्रसंग हैं। इन प्रसंगोंका विश्लेपण अन्यत्र किया जा चुका है। वैराग्य विरतिके प्रसंग भी इसमें जहाँ-तहाँ उपलब्ध हैं।

इसके अतिरिक्त श्रृंगारके संयोग पक्षका बहुत कम वर्णन कवि करता है। मैनासुन्दरीसे नाटकीय विवाह और कोढ़ दूर हो जानेके बाद, यह सम्भावना भी थी कि कवि दोनोंके विलासपूर्ण विवाहित जीवनका चित्रण करेगा, परन्तु ऐसा नहीं होता। ससुरालमें रहनेके लोकापवादसे दुःखी श्रीपाल अपने स्वतन्त्र और पुरुषार्थ-भरे जीवनकी खोजमें बारह वर्षके लिए प्रवासपर जाना चाहता है। मैनासुन्दरी उसे मना करती है, फिर उसके साथ जाना चाहती है और जब वह साथ ले जानेके लिए तैयार नहीं होता तो उससे १२ वर्षमें लौट आनेकी प्रतिज्ञा करवाती है और उसे जो लम्बा-चौड़ा उपदेश देती है उसमें कविकी उपदेशात्मकताकी झलक मिलती है। कवि यह संकेत अवश्य करता है कि उसने 'चित्रशाला रति मन्दिर'में क्रीड़ा करते हुए यह उपदेश दिया, परन्तु क्रीड़ाओंका कवि उल्लेख नहीं करता। उपदेशमें वह दो बातें कहती है—(१) जिनभक्ति (२) उसे विस्मृत न करे। वियोगके समय वह अवश्य प्रियका अंचल पकड़ लेती है। वह मध्ययुगीन वियोगिनीकी तरह आचरण करती है और कहती है—

"पढमं पी को मुक्कमि णिय पाण किं अंचलं तुज्झ।"

इसी क्रममें माँ कुन्दप्रभा भी अपने प्रवासी पुत्रको सम्बोधित करती है, यह वियोग श्रृंगार और वात्सल्यका मिला-जुला प्रसंग समझना चाहिए। वह कहती है—

"हे पुत्र! जब मैं तुम्हें अपनी आँखोंसे देख लेती हूँ तो अपने पति अरिदमनका दुःख भूल जाती हूँ। मैं तुम्हारी आशाके सहारे जीवित हूँ, तुम मुझे निराश करके जा रहे हो।"

ऐसा प्रतीत होता है कि कविकी श्रृंगारके संयोगपक्षके चित्रणमें अभिरुचि नहीं है। हंसद्वीपके राजाकी कन्या रत्नमंजूषासे विवाह होनेके बाद श्रीपाल अपनी नयी पत्नीको पिछली बातें बताता है। कवि उनकी विलास लीलाका चित्रण नहीं करता। हाँ, जब धवलसेठकी कूट योजनाके फलस्वरूप वह अपने प्रिय श्रीपालसे बिछुड़कर सेठके चंगुलमें फँस जाती है, तो विलाप करती है। इसमें करुण रसका आभास है। आभास यथार्थमें इसलिए नहीं बदल पाता, क्योंकि श्रीपालके जीवनकी पूर्व घटनाओंकी जानकारी होने और दैवी सहायता मिलनेके कारण—उसके अन्तर्मनमें प्रियसे मिलनेकी सम्भावना बनी हुई है। उसे यह ज्ञात है कि मुनिवरका कहा असत्य नहीं हो सकता। अपनी इस सारी वियोग वेदनामें वह एक बात ऐसी कह देती है, उससे युगके यथार्थके मर्मको छू लेती है। वह पिताको उलाहना देती है कि उसका विवाह परदेशीसे क्यों किया? इस कथनसे मध्ययुगकी भारतीय नारीकी घरघुस चेतनाका बोध होता है। उस युगमें संघर्ष और साहसकी भावना

नाममात्रके लिए भी नहीं थी। वादमें उसकी भेंट होती है गुणमालासे। विवाह होनेपर भी संयोग श्रृंगारका वर्णन, अवर्णित रह जाता है। उसके वाद एक प्रकारसे श्रीपाल विवाह यात्राएँ करता है, जिनमें समस्यापूर्ति, आकस्मिकता और निमित्त आदिका उल्लेख है। श्रृंगारके वर्णनके प्रति कवि तटस्थ है। यह एक अजीव वात है कि कवि अपने नायकको भोग-विलासके प्रचुर साधनोंका एकाधिकार देकर भी, उसके उपभोगका चित्रण नहीं करता। दूसरी महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय वात यह है कि कवि नरसेन सामूहिक भोग-विलासका वर्णन नहीं करता, परन्तु सामूहिक वैराग्य और दीक्षाका चित्रण अवश्य करता है।

'वीर' रसके भी प्रसंग आलोच्य कृतिमें पर्याप्त थे, परन्तु श्रीपालका पुरुषार्थ, पूर्वसिद्ध है (पुण्यफलके सिद्धान्तके कारण), इसलिए शक्ति प्रदर्शनके विना ही सव कुछ मिल जाता है। जहाँ वह शक्ति प्रदर्शन करता भी है वहाँ इतनी अनुकूलताएँ और निश्चित आशु सफलताएँ उसे घेर लेती हैं कि वीर रसकी अनुभूति होते-होते रह जाती है। उदाहरणके लिए—लाख-चोरोंकी घटनाके समय श्रीपाल वीरोचित उत्साह दिखा सकता था परन्तु कवि यह कहकर छुट्टी देता है कि चोर उसी प्रकार भाग गये जिस प्रकार सिंहनादसे कायर-जन भाग खड़े होते हैं। वीर रसका साक्षात् प्रसंग उस समय उपस्थित होता है जव वह अपने स्वर्गीय पिताका राज्य पानेके लिए चाचा वीरदमनपर आक्रमण करता है। युद्धके लिए कूच करते ही धरती हिल उठती है, योद्धाओं और उनकी पत्नियोंकी वीरता और दर्पकी उक्तियोंकी झड़ी लग जाती है। दूतकी वार्ता असफल होते ही रणदुन्दुभी वज उठती है और विजयश्री श्रीपालका वरण कर लेती है। 'वीभत्सका' दृश्य तव उपस्थित होता है जव ७०० कोढ़ी राजाओंके काफिलेका नेतृत्व करता हुआ, कोढ़ी राजा श्रीपाल उज्जैन पहुँचता है और रौद्र रसका इससे वढ़कर उदाहरण और क्या हो सकता है कि स्वयं पिता कन्याके तर्कपर अपने झूठे दम्भ और प्रतिष्ठाके कारण उसका विवाह एक ऐसे कोढ़ी राजासे कर दे कि जिसके हाथ-पैर गल गये हों। कुल मिलाकर कवि नरसेन इस छोटी-सी रचनामें सम्भव रसकी योजना अपने मुख्य उद्देश्यके अनुरूप करनेमें सफल है। वह श्रृंगारके मानसिक और भौतिक पक्षका वर्णन लगभग नहीं करता। भक्ति और शान्त रसके वर्णनमें वह विशेष सक्रिय है। विप्रलम्भसे युक्त करुण, वीर, वीभत्स और रौद्रकी संक्षिप्त किन्तु मार्मिक अभिव्यक्ति आलोच्य कृतिमें है।

समूची कथा जिनभक्ति और विरतिके भावात्मक धरातलपर वहती है।

अलंकार योजना

सरस्वतीकी वन्दना करते हुए कवि नरसेन कहता है कि सरस्वतीके प्रसादसे सुकवि रसवन्त काव्य करता है लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि कवि रसके साथ अलंकारकी उपेक्षा करता है। इसमें सादृश्य-मूलक अर्थात् उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार प्रमुख हैं। कवि अलंकारोंका प्रयोग वर्णनात्मक व भावात्मक दोनोंमें करता है, यह उसकी विशेषता है। वृत्तोंके आकर गौतमकी वाणीकी तुलना वह उस समुद्रसे करता है कि जिससे ज्ञानकी लहर उठी हो। (१।२)

शब्द मैत्री और यमक उसे विशेष प्रिय हैं। अवन्ती, सहस्रकूट जिनमन्दिर और कोढ़ी राजाके चित्रण, इस सन्दर्भमें उदाहरित हैं।

कहीं-कहीं यमकमें श्लेषका भी प्रयोग है और खासकर चरणके अन्तमें तुकके साथ यमक देनेकी प्रवृत्ति है, जैसे सामिउ, गुणामिउ (१।१०);

कुछ उपमाएँ कविकी मौलिक हैं, जैसे—कपासकी उपमा। कनककेतुके पुत्रोंके चित्तको मोती और कपासकी उपमा दी है यह नयी उपमा है।

"मोतिउ कपासु णं साइचित्त।" (१।३२)

जिन-भक्ति

धार्मिक-वर्णन

विभिन्न धर्मावलम्बी अपने इष्ट देवताओंकी पूजा विभिन्न कर्मकाण्डोंके माध्यमसे करते हैं। अन्धविश्वास और भयके कारण मनुष्य धर्मका पल्ला पकड़ता है। इन्हीं अन्ध-विश्वासोंके साथ पूर्व-जन्मका विश्वास भी जुड़ा हुआ है। व्रत, उपवास, तप आदिके माध्यमसे वह धार्मिक-साधना करता है।

प्रस्तुत कृतिमें इस प्रकारके अन्धविश्वास, व्रत, तप और उपवासकी सामग्रीकी प्रचुरता है। पूरी कृति, जैनधर्म और उससे सम्बन्धित कर्मकाण्डोंसे भरी पड़ी है। 'सिरिवालचरिउ'का मुख्य उद्देश्य ही 'सिद्धचक्र विधि'के महत्त्वका प्रतिपादन करना है। 'सिद्धचक्र विधि' जैनधर्मकी कर्मकाण्ड साधनाका एक साधन है। इसलिए सम्पूर्ण कृतिमें अनेक स्थानोंपर जैनधर्मसे सम्बन्धित सामग्री उपलब्ध है। जैनधर्मसे सम्बन्धित विवरणको प्रमुख रूपसे तीन भागोंमें विभाजित किया जा सकता है—

(१) स्तुतिके रूपमें।

(२) जिनभगवान्से सम्बन्धित विवरण व प्रसंगके रूपमें।

(३) उपदेशके रूपमें, 'सिद्धचक्र विधि'के प्रसंगके रूपमें ।

स्तुतिके रूपमें यह जिनभक्ति निम्नलिखित स्थलोंमें देखी जा सकती है। मंगलाचरण १।१; सहस्रकूट जिनमन्दिरमें श्रीपाल द्वारा १।३५; मदनासुन्दरी श्रीपालका कोढ़ दूर करनेके लिए जिनमुनियोंकी स्तुति करती है १।१७। सहस्रकूट मन्दिरमें श्रीपाल जिनेन्द्रका अभिषेक करते समय स्तुति करता है १।१९। जिनेन्द्र भगवान्से सम्बन्धित वर्णन कई स्थलों पर मिलते हैं। जैसे १।५, १।८, १।९, १।१६, १।१७, १।१९, १।२०, १।२५, १।३६, १।४०, १।४१, १।४६, २।१२, २।१४, २।२७, २।३०।

धर्मोपदेश और सिद्धचक्र विधानकी महत्ताके प्रसंगमें भी कुछ विवरण उपलब्ध हैं—

१।२, १।२, १।१४, १।१८, १।१७, १।१९, १।२२, २।३०, २।३२, २।३३, २।३५, २।३४ और २।३६।

भाग्यवादकी दार्शनिक पृष्ठभूमि

'सिरिवालचरिउ'की कथावस्तु भाग्यवादके प्रति दृढ़ विश्वासकी धुरीपर घूमती है। 'भाग्य'से कविका तात्पर्य है—'पूर्व संचित कर्म'। अर्थात् मनुष्य अपने भाग्यका स्वयं निर्माण करता है। कर्मोंके संचित फलोंको वह भोगता है। भाग्यवादकी इसी पृष्ठभूमिपर 'सिरिवालचरिउ'की कथावस्तु गठित है। कृतिमें अनेक प्रसंगोंमें 'कर्मके फल' व 'भाग्यके प्रति आस्था'का जिक्र किया गया है। यही 'सिरिवाल चरिउ'की दार्शनिक पृष्ठभूमि है।

मैनासुन्दरी पिता द्वारा आरोपित जीवन जीनेकी अपेक्षा अपनी नियतिका जीवन जीना पसन्द करती है। पिता द्वारा तय किये गये वरको ही वह स्वीकार कर लेती है। पिता जब उससे उसकी पसन्दका वर चुननेके लिए कहता है तो वह उत्तर देती है—

"माँ-बाप विवाह करते हैं, उसके बाद अपने ही कर्म आगे आते हैं।....शुभ-अशुभ कर्म, जीवनमें सबको होते हैं। त्रिगुप्ति मुनीश्वरने यह कहा है कि कर्मसे मनुष्य रंक होता है और कर्मसे राजा। जो कर्म अपने माथेपर लिख दिया गया है, उसे कौन मेट सकता है? वह तो विधिका विधान है।" (१।९)

कोढ़ी श्रीपाल जो कुछ है, वह उसके पूर्वजन्मका फल ही है। वह कोढ़ी इसलिए है कि उसने पूर्व-जन्ममें मुनिकी निन्दा की थी। उसके वर्तमानमें उसके भूतके कर्मोंका फल निहित है। कोढ़ी श्रीपालके लिए कहा गया है—

"मुनिका निन्दक, पूर्वकर्मोंसे लड़ता हुआ। उसी अपराध और पापसे पीड़ित।" (१।१०)

मैनासुन्दरीका विवाह कोढ़ीसे कर दिया जाता है। विवाहके समय मंगलगीत गाये जाते हैं, परन्तु स्त्रियाँ अमंगल कर रही हैं। इस अवसरपर मैनासुन्दरी अपनी बहन और माँ को समझाती है—

"विधाताका लिखा हुआ कौन टाल सकता है?" (१।१४)

कोढ़ीसे अपनी कन्याका विवाह कर देनेके कारण पयपाल पश्चात्ताप करता है। परन्तु वह इसे स्वयंका दोष न मानकर कर्मका परिणाम बतलाता है। वह कहता है—

"इसमें मेरा क्या दोष, क्योंकि शुभ-अशुभ कर्म ही परिणत होकर सब कुछ करते हैं।" (१।१५)

धवलसेठकी कुचालसे श्रीपालको समुद्रमें गिरा दिया जाता है। रत्नमंजूषा विलाप करती है। पहले तो वह पिताको उलाहना देती है कि उसने परदेशीसे उसका विवाह क्यों किया? परन्तु बादमें वह इसे कर्मका ही फल मानती है। वह कहती है—

"जो कुछ मैंने बोया है, खिन्न मैं उसे सहूँगी। लेकिन पिताने परदेशीसे मेरा विवाह क्यों किया? उसने कहा था कि किसी नैमित्तिकने बताया था, उसीके अनुसार मैंने तुम्हारा विवाह किया था। हे पुत्री! सबका कर्मसे विवाह बलवान् होता है।" (१।४३)

इसी सन्दर्भमें आगे रत्नमंजूषा विलाप करती हुई अपने पूर्वजन्मके कर्मोंके विषयमें कहती है—

"हे स्वामी! दूसरे जन्ममें मैंने ऐसा क्या किया जो जन्मान्तरमें मुझे निरन्तर दुःख झेलने पड़ रहे हैं।" (१।४४)

रत्नमंजूषाको उसकी सखियाँ समझाती हैं—

"जो ऋण संचित किया है, उसे देना ही होगा। इसे कर्मोंके अन्तराय समझना चाहिए।" (१।४३)

श्रीपालको रस्सी काटकर समुद्रमें गिरा दिया जाता है। उसके लिए कहा गया है—

"कर्मसे नचाया गया वह समुद्रमें गिर गया।" (१।४५)

श्रीपालको धवलसेठ, डोम सिद्ध करता है। परन्तु जब वास्तविकता प्रकट होती है तब राजा धनपाल

धवलसेठको मृत्युदण्डका हुक्म देता है। श्रीपाल धनपालसे कहता है—"इसे मत मारो। क्योंकि इसीके कारण मुझे गुणमाला मिल सकी है।" (२१८)

श्रीपालको डोम समझकर जब राजा उसे मृत्युदण्ड देना चाहता है, उस समय श्रीपालके लिए कहा गया है—

"जो पूर्वजन्ममें लिखा जा चुका है, उसे कौन मेट सकता है।" (२१४)

श्रीपाल मुनिराजसे पूछता है—

"हे परमेश्वर! मेरी भवगति बताइए। किस पुण्यसे मैं इतने अतिशयवाला हुआ, अतुलनीय योद्धा, तीनों लोकोंमें विख्यात। किस कर्मसे मैं राजाओंमें श्रेष्ठ हुआ, किस कर्मसे निर्धन कोढ़ी हुआ? किस कर्मसे समुद्रमें फेंक दिया गया? किस पापसे मैं डोम कहलाया? मैनासुन्दरी मेरी अत्यन्त भक्त क्यों है?

तब मुनि महाराज श्रीपालको उसके पूर्वजन्मके कर्मोंके विषयमें बतलाते हैं—

"तुम पूर्वजन्ममें राजा थे। तुमने पूर्वजन्ममें मुनिको कोढ़ी कहा, एकको पानीमें ढकेल दिया था, एक तपस्या कर रहे मुनिको डोम कहा था, इसलिए इस जन्ममें तुम कोढ़ी हुए, समुद्रमें फेंके गये और डोम कहलाये। तुम्हारी पत्नी को (पूर्वजन्म में) जब यह मालूम हुआ कि तुमने मुनिनिन्दा की है तो वह तुमसे बहुत नाराज हुई। तब तुमने और तुम्हारी पत्नीने 'सिद्धचक्र विधि' की थी। उसीके पुण्यसे आज तुम अति यशवाले हुए।"

कविने भाग्यकी सत्ताको तो स्वीकार किया है, परन्तु मनुष्यको भाग्यके हाथ नहीं सौंपा है। मनुष्य स्वयं अपने भाग्यका निर्माता है। वह जैसा कर्म करेगा, उसे वैसा ही फल मिलेगा। इस प्रकार कवि मनुष्य-जीवनके शुभ-अशुभ और उतार-चढ़ावमें सन्तुलन रखना चाहता है। उसका विश्वास है कि मनुष्य धर्मके माध्यमसे ही यह सन्तुलन स्थापित कर सकता है।

सामाजिक चित्रण

'सिरिवालचरिउ' एक पौराणिक कथा है। उसके नायक और पात्रोंका कोई ऐतिहासिक अस्तित्व नहीं है। आलोच्य कृतिके रचनाकाल और प्रतिपाद्य विषयका, सामाजिक तथा आर्थिक वर्णनका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह एक ऐसी पौराणिक कथा है, जिसकी कथावस्तु काफी पुरानी है। इसलिए इसमें वर्णित सामाजिक स्थितियों, व्यवहारों और कार्यकलापोंका समकालीन स्थितिसे कोई तालमेल बिठाना उचित नहीं है। फिर भी कहीं-कहीं तत्कालीन परिस्थितियोंकी झलक अवश्य मिल जाती है।

१. विवाह

भारतवर्षमें प्राचीन कालसे विवाह संस्थाका प्रचलन है। विवाह तय करनेके ढंग, अलग-अलग समयमें अलग-अलग रहे होंगे। परन्तु अधिकतर लड़के-लड़कियोंके माता-पिता ही विवाह तय करनेमें प्रमुख भूमिका निवाहते रहे हैं। 'सिरिवाल चरिउ' में विवाह तय करने के भिन्न-भिन्न ढंग मिलते हैं, जिनमें-से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

(१) लड़कीकी इच्छापर निर्भर

राजा पयपाल (प्रजापाल) अपनी दोनों पुत्रियोंसे पूछता है कि वे उनकी इच्छानुसार वर चुन लें। प्रजापालकी जेठी कन्या सुरसुन्दरी तो अपनी इच्छानुसार कौशाम्बीपुरके राजा सिंगारसिंहसे विवाह कर लेती है।[१] परन्तु मैनासुन्दरीका कहना है कि वह माता-पिताके द्वारा तय किये वरसे ही विवाह करेगी।[२]

प्रजापाल सुरसुन्दरीसे पूछता है—

"तुम्हें जो वर अच्छा लगता हो, वह मुझे बताओ, जिससे हे पुत्री ! उससे तुम्हारा विवाह किया जा सके।" (१।६)

इसी प्रकार मैनासुन्दरीसे पूछता है—

"जो वर तुम्हें अच्छा लगे वह माँग लो, जैसा कि तुम्हारी जेठी बहनने अपनी पसन्दका वर पा लिया है।" (१।८)

(२) लड़कीके पिता द्वारा तय

मैनासुन्दरीको वही वर पसन्द है, जिसे उसके पिता तय कर दें। प्रजापाल उसके लिए एक कोढ़ी वर चुनता है जिसे वह हृदयसे स्वीकार करती है।

राजा पयपाल मैनासुन्दरीको बुलाकर कहता है—

"बेटी ! मेरा एक कहना करोगी ? तुम कोढ़ीको दे दी गयी हो। क्या उसका वरण करोगी ?"

मैनासुन्दरी उत्तर देती है—

"मैंने स्वेच्छा से उसका वरण कर लिया है। अब मेरे लिए दूसरा तुम्हारे समान है।" (१।१२)

विलासवतीका विवाह भी श्रीपालसे इसी प्रकार हुआ था।[३] पंच पाण्ड्य, मल्लिवाड़, तेलंग, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र, गुजरात, मेवाड़, अन्तर्वेद[४] आदि स्थानोंसे भी उसने (श्रीपालने) अनेक कन्याओंसे विवाह किये थे, परन्तु उनका स्पष्ट उल्लेख नहीं है कि वे किस प्रकार तय किये थे। सम्भवतः वे पिताके द्वारा ही तय किये गये होंगे।

---

१. (१।६) २. (१।९) ३. (१।१०) ४. (१।१३)।

(३) भाग्यपर आश्रित होकर

'सिरिवालचरिउ' में रत्नमंजूषा और गुणमालाका विवाह अनोखे ढंगसे होता है। रत्नमंजूषाका पिता कनककेतु, गुरुसे पूछता है—"यह कन्या (रत्नमंजूषा) किसको दी जाये ?" मुनि उत्तर देते हैं—"सहस्रकूट जिनमन्दिरके वज्र किवाड़ोंको जो खोल देगा, उसीके साथ इसका विवाह कर देना।" श्रीपाल उन किवाड़ोंको खोल देता है और उसीसे रत्नमंजूषाका विवाह कर दिया जाता है।[1] पुराने समयमें स्वयंवरमें ऐसी शर्तें रखी जाती थीं। परन्तु यहाँ ऐसा स्पष्ट नहीं है कि राजा कनककेतुने सब दूर यह खबर पहुँचायी हो कि किवाड़ोंको खोलनेवालेके साथ लड़कीका विवाह करेगा।

गुणमालाके पिता धनपालको भी मुनिने बतलाया था कि जो हाथोंसे जल तैरकर आयेगा, उससे इसका विवाह कर देना। संयोगसे श्रीपाल ही आता है जिससे गुणमालाका विवाह कर दिया जाता है।

"मुणि उत्तउ जु तरइ जलु पाणिहिँ।
वसइ णरिंद-गेह तहे पाणिहिँ॥" (१।४६)

(४) प्रतियोगिता या स्वयंवर द्वारा

मकरकेतुकी कन्या चित्रलेखाके साथ विवाह करनेके लिए यह शर्त रखी थी कि जो नगाड़ा बजाकर उनको (चित्रलेखा, जगरेखा, सुरेखा, गुणरेखा, मनरेखा आदि) जीत लेगा और १०० कन्याओंके साथ गायेगा, हावभाव से युक्त होकर वह उन सबसे विवाह करेगा। श्रीपाल नगाड़ा बजाकर उन्हें जीत लेता है। (२।९)

(५) समस्यापूर्ति द्वारा

कोंकण द्वीपके राजा यशोराशिविजयकी आठ कन्याओंके साथ विवाह करनेकी शर्त यह थी कि उनके प्रश्नोंके उत्तर जो दे देगा उसके साथ उनका विवाह कर दिया जायेगा। श्रीपाल उनके उत्तर दे देता है।

वैवाहिक पद्धति

'सिरिवालचरिउ' में वर्णित विवाहकी पद्धति भी लगभग उसी प्रकार की है जो आजकल हमारे देशमें प्रचलित है।

विवाह निश्चित करनेके लिए ज्योतिषियोंसे शुभ-तिथिके लिए पूछा जाता है। ज्योतिषी ही लग्नकी तिथि निश्चित करते हैं। मैनासुन्दरी, रत्नमंजूषा और गुणमालाका विवाह शुभ वेला और लग्न में हुआ, ऐसा स्पष्ट उल्लेख है। मैनासुन्दरीके विवाहके लिए ज्योतिषियोंसे शुभ लग्न पूछता है। (१।१२)

रत्नमंजूषाके विवाहमें भी उल्लेख है—

"पुणु सुह-वेल लगुण परिट्ठवियउ।" (१।३६)

गुणमालाके विवाह में—

"सुह-वेलग्गहे गुणमाल-सुय।
सिरिवालहो दिण्णी मुसलभुय॥" (१।४७)

वन्दनवार बाँधना, मण्डप बनाना, तोरण बाँधना, मृदंग व बाजे बजाना, मंगलगीत गाना, दुल्हा-दुलहिनका श्रृंगार करना, रेशमी वस्त्रोंसे वर-वधूको सुसज्जित करना, वेद पढ़ना, हवन करना, मंगलोंका उच्चारण करना, मुकुट (मोर) बाँधना, हाथमें कंगन पहनाना, अँगूठी पहनाना, गलेमें हार पहनना, नाच-गाने होना, चवरी (भाँवरें) और सात फेरे (सप्तपदी) दिलाना, हरे बाँसका मण्डप बनाना, दुलहेको गा-

१. १।३२ और १।३३।

वजाकर लाना और उसे आसन देना, रास्तेमें पताकाएँ बाँधना, कन्यादान देना और साथमें दहेज भी देना। ये सभी रीति-रिवाज आज भी ज्योंके त्यों प्रचलित हैं। इसके साथ-साथ दास-दासियाँ भी भेंट की जाती थीं।

मैनासुन्दरीके विवाहका दृश्य

"तरह-तरहके तोरण भी बनवा दिये। मंदल (मृदंग) वजने लगे। मंगल गीत भी होने लगे।........। ब्राह्मण वेद पढ़ रहे थे। हवन और मन्त्रोंका उच्चारण कर रहे थे। श्रीपालको मुकुट बाँध दिया गया और छत्र भी।........। उसकी अँगुलीमें अँगूठी भी दी गयी।" (१।१४)

रत्नमंजूषाके विवाह-वर्णनका उदाहरण—

"नगाड़े, शंख और भेरी बाजे वजने लगे। रास्तेमें पताकाएँ और छत्र शोभित थे। गाने-बजानेके साथ लोग नाच रहे थे। घरमें जाकर उससे (श्रीपालसे) बातचीत की और रत्न-निर्मित श्रेष्ठ आसन उसे दिया और फिर शुभ मुहूर्तमें लगनकी स्थापना की। हरे बाँसका वहाँ मण्डप बनाया गया और उसे चवरी तथा सात फेरे दिलाकर रत्नमंजूषाका उससे विवाह कर दिया। उसने बहुत-से उत्तम हाथी और घोड़े उसे दिये। रत्नके कटोरे और सोनेके थाल दिये।" (१।३६)

सामूहिक विवाह

श्रीपालने जितने भी विवाह किये उनमें केवल मैनासुन्दरी, रत्नमंजूषा और गुणमालाके साथ किये गये विवाहको छोड़ शेष अन्य सभी विवाह सामूहिक रूपसे एकसे अधिक कन्याओंसे किये। चित्रलेखाके सहित सौ कन्याओंसे (२।९), विलासवतीके सहित ९०० कन्याओंसे (२।१०), कोंकण द्वीपमें आठ कन्याओं सहित १६०० कुमारियोंसे (२।१३), पंच पाण्ड्यमें २००० कन्याओंसे, मल्लिवाड़में सात सौ, तैलंगमें १००० कुमारियोंसे उसने विवाह किया। यह बात दूसरी है कि श्रीपालने इतनी कन्याओंसे विवाह किया या नहीं? परन्तु इससे यह सिद्ध होता है कि सामूहिक विवाहका प्रचलन था।

बहु-विवाह

बहु-विवाहका वर्णन भी मिलता है। श्रीपालने १८,००० कुमारियोंसे विवाह किया था। वैसे यह संख्या चौंका देनेवाली है। भले ही श्रीपालने १८,००० कन्याओंसे विवाह नहीं किया हो, परन्तु इससे इतना स्पष्ट है कि उसकी एकसे अधिक पत्नियाँ थीं। उस युगमें किसी व्यक्तिकी सम्पन्नताके मापनेके तीन मापदण्ड थे—(१) आर्थिक सम्पन्नता, (२) शक्ति (३) अधिक पत्नियाँ। 'सिरिवाल चरिउ' में कविने श्रीपालको साधन-सम्पन्न बतानेके लिए ही इतनी अधिक पत्नियों की संख्याका उल्लेख किया है।

दहेजप्रथा

'सिरिवाल चरिउ' में दहेज देनेका वर्णन भी मिलता है।

सुरसुन्दरीके विवाह में —

"राजाने लाकर उसे (सिंगारसिंहको) कन्या दे दी और साथमें दिये हाथी, घोड़े, स्वर्ण........।" (१।६)

मैनासुन्दरीके विवाहमें भी दहेज दिया गया था—

"उसने अच्छे घर, सुन्दर भण्डार और सम्पदाएँ दीं। दिव्य वस्त्र और भूषण। रथ, अश्व, छत्र और सिंहासन। हय, गज, वाहन, जम्पाण और यान। बहुत-से चिह्न, चँवर, उनके किंकाण, धन-धान्यसे भरे हुए ग्राम और देश।....शोभासे युक्त राजकुल भी दे दिया। धन, दासी, दास और अन्य सुवर्ण आदि।" (१।१५)

चित्रलेखाके विवाहमें मकरकेतुने श्रीपालको श्रेष्ठ गज, अश्व, ऊँट आदि प्रदान किये।(२।१)

"कोंकण द्वीपके राजा यशोराशिविजयने भी श्रीपालको दहेजमें घोड़े, गज, रथ, ऊँट आदि वाहन और वहुत-से मणिरत्न दिये। सोनेके वहुत-से स्वच्छ हार और समूची चतुरंग सेना उसे दी।" (२।१३)

स्त्री-शिक्षा

स्त्रियोंको भी उच्च शिक्षा दी जाती थी। गाना, वजाना, नाचना, ज्ञान-विज्ञान, शास्त्र, पुराण, वेद, अनेक भाषाओंका ज्ञान, कामशास्त्रकी शिक्षा दी जाती थी। व्याकरण, छन्द शास्त्र, आगम शास्त्र, ज्योतिष, समस्त कलाओं, राग-रागिनियों, विभिन्न लिपियोंका ज्ञान भी दिया जाता था। मैनासुन्दरीकी शिक्षाका विवरण कविने दिया है, जिससे ज्ञात होता है कि स्त्री-शिक्षाका कितना प्रचार था और वे पुरुषसे किसी भी वातमें पीछे नहीं थीं।

मैनासुन्दरीने अनेक प्रकारकी विद्याएँ और कलाएँ सीखी थीं। उसकी विद्याओं और कलाओंका विस्तृत वर्णन दिया है। (१।७)

गुणमाला भी वहत्तर कलाओंमें निपुण है। (१।४६)

कविने चित्रलेखाको ज्ञान-विज्ञानमें निष्णात वताया है। (२।८)

इसके अतिरिक्त वह नृत्यकलामें भी निपुण है। श्रीपालने सौ कन्याओंसे नगाड़ा वजाकर विवाह किया था, जिनसे विवाह करनेकी शर्त यह थी कि वे सौ कन्याएँ नाचेंगी जिन्हें नगाड़ा वजाकर व हाव-भावसे नृत्य करके जो व्यक्ति जीत लेगा, उन्हींसे उनका विवाह कर दिया जायेगा।

शिक्षा देनेका कार्य जैनमुनि और शैवगुरु दोनों ही करते थे। सुरसुन्दरीने ब्राह्मण गुरु और मैना-सुन्दरीने जैनगुरुसे शिक्षा ग्रहण की थी।

१. घरजँवाई प्रथा

घरजँवाई रहनेकी प्रथाका वर्णन भी है, परन्तु इसे सम्मानित दृष्टिसे नहीं देखा जाता था। श्रीपाल राजा प्रजापालके यहाँ घरजँवाई वनकर रह रहा था, परन्तु जव लोगों द्वारा चर्चाएँ होने लगीं तो उसे वुरा लगा। वह खिन्न रहने लगा। एक दिन मैनासुन्दरीने खिन्न होनेका कारण पूछा तव श्रीपाल वताता है—"हे देवी, यहाँ मुझे कोई नहीं जानता, मेरा मन लज्जित है। घर-घर गीतोंमें लोग यही कहते हैं कि मैं तुम्हारे पिताकी सेवा करता हूँ।"

२. भूत-प्रेत और जादू-टोनेमें विश्वास

'सिरिवालचरिउ' में अनेक स्थानपर डाइन, जोगिनी, पिशाच व जादू-टोनेका वर्णन मिलता है। जिनभगवान्के नामकी महत्ता वतलाते हुए स्पष्ट लिखा है—'जिनके नामसे एक भी ग्रह पीड़ित नहीं करता। दुर्मति पिशाच भी हट जाता है।' (१।४१) आगे डाकिनी-शाकिनीका भी उल्लेख है—

वारह वर्षकी अवधिपर जानेवाले पुत्र—श्रीपालको माँ कुन्दप्रभा उपदेश देती है उसमें भी साइणी-डाइणी और कट्टणीको नहीं भूलनेके लिए सचेत करती है (१।२४)।

रत्नमंजूषाके रूपपर आसक्त और कामान्ध धवलसेठकी कुचेष्टाओंको देखकर उससे उसका मन्त्री पूछता है—"कोई तुम्हें जन्तर-मन्तर कर गया है?" (१।३९)

३. ठग और चोर

'सिरिवालचरिउ'में ठग, चोरों और डाकुओंका भी उल्लेख किया गया है। श्रीपालकी माँ, श्रीपालको उपदेश देती है कि ठग और चोरोंका विश्वास मत करना। (१।२४) धवलसेठ को भी रास्तेमें लाख चोर पकड़ लेते हैं और वादमें श्रीपाल उसे छुड़ाता है। (१।२७)

४. दान देनेकी प्रथा

दान देनेकी प्रथाका वर्णन भी है। मैनासुन्दरी श्रीपालको विदाके समय (१२ वर्षके लिए) उसे कहती है—"चार प्रकारके संघको दान देना मत भूलना।" (१।२२)

५. प्याऊ निर्माण

लोगोंको पानी पीनेके लिए प्याऊका वर्णन भी मिलता है। अवन्तीके वर्णनमें लिखा है—"लोग ईखका रस लेकर पीते हैं और प्याऊसे पानी पीते हैं।" (१।३)

"इक्खा-रसु पिज्जइ साउ लेवि।
पाणिउ पीयन्ति पवालिएत्रि।" (१।३)

६. पान-सुपारीकी प्रथा

किसी अतिथि या सम्मानित व्यक्तिको पान खिलानेकी प्रथाका भी उल्लेख मिलता है। राजा धनपाल धवलसेठको भी पान और सुपारी देता है। (२।१)

बारह वर्षमें श्रीपाल लौटकर आता है। मैनासुन्दरी अपने पिताके दुर्व्यवहारका वृत्तान्त श्रीपालको सुनाती है। वह अपने पिताके पास दूत भेजती है। प्रजापाल उस दूतको पान देता है और फिर बातचीत आरम्भ करता है। (२।१६)

७. दण्ड

अपनी जाति छिपाना घोर अपराध बतलाया गया है। धनपालको जब यह मालूम होता है कि श्रीपाल डोम है (डोमोंके षड्यन्त्रसे) तो वह श्रीपालको मृत्युदण्ड देनेकी आज्ञा देता है। (२।४)

इसी प्रकार जब धवलसेठके षड्यन्त्रका पता लगता है तो उसे भी मृत्युदण्ड देनेके लिए तैयार हो जाता है। (२।७)

८. षड्यन्त्र

धवलसेठ रत्नमंजूषाको पानेके लिए अपने मन्त्रीसे मददके लिए कहता है। धवलसेठ एक योजना बनाता है, जिसके अनुसार मन्त्री यह कहेगा कि जलमें मछली है, जिसे देखनेके लिए श्रीपाल बाँसपर चढ़ेगा। उस समय मन्त्री रस्सी काटकर उसे जलमें गिरा देगा। इस कामके बदलेमें धवलसेठ उसे एक लाख रुपया देनेका वचन देता है। (१।४०)

इसी प्रकार श्रीपालको डोम बतानेके लिए धवलसेठ एक षड्यन्त्र रचता है और डोमोंकी सहायता करनेके लिए एक लाख रुपये देनेका वचन देता है। (२।२)

आर्थिक वर्णन

'सिरिवालचरिउ'में आर्थिक सम्पन्नताका विवरण मिलता है। सोने, मणियों आदिकी यत्र-तत्र बहुलता दिखती है। वैसे ऐसे प्रसंग अधिकतर राजाओंके सन्दर्भमें ही आये हैं, इसलिए साधारण जनताके विषयमें कुछ कहा नहीं जा सकता। राजा तो साधन-सम्पन्न होते ही हैं और उनके यहाँ मणि, हीरे, जवाहरात आदिका होना कोई आश्चर्यकी बात या सम्पन्नताके द्योतक नहीं हैं। कुछ शहरों व देशोंके विवरण-में ऐसे विवरण मिलते हैं जिससे आर्थिक सम्पन्नताका आभास होता है। उज्जैनीके वर्णनमें 'स्फटिक मणियोंसे निर्मित' दीवालोंका उल्लेख किया गया है। इसके अलावा लोगोंके सुखी होनेका विवरण भी है—"लोग छत्तीस प्रकारके भोगोंको भोगते थे।" (१।५)

मालव देशके वर्णनमें बनियों को श्री-सम्पन्न बताया है—

"जिसमें (मालव देशमें) श्री-सम्पन्न बनिया निवास करते हैं।" (१।४)

इसी प्रकार उज्जैनीके वर्णनमें भी सम्पन्नताका उल्लेख किया गया है—

"उज्जैनी नामकी नगरी वह अत्यन्त प्रसिद्ध है, जो सोना और करोड़ों रत्नोंसे जड़ी हुई है।" (१।४)

लाख चोरोंको जीतनेके बाद श्रीपालने जो वस्तुएँ एकत्रित कीं उनका विवरण इस प्रकार है—

"शोभा सहित गज, अश्व, सात प्ररोहण, मणि-माणिक्य, मूँगे एवं और भी द्वीपान्तरोंके रत्नोंको श्रीपालने इकट्ठा कर लिया।" (१।२९)

बब्बरने श्रीपालको भेंटमें जो वस्तुएँ दीं—

"रत्नोंसे जड़ा छत्र, और भी उसने दिया हिरण्य, सोना, धन-धान्य आदि।" (१।३०)

धवलसेठ और श्रीपालके जहाजोंमें मणिमाणिक्य और अन्य बहुमूल्य सामग्री भरी हुई थी—"मोती, श्रीखण्ड, प्रवाल, कपूर, लवंग, कंकोल इत्यादि बहुत-से रत्नोंसे भरे हुए जहाजोंको लेकर वे लोग चले।" (१।३)

रत्नद्वीपमें पद्मराग मणि अपरिमित मात्रामें बतलाये हैं। (१।३०) हंसद्वीपमें तो अनेक प्रकारके रत्नों और मणियोंकी खदानोंका उल्लेख किया गया है। (१।३०) इसके अतिरिक्त—"लाट, पाट, जिवादि, कस्तूरी, कुंकुम, हरिचन्दन और कपूर जिसमें थे।" (१।३०)

हंसद्वीपके बाजार मणियों और रत्नोंसे भरे हुए थे—

"मणि-रयणइँ जहिं आवणि भीतर।" (१।३३)

सहस्रकूटके जिनमन्दिरमें भी सुवर्ण, मूँगा, पन्ना, मणि आदि प्रचुर मात्रामें जड़े हुए थे।

"सुवर्णसे निर्मित वह लाल मणि और पन्नोंसे जड़ा हुआ था। शुद्ध स्फटिक मणियों और मूँगोंसे सजा हुआ। राजपुत्रोंने उसपर बड़े-बड़े मणि लगा रखे थे। वह सूर्यकान्त और चन्द्रकान्त मणियोंसे शोभित था।........उसके चारों ओर इन्द्रनील मणि लगे हुए थे। उसकी श्रेष्ठ पंक्तियाँ गवय, गवाक्ष आदि अनेकों स्वच्छ रत्नोंसे और नीचेकी भूमिमें जड़ी हुई थी।" (१।३४)

श्रीपाल बारह वर्षकी अवधिके पश्चात् लौटकर आता है तथा प्रजापालसे मिलता है तब वहांके लोग खुशी मनाते हैं। उस समयका वर्णन देखिए—

"घर-घर आनन्द-बधाई हुई। प्रवालोंसे जड़ित मणियों और मोतियोंकी मालाओंसे घर-घर तोरण सजा दिये गये।" (२।१७)

व्यापार

जलमार्गसे व्यापार करनेका वर्णन 'सिरिवालचरिउ'में मिलता है। धवलसेठके साथ अन्य व्यापारी भी थे। नगर, गाँव व देशके अतिरिक्त अन्य देशोंसे भी व्यापार करनेका वर्णन मिलता है। व्यापारी लोग काफी सम्पन्न बताये हैं। धवलसेठका सम्मान राजा धनपाल करता है (२।१)।

युद्धमें प्रयुक्त अस्त्र-शस्त्र

मुद्गर, भाले, सब्बल, सैल, फरसे (१।२७), तलवार (१।२८), तूणीर-धनुष (२।१२), कोंतल, कुन्त और कटारें (२।२४) शस्त्रोंका वर्णन आलोच्य कृतिमें मिलता है।

भौगोलिक वर्णन

फसल व वनस्पति

दाख, मिर्च, ईख, तूम्बी[1], कपास आदिका वर्णन कविने किया है। अवन्तीके वर्णनमें दाख, मिर्च और ईखका वर्णन भी मिलता है।

"पहं दक्ख मिरिच चक्खंति कोइ ॥
इक्खा-रसु पिज्जइ साउ लेवि।" (१।३)

कनककेतुके पुत्रोंके चित्तकी मोती और कपाससे उपमा दी है।

"मोतिउ कपासु णं साइचित्त ॥" (१।३२)

वनस्पतिमें सालवृक्ष, बाँसका उल्लेख है। एक स्थानपर वटवृक्षका वर्णन भी है—

"सालहिय पुंसमारइँ लवंति ॥" (१।५)

रत्नमंजूषाके विवाहमें हरे बाँसका मण्डप बनाया गया था।

"हरिय वांस तहिँ मंडउ ट्ठवियउ ॥" (१।३६)

श्रीपाल समुद्र तैरकर आता है, उसके बाद वह वटवृक्षके नीचे बैठता है। (१।४७)

कस्तूरी और हरिचन्दनका उल्लेख हंसद्वीपके वर्णनमें मिलता है। (१।३०)

खदानें

'सिरिवालचरिउ'में मणियोंकी खदानोंका वर्णन सबसे अधिक उल्लेखनीय है। हंसद्वीपमें इस प्रकारकी अट्ठारह खदानोंका वित्ररण दिया गया है—

नगर व ग्राम

'सिरिवालचरिउ'में अनेक नगरों, देशों व ग्रामोंका वर्णन किया गया है। ग्रामोंके नाम नहीं दिये गये हैं, परन्तु उनकी विशेषताएँ बतलायी हैं। नगरों और देशोंका नामसहित विवरण दिया गया है जिनमें मुख्य रूपसे अवन्ती, मालव,[2] उज्जैनी,[3] कौशाम्बीपुर,[4] अंगदेश, चम्पापुरी,[5] वत्सनगर,[6] रत्नद्वीप,[7] हंसद्वीप, दलवट्टण नगर,[8] कुण्डलपुर,[9] कंचनपुर,[10] कोंकण द्वीप,[11] थाना,[12] पंच पाण्ड्य, मल्लिवाड, तैलंग,[13] सौराष्ट्र, महाराष्ट्र, गुजरात, अन्तर्वेद,[14] कच्छदेश, भड़ौंच, पाटन, कश्मीर और कोट[15] के नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। कौशाम्बी (२।१) और जम्बूद्वीप (२।१२)का नाम भी मिलता है।

गाँव नगरोंके समान हैं और नगर बहुत सुन्दर हैं। नगरोंकी सुन्दरता निराली है। समुद्रके किनारे या नदीके किनारे भी नगर बसे हैं, जो स्थल व जल मार्गोंसे जुड़े हैं। नगरमें तालाब भी हैं। लोग गाय व भैंस पालते हैं। नदीके पानी और तालाबके पानीमें गन्दगी नहीं है। स्त्रियाँ सुन्दर और सुकुमार हैं। (१।३) नगरोंमें विद्वान् पुरुष हैं जिनको अनेक भाषाओंका ज्ञान है। नगरोंमें वैश्य रहते हैं जो व्यापार-व्यवसाय करते हैं। विद्वान् लोग बहुत-सी भाषाएँ सीखते हैं, सम्भवतः व्यापारियोंके लिए दूसरे द्वीपोंमें व्यवसाय करनेके लिए यह जरूरी था।

'जहि णर-विउस पढेहिं बहु-वाणिय।' (१।४)

---

१. (१।४६), २. (१।३), ३. (१।४), ४. (१।६), ५. (१।१५), ६. (१।२५), ७. (१।२७), ८. (१।४६), ९. (२।८), १०. (२।१०), ११. (२।११), १२. (२।१३), १३. (२।१३), १४. (२।१३), १५. (२।२०)।

नगरोंके बाहर परकोटे भी सुरक्षाके लिए हैं—

"जल-खाइय सोहहिं कमल-छण्ण।
सालत्तय मंडिय पंच वण्ण॥" (१।५)

नगरके भीतर बाजार-हाट भी हैं। बीचमें सड़कें भी हैं। लोग साधन-सम्पन्न हैं और छत्तीस प्रकारके भोगोंको भोगते हैं। (१।५)

"वखतीस पवणि भुंजंति भोय।" (१।५)

कोंकण द्वीपके वर्णनमें स्पष्ट लिखा है कि "देश और गाँव समान बसे हुए हैं।" इसी आशयका उल्लेख अवन्तीके वर्णनमें भी किया गया है—

"जहँ गाम वसहिं पट्टण समाण।" (१।३)

कोंकण द्वीपका वर्णन—

"पहु वसहि णिरंतर देस-ग्राम।" (२।११)

जातियाँ

शवर, पुलिन्द, भील, खस, वव्वर, धीवर, डोम, मराठा, गुजर, चाण्डाल आदि जातियोंका वर्णन मिलता है। श्रीपाल १२ वर्षको अवधि पूरी कर लेनेपर उज्जैन लौटता है। रास्तेमें शवर, पुलिन्द, भील, खस और वव्वर ईर्ष्या छोड़कर उसकी सेवा करते हैं—

"सवर-पुलिंद-भील-खस-वव्वर।
लए डंडि ते झाडिय मच्छर॥" (२।१३)

अवन्तीके वर्णनमें धीवरोंका उल्लेख किया गया है—

'जिसमें नीलकमलोंसे सुवासित पानी वहता है, जिसका गम्भीर जल धीवरोंके लिए वर्जित है।" (१।३)

धवलसेठको जब लाखचोर पकड़ लेते हैं, तब यह खबर गूजर और मराठे आकर श्रीपालको देते हैं—

"तव खिन्न होकर गूजर और मराठोंने यह वात श्रीपालसे कही—वर्वर चोरोंने सेठको नहीं छोड़ा।" (१।२८)

डोम और चाण्डालोंसे मिलकर धवलसेठ श्रीपालके विरुद्ध षड्यन्त्र रचता है।

"किउ मंतु सव्वु कूडहँ अयाण।
कोकविय डोम-मातंग-पाण॥" (२।२)

इन जातियोंके अतिरिक्त धोवी, चमार (२।३), नट (२।२९). और भाण्डका भी उल्लेख मिलता है। एक स्थानपर यवनोंका जिक्र भी मिलता है। (१।४२)

वीमारियाँ

पेटमें सूल, सिर दर्द (१।३९), सन्निपात (१।३९, २।१), गलेका फोड़ा, इकतरा ताप और तिजारा (१।४१) वीमारियोंका वर्णन मिलता है।

धवलसेठ रत्नमंजूषा पर मोहित होकर जो चेष्टाएँ करता है उसके फलस्वरूप उसका मन्त्री पूछता है—

"किं तुव पेट्ट-सूलु सिर-वेयण॥
किं उम्मउ सणिवाए लइयउ।" (१।३९)

जिनभगवान्के नामकी महिमामें इकतरा ताप व तिजाराका उल्लेख किया गया है—

"जिणणामें फोडी खणि विलाइ।
इकतरउ ताउ तेइयउ जाइ॥" (१।४१)

जानवर व पक्षी

जानवरोंमें गाय, भैंस, कुत्ता, गधा, सुअर, शृगाल, सिंह, खच्चर, हाथी, ऊँटका उल्लेख है। पक्षियोंमें कोयल, कौआ, गरुड़, हंस और मुर्गेका उल्लेख मिलता है।

अवन्तीके वर्णनमें हंस, गाय व भैंसके नाम आते हैं—

"हंसहँ उल सोहहिं हंस-सहिय ॥
गो-महिसि-संड जहिं मिलिय मालि।" (१।३)

उज्जैनीके वर्णनमें कोयलका नाम आता है। (१।५)

रत्नमंजूषा कामान्ध धवलसेठको कुत्ता, गधा और सूअर कहती है—

"मैंने तुझे अपना ससुर और बाप समझा था। अब तू कुत्ता, गधा और सूअर है।" (१।४४)

रत्नमंजूषाकी सहायता हेतु व धवलसेठको शिक्षा देनेके लिए जो जलदेवता आते हैं उनकी सवारियोंके वर्णनमें मुर्गा, सर्प व गरुड़के नाम आते हैं। (१।४५) खच्चरका उल्लेख कोढ़ी श्रीपालकी सवारीके रूपमें (१।१०) तथा श्रीपालकी सेनाके एक अंगके रूपमें (२।३५) भी वर्णन किया गया है।

श्रीपाल पान लेकर धनपालके दरबारमें आता है तब डोम व भाण्ड ऐसे दौड़ते हैं जिस प्रकार कौए, कौएसे मिलते हैं। (२।२)

वीरदमण और श्रीपालकी तुलनामें शृगाल और सिंहकी तुलना की है। (२।२०)

यशोराशिविजयकी कन्याओंके प्रश्नोंके जो उत्तर श्रीपालने दिये हैं उनमें 'मेढक'का उल्लेख भी मिलता है। (२।११)

इसके अतिरिक्त युद्धोंमें और सेनाके वर्णनमें हाथी, घोड़ों और ऊँटका अनेक बार विवरण मिलता है।

राजा कनककेतुकी पत्नी कनकमाला—

"दृष्टिसे वह देखती और फिर देखती तो ऐसी लगती जैसे डरी हुई हिरणी हो।" (१।३१)

इसमें हिरणीका वर्णन भी मिलता है।

प्रकृति चित्रण

'सिरिवाल चरिउ' में प्रकृति चित्रण केवल 'देश-वर्णन' के प्रसंगमें ही है, वह भी बहुत थोड़ा है। अवन्तीके वर्णनमें प्रकृतिका परम्परागत वर्णन है।

"जिसमें गाँव नगरोंके समान हैं।....जिसमें सरि, सर और तालाब कमलनियोंसे ढके हुए हैं, हंसोंके जोड़े हंसनियोंके साथ शोभा पाते हैं। जिसमें गायों और भैंसोंके झुण्ड एक कतारमें मिलकर उत्तम धान्य (कलमशालि) खाते हैं। जिसमें नीलकमलोंसे सुवासित पानी बहता है। जिसका गम्भीर जल धीवरोंके लिए वर्जित है।" (१।३)

पानीकी स्वच्छता बतानेके लिए कविने कैसा अनूठा वर्णन किया है—ऐसा स्वच्छ पानी कि धीवरों (मछुओं) को भी छूना निषिद्ध है।

उज्जयिनीके वर्णनमें भी कविने प्रकृतिका सुन्दर चित्रण किया है—

"वह अनोखी नगरी उपवनोंसे शोभित है। पक्षियोंके श्रावक उसमें चहचहा रहे हैं। लतागृहोंमें किन्नर रमण करते हैं, सालवृक्षों पर कोयलें कूक रही हैं। कमलोंसे ढकी हुई जल-परिखाएँ शोभित हैं।" (१।५)

•

भाषा

भाषाकी दृष्टिसे 'सिरिवालचरिउ' की स्थिति विचित्र है, क्योंकि १६वीं सदीका प्रारम्भ, आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओंके साहित्यका युग है न कि अपभ्रंश का। अतः उसकी भाषामें मिलावट अनिवार्य थी। उसकी भाषा जहाँ वर्णनात्मक है वहाँ अपभ्रंश है, लेकिन जहाँ संवाद या बातचीत है वहाँ भाषा लचीली है। उसमें भी मुख्य रूप परम्परागत अपभ्रंश का ही है। फिर भी उसमें मिश्रण और सरलीकरणकी प्रवृत्ति सक्रिय है।

कारक, संज्ञा, सर्वनामोंकी स्थिति परम्परागत है। प्रायः सभी कारक मिलते हैं, परन्तु अधिकतर विभक्तियोंका लोप या विनिमय दिखाई देता है। विभक्ति लोप सहज ही प्रचुरतासे द्रष्टव्य है। विभक्ति विनिमयके कुछ उदाहरण उद्धृत हैं—

१. उववण हं वि सोहइ (ग्रंथहं गरीय)	तृतीयाके स्थानपर षष्ठी।
२. कवणहु दिज्जइ अन्हहं अवखरि देखइ सिरिपालहं	द्वितीयाके स्थानपर षष्ठी।
३. धरंतहं सुरवरहं रयणहं णिवद्ध वसहं चड़इ	पंचमीके स्थानपर षष्ठी।

कर्ता और कर्मके एक और वहुवचनमें प्रायः विभक्तियोंका लोप है। केवल स्त्रीलिंग, नपुंसक लिंगके वहुवचनकी विभक्तियाँ उपलब्ध हैं—

	एकवचन	वहुवचन
कर्ता	०	०
कर्म	हि	०
करण	इं, हि, एं, एण, सेतिय, सिइ	हिं
सम्प्रदान	लगि, निमित्त	०
अपादान	आउ, होंतउ	०
सम्वन्ध	हो, हू, हि, केरो	हं ('ह' स्त्रीलिंगमें)
अधिकरण	इ, ए	०

चूँकि अपभ्रंशमें वृद्धि-स्वर नहीं होते अतः 'केरौ' प्रयोग प्रमादजन्य माना जायेगा; या फिर समकालीन खड़ी वोलीका प्रभाव।

क्रियाओंके निम्नलिखित प्रत्ययरूप और क्रियारूप उपलब्ध हैं—

वर्तमान

	एकवचन	वहुवचन
उ० पु०	मि	०
म० पु०	हि	०
अ० पु०	इ, हि, ति	न्ति, हि, हिं

कर्मणि प्रयोग

ज्जइ ज्जहिं

भविष्यत् काल

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	हउ	
म० पु०	०	
अ० पु०	सइ	

इसके अतिरिक्त भविष्यत्कालके लिए कृदन्तके रूप मिलते हैं—

जाएवउ, करेवउ, किव्वइ

आलोच्य कृतिमें एक विशेष प्रयोग है—मिलइ, गउ, आइवि, इसकी दो स्थितियाँ सम्भव हैं—

(१) गउ आइवि मिलइ — गया हुआ आकर मिलता है।

(२) आइवि मिलइ गउ — आकर मिलेगा।

पहला प्रयोग अर्थहीन है, क्योंकि 'गया हुआ आकर मिलता है', यह अस्वाभाविक वाक्य है। दूसरे प्रयोगमें सन्धि करनेपर रूप होगा—'मिलेगी' खड़ी बोलीके गा, गे, गी, के विकासका सम्बन्ध, जो विद्वान् संस्कृतके सामान्य भूत, गा, गअ, गा, से मानते हैं, वे अवश्य इससे प्रसन्न होंगे। परन्तु प्रश्न यह है कि भूतकालके कृदन्तसे भविष्यका बोध कैसे सम्भव हुआ? दूसरे १६वीं सदीके प्रारम्भमें खड़ी बोलीमें गा, गे, गी, रूप आ चुके थे। हो सकता है कविने हिन्दीके 'मिलेगा' का अपभ्रंशीकरण 'मिलेगी' कर दिया हो। यह सम्भावना इसलिए भी सही है, क्योंकि कविने एक स्थलपर 'करहु कन्त की सार' में 'की' का प्रयोग किया है, जो खड़ी बोलीके सम्बन्धका परसर्ग है।

विधि और आज्ञामें	उ हु इ
पौराणिक	हि कराव हि चला० हि।
सामान्यभूत कृदन्त	उ, अ ण्ण, णि इत्यादि।
पूर्वकालिक क्रिया	इ, इवि, अव, अपि, ओपिण्णु, एवि, एवि, एविणु, हाप्पिणु।
क्रियार्थक क्रिया	अण
भू. क्रियाके रूप	हु, हुवइ, होइ, होउ, होहि, होति, होंतइ, होख, होउ, होंति, होंतु, होंतउ, होसइ, होसहि, होसमि, होएविणु।

अस, अत्थि, अत्थिय, अच्छइ, अच्छहि, अछिउ, अछइ 'सिरिपाल चरिउ' की भाषाका सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष है। उसमें बोलियोंके प्रयोग—

ते भले भए (१।१८) — बारह बरस न बावहि (१।२)

तुट्टइ आवण (२।३२) — भउ विवाहु (१।३६)

णत्थि नोय, णउहुइ, णवि होसई (१।३७)

तुवालाखु दायु दइहंउ पसाउ (१।४०)

जिणणामे फोडी खणि विलाइ (१।४१)

काहे दिण्ण वप्प परएसहं (१।४२)

धोबी चमार घर करहिं भोज्जु (२।४)

तुहुं पूच्छण पठई हउँ भत्तारु (२।५)
णं अंधे लद्धे वेवि णयण ।
णं वहिरे फूट्टे भए सवण (२।६)
पुणु अग्गे लोटिय वार-वार (२।६)
आप आपणी वात कहीं (२।६)

टापू, लोह, टोपरि, मरजिया, लेसइ, करहू, कन्तकी सार, फूटे भये, जैसे शब्द और प्रयोग, अपभ्रंशकी परम्परागत भाषाके लिए नये हैं और उसमें समकालीन वोलियोंके विकासके संकेत सूत्र पर्याप्त मात्रामें हैं।

संवाद :

कवि संवादोंकी योजनामें निपुण है। 'सिरिवाल चरिउ' में सभी प्रकारके संवाद मिलते हैं। कुछ संवाद मर्मको छू जाते हैं, तो कुछ संवाद तर्कपूर्ण हैं। कहीं कुटिलताको संवादोंमें सँजोया है तो कहीं लोक-जीवनकी झाँकीको उतारा है। सभी प्रकारके रंगोंमें रँगे संवादोंकी योजना कविने कुशलतापूर्वक की है। सबसे अनोखी और विशेष बात यह है कि उनमें स्वाभाविकता है। पढ़नेपर ऐसे लगते हैं मानो सचमुच वातचीत हो रही है, वे आरोपित या थोपे हुए नहीं लगते हैं।

(१) मैनासुन्दरीसे उसके पिता द्वारा विवाह सम्वन्धी प्रश्नोत्तर भाग्यवादी दर्शनको प्रकट करते हैं—

राजा पयपाल मैनासुन्दरीसे पूछता है—"जो वर तुम्हें अच्छा लगे वह माँग लो, जैसा कि तुम्हारी जेठी वहनसे पूछा था।"

मैनासुन्दरी उत्तर देती है—"जो कन्या माँ-वापसे उत्पन्न होती है, उसके लिए माँ-वापका मार्ग ही उपयुक्त है। अन्यको चाहना वैसा ही है जैसा वेश्याके लिए लम्पट। पिता तो वस विवाह करता है, आगे उसका भाग्य। शुभ-अशुभ कर्म सभीको होते हैं।" (१।९)

(२) मैनासुन्दरीका विवाह कोढ़ीसे तय कर दिया जाता है। पयपाल उससे कहता है—

"वेटी, मेरा एक कहना करोगी, तुम कोढ़ीको दे दी गयी हो, क्या उसका वरण करोगी ?"

मैनासुन्दरी उत्तर देती है—"मैंने स्वेच्छासे उसका वरण कर लिया है, अव मेरे लिए दूसरा तुम्हारे समान है।" (१।१२)

(३) श्रीपालको घरजँवाई वनकर रहना अच्छा नहीं लगता है। उसका मन खिन्न रहता है। मैनासुन्दरी समझती है कि श्रीपाल किसी अन्यपर आसक्त है। वह श्रीपालसे पूछती है—

"तुम दुवले होते जा रहे हो, तुम्हारी क्या चिन्ता है ? यदि कोई सुन्दरी तुम्हारे मनमें हो तो तुम उसे मान सकते हो।"

श्रीपाल उत्तर देता है—"तुम भोलीभाली हो, दूसरी स्त्री मुझे अच्छी नहीं लगती। पिता द्वारा दी गयी स्त्री ही मुझे अच्छी लगती है।"

मैनासुन्दरी—"तुम्हारे मनमें क्या चिन्ता है ? अपनी गोपनीय वात मुझे क्यों नहीं वताते ?"

श्रीपाल—"सुनो ! मुझे कोई नहीं जानता। मैं लज्जित हूँ कि मैं निर्लज्ज होकर तुम्हारे पिताकी सेवा करता हूँ। घर-घरमें यह गीत गाया जाता है।"

मैनासुन्दरी—"मेरे मनमें भी यही वात थी।" (१।२०)

कितनी स्वाभाविकता है इन संवादोंमें ? लोक जीवनका एक दृश्य ही उपस्थित हो जाता है। एक उदाहरण, कितना सरल, स्वाभाविक और तर्क पूर्ण है। श्रीपाल वारह वर्षकी अवधिके लिए प्रवास पर जाने-वाला है—

(४) श्रीपाल मैनासुन्दरीसे कहता है—"मैं वारह वरसके लिए जाना चाहता हूँ।"

मैनासुन्दरी—"मैं मोहका निवारण कैसे करूँ ? तुम्हारे विना मुझे वारह दिनका भी सहारा नहीं है। मैं भी तुम्हारे साथ जाऊँगी।"

श्रीपाल—"स्त्रीके साथ जानेसे काम सिद्ध नहीं होता।"

मैनासुन्दरी—"पतिव्रता सीता देवी रामके साथ क्यों गयीं ?"

श्रीपाल—"तुम्हीं सोचो कि उसका क्या हुआ ?" (सीताको रावण ले गया था इस ओर संकेत है) (१।२१)

(५) श्रीपाल जब जाने लगता है तब मैनासुन्दरी उसका आँचल पकड़ लेती है। श्रीपाल इसे अपशकुन मानकर कुपित हो जाता है। उस समयकी बातचीत हृदयको छू लेती है। पतिके बिना स्त्रीका रहना कठिन है।

श्रीपाल—"हे प्रिय ! छोड़ो मुझे, यह मेरे लिए अपशकुन है।"

मैनासुन्दरी—ओ प्रवास पर जानेवाले, तुम मुझपर क्रुद्ध क्यों हो ? पहले मैं किसे छोड़ूँ—अपने प्राणोंको या तुम्हारे आँचल को ?" (१।२३)

(६) जाते समय श्रीपाल माँके पैर छूने जाता है। उस समयके संवाद माँकी ममतासे भरे हुए हैं। माँ अपने पुत्रके बिना १२ वर्ष तक कैसे रहेगी। जब वह नहीं मानता है तो उसे प्रवासमें काम आनेवाली बातोंके बारेमें बतलाती हैं। माँके कथनमें स्वाभाविकता है और उसका मनोवैज्ञानिक आधार है—

श्रीपाल—माँ ! मैं विदेश जाता हूँ। इस बहूसे प्रेम करना। हे माँ ! मैं जाता हूँ, वापस आऊँगा !

माँ (कुन्दप्रभा)—"हे पुत्र ! तुम्हें देखकर मुझे सहारा था। हे वत्स ! जबतक मैं तुम्हें अपनी आँखोंसे देखती हूँ, तबतक मैं अपने पति अरिदमनके शोकको कुछ भी नहीं समझती। मैंने आशा करके ही अपने हृदयको धारण किया है।"

श्रीपाल—"हे स्वामिनी ! आप धैर्य धारण करें, कायर न बनें। हे माँ ! आदेश दो जिससे मैं जा सकूँ।"

तब कुन्दप्रभा लाचार हो उसे विदा करती है और अनेक शिक्षाप्रद बातें कहती है। (१।२३-२४)

(७) श्रीपाल सहस्रकूट जिनमन्दिरके द्वारपालसे पूछता है—

श्रीपाल—"जो पुण्यशाली सबसे ऊँचा शिखर है, उसके पूरे दरवाजे क्यों बन्द हैं ?"

द्वारपाल—"इसका द्वार अभी तक कोई खोल नहीं सका, उसी प्रकार जिस प्रकार कंजूसके हृदयरूपी किवाड़को कोई नहीं खोल सका।" (१।३४)

(८) रत्नमंजूषापर आसक्त धवलसेठसे उसका मन्त्री पूछता है—

मन्त्री—"तुम अचेतनकी भाँति क्यों हो ? क्या तुम्हारे पेटमें सूल है या सिरमें दर्द या सन्निपात हो गया है।"

धवलसेठ—"मैं तुम्हें ढाढ़स देनेके लिए कहता हूँ कि ना तो मुझे सिरमें पीड़ा है, ना पेटमें सूल। मेरा हीन मन रत्नमंजूषाके रूपमें सन्तप्त और आसक्त है।"

मन्त्री—"तुम अनुचित कार्य मत करो। वह तुम्हारे पुत्रकी पत्नी है।"

धवलसेठ—"हे कूटमन्त्री ! तुम सहायक हो, तुम्हें मैं प्रसादमें एक लाख रुपया दूँगा। मैं तुम्हारे गुणोंको हृदयसे मानूँगा, जिससे मैं इस स्त्रीका हृदयसे भोग कर सकूँ।" (१।४०)

(९) गुणमालाको जब यह समाचार मिलता है कि श्रीपाल डोम है और जाति छिपानेके कारण राजाने उसे बन्दी बना लिया है। वह तुरन्त श्रीपालके पास सचाई जाननेके लिए दौड़ती है। वह श्रीपालसे पूछती है—

गुणमाला—"तुम्हारी कौन-सी जाति है ? तुम अपना कुल बताओ।"

श्रीपाल—"यही मेरा सब कुछ है।"

गुणमाला—"मैं अपना घात कर लूँगी। प्रियजनसे तुम सच्ची बात कहो।"

श्रीपाल—"विडोंके पास एक सुन्दर सुलक्षण नारी है, तुम उस सती रत्नमंजूषासे पूछो। वह जो कहेगी, हे प्रिये, मैं वही हूँ।"

गुणमाला रत्नमंजूपाके पास जाती है सचाई जानने। प्रश्न यह उठता है कि गुणमाला श्रीपालसे ही क्यों नहीं पूछती? वह रत्नमंजूपाके पास क्यों जाती है? कविने यहाँ बहुत ही सतर्कता बरती है। यदि श्रीपाल सच्ची बात कहता भी है तो उसका कहा कोई नहीं मानता।

मुहावरे व लोकोक्तियाँ

कविने कहीं-कहीं मुहावरे व लोकोक्तियोंका भी प्रयोग किया है। मुहावरे व लोकोक्तियोंसे कविने अपने वर्णनको प्रभावशाली बनाया है।

'सिरिवाल चरिउ' में आये मुहावरे व लोकोक्तियोंमें-से कुछ यहाँ दी जा रही हैं—

मुहावरे—
१. 'धाइउ धाइ उरहि पिट्टंती।' (२।४)
२. 'ता चिंतइ णरवइ णट्ठिय मह्नु मइ,
'राय मग्गु मइँ हारियउ।' (१।१४)
३. 'हउँ थिय पुत्ती किण्हहं वयणु।'
४. 'खामोयरि मेल्लिय दीह धाह।' (१।४२)

लोकोक्तियाँ—
१. 'णिय खीरहो मइँ णिरु छित्त छारु।' (१।१५)
२. 'णं दालिद्दिय लद्धउ णिहाणु।'
३. 'णं अंधें लद्धे वेवि णयण।'
४. 'वहिरें फुट्टे भए सवण।'
५. 'णं वज्झहि लद्धउ पुत्तु जुवलु।'
६. 'लउ पाविय ण दयधम्मु अमलु।'
७. 'णं वाइहि सिद्धउ धाउवाउ। (२।६)

छन्द

'सिरिवाल चरिउ' में कुल दो परिच्छेद हैं। पहलेमें ४७ और दूसरेमें ३६ कड़वक हैं। परन्तु 'ग' प्रतिके पहले परिच्छेदमें ४७ के बजाय ४६ कड़वक हैं। 'क' और 'ख' प्रतियोंके पहले परिच्छेदके २२वें कड़वकमें दो गाहा १ अनुष्टुभ् (संस्कृत) एक दोहड़ा और अन्तमें घत्ता है। परन्तु 'ग' प्रतिमें इसे अलग कड़वक स्वीकार नहीं किया गया। उसे २३ कड़वकके ऊपर 'प्रक्षिप्त' रूपमें डाल दिया गया है। इस प्रकार अपने आप एक कड़वक कम हो जाता है। वैसे उपर्युक्त पाँचों छन्द कहींसे प्रक्षिप्त जान पड़ते हैं। अन्तमें घत्ता होनेसे उसे भूलसे कड़वक समझ लिया गया। वस्तुतः इस प्रकारके कड़वककी रचना 'सिरिवाल चरिउ' की शैलीके विरुद्ध है। 'सिरिवाल चरिउ' के कड़वकोंकी रचना भी अपभ्रंश चरित काव्योंकी परम्परागत शैलीके आधारपर हुई है। प्रारम्भमें अपभ्रंश चरित काव्योंमें चार पद्धड़िय अर्थात् सोलह पंक्तियोंका विधान था, ये सोलह पंक्तियाँ आठ यमकोंमें बँटी रहती हैं। यमकका अर्थ है दो पंक्तियोंका जोड़ा जिसमें अन्त्यानुप्रास भी हो। हालाँकि पाठक देखेंगे कि आलोच्य कृतिमें कहीं इस नियमका पालन नहीं हुआ। एक कड़वकमें यमकोंकी संख्याके विषयमें 'कवि' किसी एक लीकपर नहीं चलता। किसी कड़वकमें १२ पंक्तियोंका यमक है और कहीं ७ का है।

घत्ता—वस्तुतः किसी छन्दका नाम नहीं, बल्कि छन्दके विशेप प्रयोगका नाम है। उदाहरणके लिए स्वयम्भूच्छन्द के आठवें अध्यायसे ऐसा लगता है कि 'कड़वक' के आरम्भका छन्द 'घत्ता' कहलाता था और अन्तका छन्द छड्डिनी। परन्तु अपभ्रंशके उपलब्ध चरित काव्योंसे इसका समर्थन नहीं होता। 'कड़वक'-की समाप्तिको सूचित करनेवाला छन्द ही 'घत्ता' कहलाता है। घत्ताका अर्थ भी है कि जो विभक्त करे। इसके 'ध्रुवा ध्रुवक' या 'छड्डणिया' नाम भी मिलते हैं। पिंगलके अनुसार घत्ता में ३१ मात्राएँ होती हैं। यति १० और ८ पर तथा अन्तमें दो लघु होने चाहिए। परन्तु यह कोई विशेष नियम नहीं है। इस

प्रकार प्राकृत पैंगलम्का 'घत्ता' वस्तुतः आचार्य हेमचन्द्रका छड्डुणिआ है। परिभाषा वही १०—८, १३ अन्तिम दो लघु। आचार्य हेमचन्द्रने 'छड्डुणिआ' को दुवईका एक भेद माना है। उनका कहना है कि दुवईकी तरह पट्पदी और चतुष्पदीका भी प्रयोग होता है। अतः वे भी 'घत्ता' कहला सकते हैं। इस प्रकार 'छड्डुणिआ' दुवईकी एक जाति है, जो कड़वकके अन्तमें आनेपर 'घत्ता' कहलाती है। स्वयम्भूने एक जगह कहा है कि चतुर्मुखने छर्दनिका, द्विपदी और ध्रुवकोंसे जड़ित पद्धड़िया दी। यहाँ छर्दनिकाका ही छड्डुणिआ है, जो कड़वकके अन्तमें प्रयुक्त होनेपर घत्ता कहलायी। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदीने 'घत्ता' को ही एक स्वतन्त्र छन्द मान लिया है, जो कि गलत है। प्राकृत पैंगल १९०२ की भूमिकामें टीकाकार लिखता है—'अथ द्विपदी घत्ता छन्द' प्रारम्भ होता हैं।[1] इस प्रकार 'घत्ता' छन्दका प्रयोग विशेष है, न कि छन्द। 'सिरिवाल-चरिउ' में प्रयुक्त 'घत्ता' दुवई जातिका ही है, उसमें छड्डुणिआका घत्ताके रूपमें प्रयोग सम्भवतः सबसे अधिक है। जैसे—

१० – ८; + १३ = ३१

१२ – ८; + १२ = ३२

१० – ५; + १२ = २७

इत्यादि।

दो-एक अपवादोंको छोड़कर 'कड़वक' की रचना चौपाईसे हुई है। पूरे काव्यमें चार जगह वस्तुबन्ध छन्द आया है। इस प्रकार छन्दके विचारसे आलोच्य कृति सरल है, उसमें छन्द-बहुलता या उनका जटिल प्रयोग नहीं है।

●

---

१. अपभ्रंश भाषा और उसका साहित्य, पृ. २४२, २४३।

सिरिवालचरिउ

सिरिवालचरिउ

संधि १

१

घत्ता—सिद्ध-चक्क-विहि-रिद्धिय, गुणहि[1] समिद्धिय, पणवेप्पिणु सिद्ध-मुणीवरहो।
पुणु अक्खमि णिम्मलु भवियहु मंगलु सिद्ध-महापुरि-सामियहो ॥

जय णाहिहि णंदण आइ-वंभ — जय अजिय जिणाहिय महिय-डंभ[2]।
जय संभव झाइय-सुक्क-झाण — जय अहिणंदण सुह-परम-णाण।
५ जय सुमइणाह कम्मारि-वाह — जय पोमणाह रत्तुप्पलाह।
जय जय सुपास सिरि-रमणि[3]-पास — जय चंदप्पह हय-मोह-पास।
जय पुप्फयंत दमियारि-वग्ग — जय सीयल साहिय-मोक्ख-मग्ग।
जय सेय[4] भव्व-कमल-सर-हंस — जय वासपूज जय लद्ध-संस।
जय विमल णाण-करुणा-णिहाण — जय जिण अणंत जाणिय-पमाण।
१० जय धम्मणाह सोवण्ण-कंति — जय संति जिणेसर विहिय-संति।
जय कुंथुणाह कय-जीव-मि.त्ति — जय अरसामी[5] णिव्वाण-थत्ति[6]।
जय मल्लि-जिणेसुर मल्लिमोद — जय सुव्वय थुअ-तियसिंद-विंद।
जय णमि रयणत्तय-भूसियंग — जय णेमि तजिय-रायमइ-संग।
जय पास भुवण-कमलेक्क-भाण — जय जयहि जिणेसर वड्ढमाण।
१५ घत्ता—[7]जिणगुणमाल पढेसइ मणि भावेसइ रिद्धि-विद्धि-जसु लहइ जउ।
सो सिद्धि-वरंगण-णारिहि, हय-जरमारिहि[8] सुक्खु णरसेणहँ परम-पउ ॥१॥

२

जिण-वयणाउ विणिग्गय सारी — पणवमि[1] सरसइ देवि भडारी।
सुकइ करंतु कव्वु रसवंतउ — जस[2] पसाइँ[3] वुहयणु रंजंतउ।
सा भगवइ महु होउ[4] पसण्णी — सिद्ध-चक्क-कह कहउँ रवण्णी।
पुणु परमेट्ठि-पंच पणवेप्पिणु — जिणवर-भासिउ धम्मु सरेप्पिणु।
५ विउल-महागिरि आयउ वीरहो — समवसरणु जिण-सामिहे धीरहो[5]।
तहो पयवंदण सेणिउ चलियउ — चेलणाहि परिवारहिं मिलियउ।
तिण्णि पयाहिण देवि पसंसिउ — उत्तमंगु भू धरे[6]वि[6] णमंसिउ।

---

१. १. क गुण। २. ख ग डिंभ। ३. ख ग रमण। ४. ख सीस। ५. ख ग अर माणिय। ६. ख थुत्ति। ७. ख ग जो। ८. ख मारिहिं।

२. १. ख ग पणविवि। २. ख ग जसु। ३. ख ग पसाइ। ४. ख होइ। ५. ख ग वीर हु। ६. ख भूरेवि क भरेवि।

श्रीपालचरित

(हिन्दी अनुवाद)

सन्धि १

१

सिद्धपुरके स्वामी सिद्ध मुनीश्वरको प्रणाम कर मैं (पण्डित नरसेन) पवित्र, भविकजनोंके लिए मंगल एवं गुणोंसे समृद्ध 'सिद्धचक्र विधान' रूपी ऋद्धि का आख्यान करता हूँ।

आदिब्रह्म नाभिनन्दन (आदिनाथ) की जय हो। दम्भका नाश करनेवाले जिनराज अजितनाथकी जय हो। शुक्लध्यान करनेवाले सम्भवनाथकी जय हो। शुभ परमज्ञानवाले अभिनन्दन-नाथकी जय हो। कर्मरूपी शत्रुओंके लिए बाधा-स्वरूप सुमतिनाथकी जय हो। रक्तकमलकी आभावाले पद्मनाथकी जय हो। लक्ष्मीरूपी सुन्दर स्त्रीके पास रहनेवाले सुपार्श्वनाथकी जय हो। मोहबन्धनको काटनेवाले चन्द्रप्रभुकी जय हो। शत्रुसमूहका दमन करनेवाले पुष्पदन्तकी जय हो। मोक्षमार्गको साधनेवाले शीतलनाथकी जय हो। भव्यरूपी कमल-सरोवरके लिए हंसस्वरूप श्रेयांसनाथकी जय हो। ज्ञान और करुणाके कोश विमलनाथकी जय हो। प्रमाणोंको जाननेवाले अनन्त जिनकी जय हो। सुवर्ण कान्तिवाले धर्मनाथकी जय हो। शान्तिका विधान करनेवाले शान्ति जिनेश्वरकी जय हो। जीवमात्रसे मित्रता रखनेवाले कुन्थुनाथकी जय हो। निर्वाणमें स्थिरता प्राप्त करनेवाले अरहनाथकी जय हो। फूलोंसे विनोद करनेवाले मल्लिजिनेश्वरकी जय हो। देवेन्द्र-वृन्द द्वारा स्तुत सुव्रतनाथकी जय हो। तीन रत्नों (सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र) से भूषित शरीर नमिनाथकी जय हो। राजमती (राजुल) का साथ छोड़नेवाले नेमिनाथकी जय हो। विश्वरूपी कमलके लिए एकमात्र सूर्य पार्श्वनाथकी जय हो। वर्द्धमान जिनेश्वरकी जय हो।

घत्ता—जो जिन (भगवान्) की गुणमाला पढ़ता है, मनमें ध्यान करता है, वह ऋद्धि, वृद्धि, यश और जय प्राप्त करता है तथा बुढ़ापा और कामको आहत करनेवाली सिद्धिरूपी सुन्दर स्त्रीका सुख एवं (नरसेन कविके द्वारा कथित) परमपद को प्राप्त करता है ॥१॥

२

मैं जिनमुखसे निकली हुई श्रेष्ठ, आदरणीय सरस्वती देवीको नमस्कार करता हूँ, जिसके प्रसादसे सुकवि सरस काव्यकी रचना करता है, जिसके प्रसादसे बुधजन शोभा पाते हैं, वह भगवती सरस्वती मुझपर प्रसन्न हों। फिर, मैं पंचपरमेष्ठीको प्रणाम कर तथा जिनवर द्वारा कहे गये धर्मका अनुसरण कर सुन्दर सिद्धचक्र कथा कहता हूँ। स्वामी जगवीर महावीरका समवशरण विपुलाचल पर्वतपर आया। (राजा) श्रेणिक अपनी (रानी) चेलना और परिवारके साथ उनकी पदवन्दना-के लिए चल पड़ा। तीन प्रदक्षिणा दे कर उसने उनकी प्रशंसा की और अपना सिर धरतीपर रखकर

गणहर-णिग्गंथहँ[7] पणवेप्पिणु अज्जियाहँ[8] वंदणय[9] करेप्पिणु।
खुल्लय इच्छायारु करेप्पिणु सावहाणु सावय पुंछेप्पिणु।
१० तिरियहँ किउ समभाउ गरिट्ठउ[10] पुणु णरिंदु णर-कोट्ठि णिविट्ठउ।
पुच्छइ[11] सेणिउ वीरजिणेसर सिद्ध-चक्क-फलु कहि परमेसर।
ता उच्छलिय वाणि वय-आयर णं लहरी-तरंग रयणायर।
घत्ता—गोयमु गणि साहइ, अणु पडिगाहइ ए उवएसु[12] पयासइ।
सिद्ध-चक्क-विहि इट्ठिय णिसुणि सइट्ठियँ[13] सेणिय कहमि समासइ ॥२॥

३

इह भरहे[1] अवंती-विसउ रम्मु जहँ णरवइ पालइ सच्चधम्मु।
जहँ गामवसहिँ पट्टणसमाण पट्टणहिँ[2] वि णिज्जिय सुरविमाण।
णयरायर-पुर-सोहा-रवण्ण दोणामुह-कव्वड-खेड-छण्ण।
सिरि[3]-सर-तडायँ[4] कमलिणिहि पिहिय हंसहँ जल सोहहिँ हंसि-सहिय।
५ गो-महिसि-संड जहिँ मिलिय मालि भक्खंति सइच्छइँ[5] कलम-सालि।
णीलोप्पल-वासिउ वहइ णीरु धीवरहँ विवज्जिउ जलु गहीरु।
जेमहिँ[6] पंथिय जहिँ खड-रसोइ पहे[7] दक्ख-मिरिय चक्खंति कोइ।
इक्खा-रसु पिज्जइ साउ लेवि पाणिउ पीयंति पवालिए वि।
घत्ता—[8]तहिँ विसउ जि मालउ, बहु-विह-मालउ, इयरदेस कयमालउ।
१० जहिँ तिय सोमालउ अइ-सुअमालउ पुण णं मालइ-मालउ ॥३॥

४

जो भुवमंडल-मंडल अग्गें जहिँ पहु जयसिरिमंडल अग्गें ?।
जहिँ ण गहइ गहु मंडलु कोई अभउ ण भउ परमंडल कोई।
जहिँ पुरि पवरंतरि आवंती णिहय सणाहे[1] विहुर आवंती।
जहिँ पहु आइ पडइ अरि पातले वसु-दह-लक्खण णावइ रावल।
५ रच्छ-चाप-जण जाणइ आवण खज्ज-वत्थ पूरे[2] पंथावण।
जहिँ णर-विउस पढहिँ बहु वाणिय सिरिणिवास वसहिँ वहुवाणिय।
गो जिम किउ चउथण पय-पोसण तेम[3] वेवि धण-कण, पय-पोसण।
जहिँ अकित्ति ण पावइ परसण अमरावइ आवइ जिय परसण।
घत्ता—उज्जेणि णयरि तहिँ पयडि थिय कणयरयण-कोडिहिँ जडिय।
१० वलिवंड धरंतहँ सुरधरहँ अमरावइ णं खसि पडिय ॥४॥

---

७. ग णिग्गंथहं। ८. ख अज्जियाह। ९. ख ग णंदणहं। १०. ख गुरिट्ठउ। ११. ख पुच्छहं। १२. ख हउ उदेस। १३. ख णिग्गयरिट्ठिय। ग गरिट्ठिय।

३. १. 'ख' और 'ग' प्रति में ये पंक्तियाँ अधिक हैं—"इह जवुं दीवु दीवहँ समिद्धु तह भरहखेत्तु जय सुयसिद्धु। तहिँ अत्थि अवंती विसउ रम्मु जहिँ णरवइ पालइ सच्च-धम्मु ॥ २. ख पट्टणहं। ग पट्टणह। ३. ख ग सरि। ४. ख तलाव, ग तलाय। ५. ख ग भक्खंति इच्छ खड कमल सालि। ६. ख जिमहि, ग जेंवहि। ७. 'ख' 'ग' में ये पंक्तियाँ अधिक हैं—"चिय खीर दहिय सक्कर हं मोइँ"। ८. क—जहि विजउजमालउ।

४. १. ख ग "जहि पहु आइ पडइ अरिपातल वसुवह-लक्खण वाणवपालल।" २. क कछति वत्थु पूरि पंयावण। ३. क प्रति में यह पंक्ति नहीं है।

उन्हें नमस्कार किया। मुनियों, गणधरों और निर्ग्रन्थों (परिग्रहसे रहित) को प्रणाम कर, अर्जिकाओं-की वन्दना कर, क्षुल्लकोंको इच्छाकार कर, सावधान होकर श्रावकोंसे पूछकर और तिर्यंचोंके प्रति महान् समभाव प्रकट कर राजा श्रेणिक मनुष्योंके कोठेमें बैठ गया। राजा श्रेणिक वीरजिनेश्वरसे पूछता है—"हे परमेश्वर, सिद्धचक्र विधानका फल बताइए। तब व्रतोंकी आकर (खानि) उनकी वाणी इस प्रकार उछली मानो ज्ञान-लहरोंकी तरंगोंवाला समुद्र उछला हो।

घत्ता—गौतम गणधर उस वाणीको साधते हैं। अणु (सूक्ष्म) रूपसे प्रतिग्रहण कर कहते हैं—"हे श्रेणिक, मैं इष्ट सिद्धचक्र विधि थोड़ेमें कहता हूँ, तुम इष्टजनों सहित उसे सुनो" ॥२॥

३

इस भारतमें सुन्दर अवन्ती प्रदेश है, जहाँ राजा सत्यधर्मका पालन करता है। जिसमें गाँव नगरके समान हैं और जहाँ नगरोंने भी 'देव-विमानों' को जीत लिया है, जो द्रोणमुख कव्वड (खराब गाँव) और खेड़ों (छोटे गाँव) से घिरा हुआ है। जिसमें नदियाँ, सर, तालाव कमलोंसे ढके हुए हैं, हंसिनियोंके साथ हंसोंके झुण्ड शोभित हैं। जहाँ गायों और भैसोंके समूह कतारोंमें मिलकर स्वेच्छापूर्वक उत्तम धान्य चरते हैं। नीलकमलोंसे सुवासित पानी वहता है, जिसका गम्भीर जल धीवरोंके लिए वर्जित है। जहाँ पथिक षड्रस युक्त रसोई जीमते (खाते) हैं। रास्ते में दाख और मिर्च (काली मिर्च) चखते हैं। सभी लोग ईखके रसका पान करते हैं। प्याऊसे पानी पीते हैं और जहाँ वालाएँ अपने स्तन दिखाती हैं।

घत्ता—जहाँ अनेक प्रकार (ग्रामों, नगरों, मार्गों आदि) की पंक्तियोंसे युक्त मालव देश है जो कई अन्य देशोंसे घिरा हुआ है। वहाँ की स्त्रियाँ सुकुमार हैं। उनकी भुजाएँ इतनी कोमल हैं मानो मालतीकी मालाएँ हों ॥३॥

४

भूमण्डलके मण्डलमें जो सबसे आगे है, जहाँका राजा जगत् भरकी राजश्रीमें श्रेष्ठ है, जिसके गृहसमूहको कोई ग्रस्त नहीं करता (जैसे राहु ग्रह, चन्द्र या सूर्यमण्डलको ग्रहण कर लेता है) वहाँ सभी निडर हैं, किसी को भी शत्रुमण्डलका डर नहीं है। उस विशाल मालवदेशमें अवन्तिपुरी (उज्जयिनी) नामक नगरी है जहाँ उनके राजा द्वारा आने वाली विपत्तियों का पहले ही विनाश कर दिया जाता है। जहाँ जब राजा आता है तो शत्रुओंके पाटल (पाँवड़े) विछ जाते हैं। अठारह लक्षणों वाले धनुर्धारी राजपुत्र उपस्थित रहते हैं। जहाँ तीर और कमान वालों का ही आना-जाना है। जहाँ रास्तोंमें खाद्य वस्तुएँ भरी पड़ी हैं। उस नगरीमें विद्वान् लोग बहुत सी भाषाएँ पढ़ते हैं और श्रीसम्पन्न वनिये निवास करते हैं। वहाँ राजा उसी प्रकार प्रजा का पालन करता है जिस प्रकार गाय चारों थनोंसे अपने वछड़ेका पालन करती है। जहाँ अकीर्ति स्पर्श नहीं कर पाती, मानो अमरावती ही उसका स्पर्श करने आती है।

घत्ता—उस मालव देशमें उज्जैनी नामकी प्रसिद्ध नगरी है, करोड़ों स्वर्ण रत्नोंसे जड़ी हुई, वह मानो अमरावती है, जो देवताओंके वलपूर्वक पकड़ने पर भी छूट पड़ी हो ॥४॥

५

उववणहिँ[1] वि सोहइ सा विचित्त कारंडहँ सावय चुमुचुमंत।
वल्लीहरेहिँ किंणर रमंति सालहिय पुंसमारइँ लवंति[2]।
जल-खाइय सोहहिं कमल-छण्ण सालत्तय-मंडिय पंचवण्ण।
पुणु णयरह ब्भंतरि हट्ट-मग्गु रयणहिं णिवद्धु णं मोक्ख-मग्गु।
५ जहिँ सुद्ध-फलिह-मणि-भित्ति पेक्खि[3] करि करइ वेहु[4] पडिबिंबु देक्खि।
णव-सत्त-पंच भोमइं[5] घराइं सोहंति णिवद्धइँ तोरणाइँ।
खडतीस[6] पवणि भुंजंति भोयॅ[7] जिण-धम्मासत्तिय वसइ लोयॅ[8]
पयपालु णरेसरु वसइ तित्थु सत्तंगु रज्जु पालइ पसत्थु।
णर-सुंदरि वरिणि मणोहरीय जिह कामहो रइ राहवहु सीय।
१० तहो पढम कण्ण सुर-सुंदरीय मयणासुंदरि लहुरिय विणीय।
घत्ता—पाढणहँ णिमित्त गुण-संजुत्त पढण समप्पिय दियवरहो।
जहिं जिणिय-पुरंदरि मयणासुंदरि सो आएसिय मुणिवरहो ॥५॥

६

सा जेट्ठ कण्ण पुणु पढइ केम वुहयणु वि ण उत्तरु देइ जेम।
तहे रूवरिद्धि पेक्खेवि ताउ सुरसुंदरि-अग्गें[1] भणइ राउ।
जो वरु रुच्चइ सो कहहि मुज्झु जिम तासु विवाहहुँ पुत्ति तुज्झु।
ते मग्गिउ वरु णरवइ अभीहु कोसंवीपुरि सिंगारसीहु।
५ सो आणिवि राएं दिण्ण कण्ण हय-गय आपूरि[2] हिरण्ण-वण्ण।
परिओसिउ[3] परियणु सयलु लोउ सो कुँवरि-सहिउ विलसंतु भोउ।
अहिणिसु परिवुज्झिउ विप्प-धम्मु वलि-वासुएउ दिक्खियहँ[4] कम्मु।
गोसुव-असुमेहइं णर-सवाइँ अय-जण्ण-विहाणइँ मुणिय ताइँ।
जियँ[5]-जोणिय सहियहँ मुणइ भेउ गंडयहँ कुरिहि कुल मंस-हेउ।
१० भद्दागमे अक्खिय जलहँ सुद्धि तिप्पंति पियर पुणु मंस-गिद्धि।
पसु-कय-वहेण तहिँ सग्गु रम्मु गो-जोणिहिं परसे परम-धम्मु।
अहिणिसु मणु वट्टइ सत्थएण परमत्थ[6]-गंथ सुवुज्झिय तेण।
घत्ता—भवियहु णिसुणिज्जँहु[7] हियइँ मुणिज्जहु मयणासुंदरि पढण-विहि।
खवणाणइँ वुज्झिउ तिहुवणु सुज्झिउ भू-भविस्सु विप्फुरइ तहि ॥६॥

७

पुणु लहुय[1] कुमरि णिप्पण्ण किह पणयारु वि अइवुह-पवरु जिह।
वायरणु छंदु णाडउ मुणिउ णिग्घंटु तक्कु लक्खणु सुणिउ।

---

५. १. ग उववणहिं। २. सो लहिय पुंस महुरइ लवंति। ग सालहिय पुंस महुरइं लवंति। ३. ख ग पिक्खि। ४. ग वेधु। ५. ख ग भूमइँ। ६. ख खड्तीस। ग छत्तीस। ७. ख ग भोउ। ८. ख ग लोउ।

६. १. ख अग्गइ। २. ग हय गय अऊरि हिरण्ण वण्ण। ३. ग परिउसिउ। ४. ख दिक्खियह। ग दिक्खियउ। ५. ख घिय जोणिय सहियहं मुणइं भेउ गंडयह कुरु कुलि मंस हेउ। ग जिय जोणिय सहियउ मुणइ भेउ गंडयहं कुरिहि कुलि मंस हेउ। ६. क परम सत्य-गंथ वुज्झिउ तेण। ख परम सत्य-गंथु वुज्झि ण तेण। ७. ख ग णिसुणिज्जहु।

७. १. ख लहुइ। ग लहुव।

५

वह अनोखी नगरी उपवनोंसे शोभित है, जिसमें पक्षियोंके बच्चे चहचहा रहे हैं। किन्नरोंके जोड़े लतागृहोंमें क्रीड़ा करते हैं। सालगृहों पर कोयलें कूक रही हैं। कमलोंसे ढकी हुई जलकी खाइयाँ शोभित हैं, जो पंच-रंगे तीन परकोटोंसे घिरी हुई हैं। नगरके भीतर बाजार-मार्ग है, मानो रत्नों (सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र रूपी तीनों रत्नों) से जड़ा हुआ मोक्षमार्ग ही हो। जिसमें स्फटिक-मणियोंकी दीवालोंमें हाथी अपना प्रतिबिम्ब देखकर सूंड़से छेद करते हैं। जहाँ तोरणोंसे सजे हुए नौ, सात और पाँच भूमियों वाले घर शोभा पाते हैं, जहाँ लोग छत्तीस प्रकारके भोजन करते हैं; जहाँ जिनधर्ममें श्रद्धा रखनेवाले लोग निवास करते हैं। उसमें पयपाल (प्रजापाल) नामका राजा निवास करता है। वह प्रशस्त सप्तांग (सात अंगोंवाला) राज्यका परिपालन करता है। नरसुन्दरी नामकी उसकी मनोहर पत्नी है। वह वैसी ही सुन्दर है जिस प्रकार कामकी रति या रामकी सीता सुन्दर थी। उसकी पहली कन्या सुरसुन्दरी है और छोटी विनीत मदनासुन्दरी।

घत्ता—उनमें-से राजाने गुणवाली बड़ी कन्या पढ़नेके लिए द्विजवरको सौंप दी। इन्द्राणीको भी जीतनेवाली दूसरी कन्या मदनासुन्दरीको उसने मुनिवरके पास ले जानेका आदेश दिया ॥५॥

६

जेठी कन्या इस प्रकार पढ़ती कि उसके सामने कोई विद्वान् भी उत्तर नहीं दे पाता। पिताने उसकी रूप-ऋद्धि देखकर एक दिन उससे कहा—"जो वर तुम्हें ठीक लगे, वह मुझे बताओ, जिससे उसका विवाह तुमसे हो सके।" उसने कौशाम्बीके राजा सिंगारसिंहको पसन्द किया। राजाने उसे बुलाकर कन्या दे दी और उसे अश्व, गज तथा सोनेसे लाद दिया। परिजन और सब लोगोंने उसे बहुत चाहा। राजा सिंगारसिंह उस राजकुमारीके साथ भोग-विलास करने लगा। दिन-रात वह ब्राह्मण-धर्मका बोध प्राप्त करता तथा राजा वलि और वासुदेवके दीक्षाकर्म-का भी। उसने गौ-सुत अश्वमेध नर-सुत (यज्ञ) और अजयज्ञके विधानको समझ लिया। जीवकी योनियोंके भेद भी उसने जान लिये। मांसके लिए गैडों और कुरुकुल(?)के भेदोंको उसने जान लिया। वह बताता—भादोंके आनेपर जलसे शुद्धि होती है। मांस खानेसे पितर सन्तुष्ट होते हैं। पशुओंके वधसे सुन्दर स्वर्ग मिलता है। गायकी योनि छूनेसे परमधर्म होता है। उसका मन दिनरात मिथ्याशास्त्रमें लगा रहता।

घत्ता—अब हे भव्यजनो, मदना सुन्दरीके पढ़नेकी विधि सुनिए और मनमें धारण कीजिए। उसने मुनियोंसे जो कुछ समझा था, उससे उसे त्रिभुवन सूझने लगा तथा उसके लिए भूत और भविष्यत् काल स्पष्ट हो गया ॥६॥

७

छोटी कुमारी भी उसी प्रकार निष्णात हो गयी, जिस प्रकार प्रतिज्ञावाला अत्यन्त बुद्धिमान् व्यक्ति निष्णात हो जाता है? उसने व्याकरण, छन्द और नाटक समझ लिये। निघण्टु,

पुणु अमरकोसु लंकार-सोहु आगमु जोइसु वुज्झिउ अखोहु ।
जाणिय वाहत्तरि कल पहाण[2] चउरासी-खंडइँ तह विणाण ।
पुणु[3] गाह-दोह-छप्पय-सरूव जाणिय[4] चउरासी वंध-रूव ।
छत्तीस राय सत्तरि सराउ पण[5] सद्दह चउसट्ठिह कलाउ ।
पुणु गीय णेत्त पाइअइँ[6] कव्व परियाणिय सत्थ-पुराण सव्व ।
छब्भासा छह दंसण णियाणि छण्णवइ लिहिय पासंड जाणि ।
[7]सामुद्दिय लक्खणु मुणिय सज्ज ता पढिय मुणिय चउदह वि विज्ज ।
भेसहँ ओसहँ गण फुरइँ ताहि अंगुल-अंगुलँ छाणवइ वाहि ।
वुज्झइ पहाण[8] वहुदेस भास अट्ठारहलिवि जाणिय णियास[9] ।
णव-रस चउ-वग्गहँ मुणिय भेय जिण समइ लिय चारिउ णिएयँ ।
रइ दुस्सह कामत्थु[10] वि मुणेइ पुणु कामरूव[11] तहि की जिणेइ ।
खवणाणइँ पढिय सुमुणिहि पासु [12]अट्ठाणवइ जिवहँ समासु ।
ए सयल सत्थ परिणइय तासु सम्माहिगुत्तु मुणिवरहँ पासु ।
मयणासुंदरि लहुरी[13] विणीय सा एवमाइ गंथहँ गरीय ।

घत्ता—गय कुमारि लहु तत्तहि अच्छइ जेत्तहि सहा-परिट्ठिउ ताउ जहि ।
सा जण-मण-हारी वहुगुणसारी लावइ काम-पिसाउ तहि ॥७॥

८

जिण-गंधोवउ सीस लएप्पिणु आसीवाउ दिण्णु पणवेप्पिणु ।
सीस लएवि लयउ गंधोवउ णिम्मलीय-णिम्मल-करणोवउ ।
पुण्ण-पवित्तु पाव-पविणासणु अट्ठ-कम्म-पयडीह विणासणु ।
पुणु कुँवरियहि रूउ अवलोइवि थिउ णरिंदु हिट्ठामुहु जोइवि ।
चिंतइ णरवइ कण्ण सलक्खण कवणहु दिज्जइ एह वियक्खण ।
एम भणेविणु[1] कण्ण वुलावइ मागहि वरु जो तुव मणि भावइ ।
जेम पुत्ति तुव जेट्ठिहि[2] इंछिउ [3]वरु गिण्णहु सुरसुंदरि वंछिउ ।
किंपि ण वोल्लइ मउणें अच्छिउ[4] भणइ राउ सुय काइँ णियच्छउ[5] ।
दीसहि देवि रूव धवलंवर परिणि पुत्ति जो फुरइ सुयंवर ।
णिसुणेविणु सुंदरिय चमक्किय [6]हिक्किरेवि अहोमुह करि थक्किय ।

घत्ता—मणि कंपइ पुणु जंपइ, ताउ चवेइ णिरुत्तउ ।
कुल-उत्तउ जं जुत्तउ, देमि अज्जु पडिउत्तरु ॥८॥

९

ता भणइ कुँवरि भो णिसुणि ताय जा कण्ण होइ मा-वप्प-जाय ।
कुल-उत्तिहि वप्प किएउ मग्गु अण्णइँ[1] इंछिउ वेसा-भुवंगु ।

---

२. ख ग कलपहाण । ३. ग तह । ४. ख जोणी । ५. ग पण सद्दह । ६. ग पाउ-गइ । ७. ख अंगुलि अंगुलि । ८. क पहाउ । ९. क णिणास । १०. ग कामच्छु । ११. ग कामरूव । १२. ग अट्ठाण वइ हि । १३. ग लहुइ ।

८. १. ग भणेप्पिणु । २. ग वरु जेट्ठिहि । ख जेट्ठिहि । ३. ग वरु गिण्हिउ सरसुंदरि वंछिउ । ४. ग अच्छहि । ५. ग णियच्छहि । ख णियछइं । ६. ख दिक्खरेवि ।

९. १. ख, ग आणइं ।

तर्कशास्त्र और लक्षणशास्त्र समझ लिया और अमरकोष तथा अलंकार शोभा भी। उसने निस्सीम आगम और ज्योतिष ग्रन्थ भी समझ लिये। मुख्य बहत्तर कलाएँ भी उसने जान लीं। उसी प्रकार चौरासी खण्ड विज्ञान भी। फिर उसने गाथा, दोहा और छप्पयका स्वरूप जान लिया। उसने चौरासी बन्धोंका स्वरूप जान लिया तथा छत्तीस राग और सत्तर स्वरोंको भी। पाँच शब्दों और चौसठ कलाओंको भी जान लिया। फिर गीत, नृत्य और प्राकृत-काव्यको भी जान लिया। उसने सब शास्त्र और पुराण जान लिये। अन्तमें छह भाषा और षड्दर्शन भी जान लिये। छियानवे सम्प्रदायोंको भी उसने जान लिया। उसने सामुद्रिक शास्त्रके लक्षणोंको भी शीघ्र समझ लिया। उसने १४ विद्याओंको पढ़-गुन लिया। औषधियों और भावी घटनाओंके समूहका भी ज्ञान हो गया। छियानवे व्याधियाँ वह उँगलियोंपर गिना सकती थी। बहुत से देशोंकी मुख्य भाषाएँ भी उसने सीख लीं। उसने अठारह लिपियाँ भी जान लीं। नौ रसों और चार वर्गोको उसने जान लिया। जिन शासनके अनुसार उसने चारित्र और निर्वेद ले लिया। दुस्सह रति और कामार्थमें उसे कौन जीत सकता है ? उसने क्षपणक मुनिके पास जीवोंके अट्ठानबे समासोंका अध्ययन किया। समाधिगुप्त मुनिके पास उसने इन समस्त शास्त्रोंको अच्छी तरह जान लिया। छोटी कन्या मयनासुन्दरी अत्यन्त विनीत थी। वह इन समस्त शास्त्र-ग्रन्थोंसे महान् थी।

घत्ता—वह कुमारी शीघ्र ही वहाँ गयी जहाँ पिता प्रजापाल राजसभामें बैठे थे। जनमनका हरण करनेवाली बहुगुणोंसे श्रेष्ठ उसने वहाँ कामभाव उत्पन्न कर दिया ॥७॥

८

जिन भगवान्के गन्धोदकको अपने सिरपर लेकर राजा प्रजापालको प्रणाम कर उसे आशीर्वाद दिया। राजाने सिरपर उस गन्धोदकको ले लिया, जो निर्मलको और भी निर्मल कर देनेवाला था। वह पुण्यसे पवित्र और पापका नाशक तथा आठ कर्मप्रकृतियोंका नाश करनेवाला था। कुमारीका रूप देखकर राजा अपना मुँह नीचा करके रह गया। राजा सोचता है कि कन्या सुलक्षणा है, विचक्षण यह किसे दी जाय ? यह सोचकर, उसने कन्याको अपने पास बुलाया और कहा—"हे पुत्रि, जो मनमें अच्छा लगे वह वर माँग लो। हे पुत्रि, जिस प्रकार तुम्हारी जेठी बहनने चाहा था, वैसा सुरसुन्दरीने मनोवांछित वर प्राप्त कर लिया।" वह कुमारी कुछ नहीं बोली, चुप रह गयी। तब राजा बोला—"हे पुत्रि, चुप क्यों हो ? हे देवी, तुम्हारा रूप धवल-अम्बर के समान दिखाई देता है। हे पुत्रि, जो वर स्वयं ठीक लगे उससे विवाह कर लो।" यह सुनकर वह चौंक गयी। धिक्कार कर वह मुँह नीचा करके रह गयी।

घत्ता—उसका मन काँप उठा। वह सोचने लगी कि पिता व्यर्थकी बात कर रहे हैं, इसलिए जो कुलोक्त और ठीक है, वही उत्तर मैं आज दूँगी ॥८॥

९

तब कुमारी बोली—"हे तात ! सुनिए। जो कन्या अपने माँ-बापसे उत्पन्न होती है, उस कुलपुत्रीके लिए वही वर होता है कि जिसकी बाप मंगनी करता है। यदि वह दूसरे वरकी इच्छा

जहिँ जणणु वि पाइ पखालि[2] देइ   परिवार-कुडुंवहु[3] मंतु लेइ ।
जणपंच वइसि रोवहि विवाहु   जसु देहि वप्प इम सो जि णाहु ।
५ मा-वप्पु ताम[4] परिणउ करेइ   णिय-कम्मु ताहँ अग्गइँ सरेइ ।
धीयहँ सुहासु चारहडि पुत्त   दूहव सूहव को करइ कंत ।
णिसुणहि ताय जिणागम लक्खिउ[5]   कम्मु सुहासुह सव्वहँ अक्खिउ ।
एम भणेइ[6] तिगुत्ति मुणीसरु   कम्मेँ रंकु वि कम्मेँ ईसरु ।
णिय-कम्मेँ जु लिलाडह लिहियउ   सो को मेटइ जो विहि-विहियउ ।
१० एयहँ वयणहँ मा करि वियप्प   सोँ होइज्ज लिहियउ कम्म वप्प ।
इय णिसुणेप्पिणु कोविउ णिवइ   [7]देखिवउ कम्मु इहि तणउ मइ ।

घत्ता—ता णरवइ कुद्धउ, भणइ विरुद्धउ, जाहु पुत्ति णियगेहहो ।
सा गयवर-गामिणि, जण-मण-रामिणि, गय सरंति जिणदेवहो ॥९॥

१०

ता पहु णिय-मणि रोसु वहंतउ   वाहियालि लहु चलिउ तुरंतउ ।
हय-गय-वाहण-सिविया-जाणहिँ[1]   आयवत्त-सिग्गरि-अपमाणहिँ[2] ।
रोय-सोय-बहु-दुक्खेँ पत्तउ   कोढिउ दिट्ठु सँमुहु आवंतउ ।
वेसरि-रूढऊ वियलिअ-गत्तउ   सीसोवरि पलास-दल-छत्तउ ।
५ [3]मुणि णिंदियउ पुव्वगुण-मीडिउ   उंवेँराइँ[4] तहि पावेँ पीडिउ ।
ढलहि चँवर बहु-घंटा-सद्दहि   कय-कोलाहलु सिंगाणद्दहि ।
गलिय-पास-कर-चरणंगुलियइँ[5]   कोढिय ताह निरंतर मिलियइँ ।
ते जंपहिँ इहु[6] अम्हहँ सामिउँ[7]   अज्जु अवंती आउ गुसामिउँ[8] ।
जइ कोढिउ किर अइ णिकिट्ठउ   तो वि ण णिवइ णेहु तहो फिट्टउ[9] ।
१० बहु-आडंवरेण सहुँ चल्लइ   वाहि[10] पेक्खि णिय-परियणु घल्लइ ।

घत्ता—चालइ णिवसुत्तहँ[11], दुहियण-जुत्तहं, देस विएसह धडइ[12] ।
कंथा-गूडर-घर अरु कंवलवर मेलइ णिव पइ ताडइ[13] ॥१०॥

११

मंडलवइ परमंडलि संचइ   रत्त-पित्त-रण-पाउँ ण खंचइ ।
मेहदाह[1]-सह किय भंडारी   जल दोणीय सयल पणिहारी ।
वहिरदाहु तंमोलु समप्पइ   कंठधारी सरीरइं चप्पइ[2] ।

---

२. ख पक्खालि । ३. ख ग कुटुंवही । ४. ख ताइ । ५. ख ग लक्खिउ । क भासिउ । ६. क भणेवि । ७. ग देक्खिव्वउ कम्मु वि तणउ मइ ।

१०. १. ख ग जाणहिं । २. ख ग सिग्गरि अपमाणहि । ३. ख ग मुणिणिंदियइं । ४. ख ग उवरहिं तहिं । ५. ख गुलियइं । ६. ग यहु । ७. क सायउ । ८. क गुसामउ । ९. ग फिट्टइ । १०. ग भज्जइ लोउ वि महियलि हल्लइ । ११. ग णिय उत्तह । १२. ग धाडवइ । १३. ग ताडवइ ।

११. १. ग मेह दहु सह किय भंडारिय । जल दोणिया सयल पणिहारिय ॥ वहिर दाहु तं वोलु समप्पहिं । कंठवार सरीरहं चप्पहिं ॥ उक्कणतिय पावसि जवालिय । गुम्म वाहि धर सह कुटवालिय ॥ सूरवण्ण ते सूर सलक्खण । गलिय साहु ते मंति वियक्खण ॥ कछ राहु वे यंचिय दलवइ । वर टियाल सह रक्खहि णरवइ ॥ पाडिहेर जेणा की भासहिं । उवरोहिय जे कालउ भासहिं ॥ पित्तसुक्कु नरहु वइ गच्छहि । रोम विहीण अंगरह अच्छहि ॥ २. ख दाहु ।

करती है तो यह उसी प्रकार है, जिस प्रकार वेश्या लम्पटको चाहती है। जहाँ पिता परिवार और कुटुम्बकी मन्त्रणा लेकर और पाँव पखारकर कन्याको दे देता है, पाँच आदमियोंको इकट्ठा कर विवाह रचता है। इस प्रकार पिता जिसको दे देता है वह उसका पति है। हे पिता! माँ-बाप केवल विवाह करते हैं उसके बाद तो कन्याका अपना कर्म ही काम आता है। बेटियोंके लिए सौभाग्य वीरता पुत्र दुःख और सुख कौन करता है? हे स्वामी! जिनागममें कही गयी बात सुनिए कि शुभाशुभ कर्म सभीको भोगने होते हैं। त्रिगुप्ति मुनीश्वरने कहा है कि जीव कर्मसे ईश्वर होता है और कर्मसे रंक होता है। अपने ललाटमें जो कर्म लिखा है उसे कौन मेट सकता है। वह विधिका विधान है। इन वचनोंमें विकल्प मत करिए। हे पिता, वही होगा जो कर्ममें लिखा है।" यह सुनकर राजा कुपित हो उठा और सोचने लगा कि मैं तुम्हारी कर्मबुद्धिको देखूँगा।

घत्ता—तब राजा क्रुद्ध हो उठा और विरुद्ध होकर बोला—"हे देवी, अपने घर जाओ।" जनमनका रमण करनेवाली वरगामिनी वह चल दी तथा जिनदेवकी शरणमें जा पहुँची ॥९॥

१०

राजा अपने मनमें क्रोध करता हुआ तत्काल चला। अश्व, गज, वाहन और पालकी तथा अनगिनत छत्र और ध्वजदण्डोंके साथ नगरके बाहर मैदानकी ओर चल पड़ा। उस ने देखा कि रोग, शोक और तरह-तरहके दुःखोंको प्राप्त एक कोढ़ी सामने आ रहा है। गधेपर बैठा। विगलित शरीर। सिरपर पलाशके पत्तोंका छाता। मुनिनिन्दक और पूर्वजन्मके कर्मों (गुणों) से भिड़ा हुआ। विशेष प्रकारके कुष्ठरोग (उपराँव) के पापसे पीड़ित। बहुतसे घण्टोंकी ध्वनियोंके साथ उसपर चँवर ढल रहे हैं। सिंगी-बाजोंसे जो कोलाहल कर रहे हैं; दोनों पार्श्व भाग हाथ और पैर, जिसके गल चुके हैं। दूसरे कोढ़ी उससे लगातार मिल रहे हैं। वे कहते हैं कि यह हमारा स्वामी है और यह गोस्वामी अवन्ती प्रदेशमें आया है। यद्यपि वह कोढ़ी और अत्यन्त नीच है फिर भी उनका स्नेह उसके प्रति कम नहीं होता। वह आडम्बरके साथ चलता है, व्याधि देखकर वह अपने परिजनोंको छोड़ चुका है।

घत्ता—दुःखी जनोंसे युक्त राजपुत्रोंके साथ चलता है, देश-विदेशमें घूमता है। कन्था और गूडर (गूदड़ी) ही उसका घर है। उत्तम कम्बल उसके पास है। वह राजाका पद ठुकरा चुका है ॥१०॥

११

मण्डलपति होकर भी वह दूसरेके मण्डलमें घूमता है, वह रक्त, पित्त और रणके पापसे लिप्त नहीं होता। जिसे मधुमेह है, वह राजाका भण्डारी है, उसकी जितनी पनहारिनें हैं उनके

उक्कतिय पाविय जं वालिय गुम्म वाहि घर[3] सह कुट वालिय ।
सूरवण्ण ते सूर सलक्खण गलिय-साइ किय मंति वियक्खण ।
कच्छदाहु पवंचिय दलवइ वरटियाल सह रक्खइ णरवइ ।
पाडिहेर जे णा की भासिय उवरोहिय जे काल उक्खासिय ।
पित्त-सुक्क-णरेंसह[4] गच्छइ रोम-विहीण अंगरहँ[5] अच्छइ ।
चमरहारि मक्खियगणु लग्गइ छत्तु धरइ णासइ फुडु भग्गइ ।
काहल तहिँ[6] जो सहणइ दावइ घंट लेइँ जहि वोलण आवइ ।
इय सामग्गीं देइ पयाणउ अप्पणु उवराइँ सहराणउ ।

घत्ता—पेक्खेविणु[8] राणउं पुणु अणुराएं मंतिहि वोलण लग्गउ ।
कुढिराणउ आवइ महु पर[9] भावइ मयणासुंदरि-जोग्गउ ॥११॥

१२

इउ[1] पेक्खिवि राएँ आएसिउ मंति-वग्गु सवडम्मुहु पेसिउ ।
हकरावहु[2] जामायउ होसइ मयणासुंदरि हियउ हरेसइ ।
गयउ मंति आणिं दुह-किण्णउ जण्णवासु पुरवाहिरि दिण्णउ ।
वाहुडि णरवइ गेहहु आवइ मयणासुंदरि दुहिय वुलावइ ।
अक्खिउ सुय महु कहिउ करेहि तुहुँ दिण्णी कोढिहि परिणेहि ।
भणइ कुमरि परिणवहुं[3] सइच्छँउ[4] अवर पुरिस महु तुव सारिच्छउ ।[5]
सिंघरासि जोइसिय वुलाइय[6] वेय—मज्झ ? तहु लगुण गणाइय ।[7]
साहउ ? धरहु कण्ण परिणावहु मयणासुंदरि सुहु भुंजावहु ।
ता अंतेउरु भणइ रुवंतउ कण्णारयणु ण कोढिहि जुत्तउ ।
रयणमाल जा तिहुयणु मोहइ सा किं सुणहहि वंधी सोहइ ।

घत्ता—इय परियणु सयलु विसूरियउ णयर-लोउ विंभइँ भरिउ ।
सह जंपहि णरवइ-मंडलिय इहु अम्ह अचंभउ संभरिउ ॥१२॥

१३

पणवंति मंति[1] जंपहिं तिसुद्धि तिक्काल-कुसल जे णंतवुद्धि ।
विंभिउ पडिहासहिं ते[2] महीस आयण्णि वयणु हो णिव गरीस ।
जो कुट्ठ-वाहि-वाहिउ णिहीणु उक्किट्ठउ णिक्किट्ठउ जु दीणु ।
जहि गलिय पलिय अंगुलिय पाय तहि केम समप्पहि कण्ण राय ।
मयणासुंदरि सुवियड्ढ दुहिय किण्णरि-सुरि-विज्जाहरिहि अहिय" ।
पडिउत्तरु दिण्णउ णिव-पवीण "तुम्हहँ सह विंभिय वुद्धि-हीण ।
किम कहहु एहु तुम्ह वाहि-अंगु जसु[3] परियणु छज्जइ[4] चाउरंगु ।
एयह वेसरि वाहण[5] अखोह[6] एयहँ पडिहासइ रायसोह ।

३. ग घर । ४. ख णरहुएं गच्छहिं । ५. ख अंगरह अच्छहिं । ६. ख तहिं । ७. ख घंटालहि ।
८. ख पिक्खेविणु क पेखेविणु । ९. ख मणि ।
१२. १. क पेखिवि । ख पिक्खि । २. ख हकारवहु । ग हक्कारहु । ३. ग परिणिवउ । ४. ख सइच्छइं ।
५. ख सारिच्छइं । ६. ख वुलावहु । ७. ख गणावहु ।
१३. १. क पणयंग । २. ख ग तुहु । ३. ख ग जहिं । ४. ख छइवलु । ५. ग वाहणु । ६. ग अखोहु ।

शरीरसे पसीना और पीप वहती है। जिन्हें कण्ठमालका रोग है, वे उसके शरीरकी मालिश करते हैं। (अर्थ स्पष्ट नहीं है), जिनके फोड़े फुंसियाँ हैं, वे घर और सभाकी देखभाल करते हैं। सूर्यके रंगवाले (कोढ़के कारण) वे सूरवीर और विलक्षण हैं। जिसका पूरा शरीर गल चुका है, वह कोढ़ीराजका विलक्षण मन्त्री है, जिन्हें खाज और जलन है, वे सेनापति हैं जो वरटियाली के साथ राजाकी रक्षा करते हैं। प्रतिहारी वे हैं जो बोल नहीं सकते। पुरोहित वे हैं जो कालकी थपेड़ खा चुके हैं? पित्त और शुक्रवाले लोगोंके साथ वह चलता है। उसका अंगरक्षक रोम विहीन है। चमर धारण करनेवालीपर मक्खियाँ भिनभिना रही हैं, जो कोढ़ीराजपर छत्र लगानी है, उसकी नाक सड़ चुकी है, ऐसी कौन-सी काहलता है जो उसमें दिखाई नहीं देती। जहाँ लोग घण्टा लेकर ही बोल पाते हैं। इस सामग्रीके साथ वह कोढ़ीराज कूच करता है, वह स्वयं अंगराज है और उसके साथ सात सौ राणा हैं।

घत्ता—उन्हें देखते ही राजा बड़े प्रेमसे मन्त्रियोंसे बोला—'कोढ़ी राजा आ रहा है, वह मुझे अच्छा लगता है। यह मदनासुन्दरीके योग्य वर है' ॥११॥

१२

उसे देखकर राजाने आदेश दिया, मन्त्रि-समूह उसके सामने भेजा और कहा कि उसे बुलाओ वह दामाद होगा। मदनासुन्दरीके हृदयका हरण करेगा। आज्ञासे मन्त्री गये और दुःखसे पीड़ित उन्हें गाँवके बाहर जनवासा दिया। अपने घर आकर राजाने बेटी मदनासुन्दरीको बुलाया। वह बोला—"बेटी, मेरी बात मानोगी? तुम कोढ़ीको दे दी गयी हो। क्या उससे विवाह करोगी?" कुमारी बोली—"मैं ने स्वेच्छासे उसका वरण कर लिया है। अब हे तात! मेरे लिए दूसरा पुरुष तुम्हारे समान है।" राजाने तब सिंहराशि ज्योतिषीको बुलाया। उसने वेदोंके अनुसार उसकी 'लगन' बतायी। "घर अच्छा है, कन्याका विवाह कर दो। मदनासुन्दरी सुख पायेगी।" यह सुनकर सारा अन्तःपुर रो पड़ा। उसने कहा—"यह कन्यारत्न कोढ़ीके योग्य नहीं है, जो रत्नमाला त्रिभुवनमें शोभा पाती है, क्या वह कुतियाको बाँधनेसे शोभा पायेगी?"

घत्ता—इस प्रकार सारा परिवार रो रहा था। नगरके लोग आश्चर्यमें थे। राजाओंकी इकट्ठी हुई सभा कह उठी कि इससे हमें बड़ा अचम्भा हो रहा है ॥१२॥

१३

तब प्रणाम करके मन्त्री बोला—"जो मन, वचन, कर्मसे शुद्ध त्रिकाल कुशल और अनन्त बुद्धिवाले हैं वे भी आश्चर्यमें हैं। हे नृपश्रेष्ठ, हमारी बात सुनिए; जो कोढ़की बीमारीसे पीड़ित है, उखड़ा हुआ निकृष्ट और दीन है, जिसकी अँगुलियाँ और पैर गलकर सफेद पड़ गये हैं, हे राजन्! उसे अपनी कन्या कैसे दे रहे हैं? मदनासुन्दरी चतुर कन्या है। वह किन्नर, देव और विद्याधरोंकी कन्याओंसे भी अधिक (सुन्दर) है।"

इस पर चतुर राजाने प्रतिउत्तर दिया—"तुम्हारी सभाकी मति मारी गयी है। तुम यह क्यों कहते हो कि इसके शरीरमें रोग है? जिसके परिजन हैं और चतुरंग सेना है, कभी न क्षुब्ध

एयहँ हत्थहँ दीसइ सुपत्तु — एयहँ सिरि सोहइ आयवत्तु[7]।
[8]एयहँ साहु आएसु भणंति — एहहँ पुणु छह चमरा ढलंति।
५ एयहँ[9] अग्गासण लइय संट — एयहँ सह वज्जावंत घंट।
एयहँ अग्गइँ गायइं णडंति — एयहँ पुणु छइ-राणउ भणंति।
इह णिव-लक्खण दीसहिं[10] णिजास — एयहँ पुणु छइक्खाहुलीय भास[11]।
यहु मंदगमणु रत्तक्ख एस[12] — एयहाँ सिरि दीसइं सुहुम-केस।
एयहँ सामग्गिय मइ महल्ल — एयहँ सव्वइँ कट्टार-मल्ल।
१० इहिं णिरु हरिहर वंभहँ पयासु — एयहँ पुणु मठ-देवलहँ वासु।
जिहि[13] वंभणु अडदह वण्णराउ — यहु पुणु अट्ठारह वण्णराउ।
एयहँ अंधारी[14] अंग-छार — एयहँ पुणु सहइ सहाचार।[15]
[16]यहु सूलपाणि जिम भमइ भिक्ख — यहु भइरउ जिम जग देइ सिक्ख।

घत्ता—विलवंतउ राएं सयलु जणु, अवगण्णिवि मंडउ राइउ।
१५ मणिमय-खंभ समुद्धरिया, वहुभंतिहिं तोरणु राइउ॥१३॥

१४

वज्जइ मंदलु णिज्जइ मंगलु — णारियणु[1] जणु करइ अमंगलु।
कोढिउ पेक्खिवि रोवइ सहु पुरु — मयणासुंदरि मण्णइ णं सुरु।
आहरणइँ देवंगइँ वत्थइँ — दोण्णि वि सिंगारियइँ पसत्थइँ।
धीरत्तणु कुँवरिहिं मणि भाविउ — मयरद्धउ मइँ पुण्णें पाविउ।
५ माय-वहिणी रोवंति णिवारइ — विहिणा विहियउ को किर वारइ।
वंभण वेय पढंतह संतह — अइहव-मंगल चारु करंतह।
सिरिसिरिवालो मउड़ णिवद्धउ — एक-छत्तु णं रज्जु णिवद्धउ।
कर-कंकण उरयले हारावलि — करइ रज्जु जिम सधर-धरावलि।
[2]मोद्दीवी संगुलि दीणी तहो — जिम विलसइ पुहवि समुद्दहो[3]।
१० सिद्ध-चक्क-फल-पुण्ण पहावें — परिणिय कण्ण-रयणु उच्छाहें।
पाय-जुयलि णिवडंति पलोइय — कुँवरिहि-रूव-सिरी अवलोइय।

घत्ता—ता चिंतइ णरवइ णट्ठिय महु मइ, रायमग्गु मइँ हारियउ।
जं दिण्ण कुमारिय कोढियहो, मंतिहिं वारिउ मइँ कियउ॥१४॥

१५

हउँ णट्ठ-वुद्धि कोहें खविउ — जं कोढेहिँ कण्णालविउ।
हउँ कुलक्खु रज्जि परिट्ठविउ — मइँ कंतहिं वयणु [1]अइक्कमिउ।
हउँ मिलियउ णीच-णराहिवेण — पाविय इउँ पक्खि जडाउ तेण।[2]

---

७. ग आयवंतु। ८. ग एयहं सह आयसु जिउ भणंतु। ९. ग विणवंति वि अग्गइं संचलंति। (ग प्रति में ये पंक्तियाँ अधिक हैं)। १०. ग दीसहिं। ११. ग छइ खाहुलियभास। १२. ग रत्तक्खिएस। १३. ग जिम। १४. ग अधारी। १५. ग सहअचार। १६. ग यहु पुणु ईसरु जिम फिरइ वारु। (ग प्रतिमें ये पंक्तियाँ अधिक हैं)।

१४. १. ख ग नारियण जण करहि अमंगलु। २. ख ग मुद्दीवी। ३. ख ग समुद्दलहो।

१५. १. ख ग अइक्कमिउ। २. ख जेण ण = जेम।

होने वाला गधा इसकी सवारी है। इसके पास राजशोभा दिखाई देती है। इसके हाथमें सुपात्र है। इसके सिर पर छत्र है। सभी इसका आदेश मानते हैं। इस पर छह चमर ढलते हैं। समूहमें यह सबसे आगे है। इसके लिए घण्टे बजाये जाते हैं। इसके आगे गाया-नाचा जाता है। इसे लोग 'छैराना' कहते हैं। इसमें राजाके लक्षण दिखाई देते हैं। इसे छह भाषाएँ आती हैं। यह धीरे-धीरे चलता है। इसकी आँखें लाल हैं। इसके सिर पर सूक्ष्म केश दिखाई देते हैं। इसके साधन और मति महान् हैं। इसके सब कटारवाले श्रेष्ठ योद्धा हैं। यह निश्चय ही हरि, हर और ब्रह्मा है। इसका मठ और देवालयोंमें वास है। जिस प्रकार ब्राह्मणोंके अट्ठारह वर्ण राग होते हैं, इसके भी अट्ठारह उपराग हैं। इसके पास अधारी और अंगों पर धूल है। और सभाके सभी उपकरण इसे सोहते हैं। यह शूलपाणि (शिव) की तरह भिक्षा माँगता है और यह भैरवकी तरह दुनियाको सीख देता है।

घत्ता—इस प्रकार सब लोग विलाप कर रहे थे, परन्तु उनकी चिन्ता न कर राजाने मण्डप बनवाया। उसमें मणिमय खम्भे लगाये गये और तरह-तरहके तोरण बाँध दिये गये ॥१३॥

१४

मन्दल (वाद्यविशेष) बज रहा है। मंगल गीत गाये जा रहे हैं। परन्तु स्त्रियाँ (रोकर) अमंगल कर रही हैं। कोढ़ीको देखकर सारी नगरी रोती है परन्तु मदनासुन्दरी समझती है कि मानो वह देव है। गहने और दिव्य वस्त्रोंसे दोनोंका शृंगार कर दिया गया। सुन्दरीको (उस समय) मनमें धीरज ही अच्छा लग रहा था कि जैसे उसने कामदेवको प्राप्त कर लिया हो। वह रोती हुई अपनी माँ-बहनको समझाती है कि विधिके लिखेको कौन टाल सकता है? ब्राह्मण वेद पढ़ रहे हैं। अत्यन्त उत्सव और मंगल हो रहे हैं। श्रीपालको मुकुट बाँध दिया जाता है, मानो एक छत्र राज दे दिया गया हो। उसके हाथमें कंगन और हृदयमें हारावली है। जैसे वह पहाड़ सहित धरतीका राज्य करेगा। उसकी अँगुलीमें मुदरी पहना दी गयी, जैसे समुद्रसे धरती शोभित हो। सिद्ध चक्रके फल और पुण्यके प्रभावसे उसने उत्साहपूर्वक कन्यारत्नसे विवाह कर लिया। पिता उसे पैरों पर गिरते हुए देखा। उसने कुमारीकी रूपश्रीका अवलोकन किया।

घत्ता—तव राजा सोचता है कि मेरी बुद्धि नष्ट हो गयी। मैंने राजमार्ग भी खो दिया जो मैंने अपनी कन्या कोढ़ीके लिए दे दी। मैंने वही किया जिसके लिए मन्त्रीने मना किया था ॥१४॥

१५

"मेरी बुद्धि नष्ट हो गयी, क्रोधने मुझे खा लिया कि जो मैंने कोढ़ीके लिए अपनी कन्या दे दी। कुलका क्षय करने वाला मैं राजपद पर प्रतिष्ठित हुआ। मैंने मन्त्रियोंका कहा नहीं माना।

जें आणिउ दिण्णउ अमिय-हलु विस-हलु पडिहासइ सो वि खलु।
५ जसु दिट्ठिहि [3]सज्जा होहिं अंध सो किमि मारिज्जइ रे पिरंध।
हउँ दिवि पउलाहि भयउ हउँ[4] चक्कि सुभउम जेम वहिउ।
हउँ अलियउ वसु णरवइ भयउ हउँ रावण जिम अवजसु लयउ।
असि[5] सुणइँ मुणिहि जिम दावियउ जसवइ णिव जिस पछितावियउ।
पुत्तिया मइं मारिय णिरु गँवारु णिय[6]-खीरहो मइँ णिरु छित्त छारु।
१० अहवा पुणु अम्हहँ कवणु दोसु परिणवइ सुहासुह करि विसेसु।
इय चिंतिवि दिण्णइँ सुहयराइँ भँडारइँ संपइँ [7]मणहराइँ।
देवंगइँ णिवसण-भूसणाइँ रह-तुरय-छत्त-सिंघासणाइँ।
हय-गय-वाहण-जंपाण-जाण वहु-चिंध-चमर-करहइँ[8] किकाण।
देसइँ गामइँ धण-धाणपूरि मालवउ दिण्णु वेसहस चूरि।
१५ दिण्णउँ राउलु सोहा-रवण्णु धणु दासी-दास हिरण्णु अण्णु।
उज्जेणिहि वाहिरि दिण्णु ट्ठाउ सिरिपालु रहिउ तहिं अंगराउ।
सय-पंच- सत्त-मंदिरइँ तेवि[9] कोढियण णिजालइ रहिय वेवि।
तहिं णेह-परंपर अइविचित्त अच्छइँ विण्णि वि सुहु अणुहवंत।
पुणु देक्खिवि णरवइ गहवरइ[11] विसमउ चित्तइँ णउ वीसरइ।
२० अइ-मोहिउ सोइउ पहु भणइ विणु मुए णवि पछिताउ हणइ।[12]
ता मंतिहि कीयउ कवड-मंतु णिव-पुरउ पजंपिउ[13]भउ कुजंतु।
आइय आयण्णहि पहु पुकारि सीमा-संधिहि मारइ धुंधुमारि।
मरहट्ठउ णिग्घिणु जोवि[14]राउ पहु सोआयरु मुणि सो वि आउ।
पयपालु समुट्ठिउ मारि मारि इम वुद्धि करिवि लइ गय णिसारि।
२५ जहिं अंगदेसु चंपउरि-ट्ठाउ[15] जहिँ[16]होंतु आसि अरिदमणराउ।
णिव-धाडीवाहण-कुल-पवीणु जो देव-सत्थ-गुरु-पाय-लीणु।
तहिं होंति आइ[17]सिरिवाल-जणणि कुंदप्पह णिव-अरिदमण-घरिणि।

घत्ता—ता उट्ठिय वे वि[18]विणउ करेवि पाय-कमलि णिवंडतइं।
सा देइ असीस तिहुवण-ईस-पट्ट-घरिणि सिरिवाल तुह ॥१५॥

१६

ता कुँवरि-चित्ति फिट्टउ सँदेहु जाणिउ णिरु रायकुमारु एहु।
भल्लउ भउ जं पुच्छिउ ण गुज्झु ता लिंतु णाहु आराहु मज्झु।
जिणहरि जाइवि गिण्हमि वयाइँ तुव फेडमि गुरु-पायहँ पसाइँ।
मुणि पुंछिवि जिण-सासण-पहाणु पुणु करमि सिद्ध-चक्क वि विहाणु।
५ ण्हवणाइ-वि वहुल-पसूण लेवि कुंकुम-कप्पूरइँ लइय[1] ते वि।

३. ग साज्जा होहिं अंध। ४. ग हउ णउलहि जिम जेम अहिउ। ख हउ दविण उलहइ जेम अहिउ। ५. क असेस णह मुणिहिं जिम दाविय। ६. ग णिय-खारहु। ७. ख ग सारइँ। ८. ग करहइ। ९. ग जेवि। १०. ग कोढियजण सहल रहिय तेवि। ११. ग गहवरइ। १२. क विणु मुइ णवि पछिताउ जाइ। १३. ग ययंएइ। १४. ग जोवराउ। १५. ग चंपहिट्ठाउ। १६. ग आसिहोंतु। १७. ग आय। १८ ग देवि।

१६. १. ग लइ चलिय देवि।

मैं नीच राजाओंके साथ मिल गया। इसलिए पक्षी जटायुकी तरह मैं पापी हूँ। मुझे अमृतफल लाकर दिया गया, परन्तु वह भी मुझे विषफल दिखाई दिया। जिसकी दृष्टिसे अन्धे भी आँखवाले हो जाते हैं, मैं इतना अन्धा हो गया कि मैं—उसे भी मारना चाहता हूँ। मैं नकुल (नेवला) साँपके समान हो गया। मैं चक्रवर्ती सुभौमके समान हो गया। मैं राजा वसुके समान झूठा हुआ। मैंने रावणके समान अपयश प्राप्त किया। राजा जसवइने मुनिको सारा आकाश दिखाया था और अपने मनमें पछताया था, वैसे ही मैं भी पछता रहा हूँ।"

हे बेटी! मैंने तुझे व्यर्थ मार डाला। मैं अत्यन्त गँवार हूँ। खोटी बुद्धिवाले, मैंने अपने ही दूधमें राख डाल दी। अथवा इसमें हमारा क्या दोष है? क्योंकि किया गया शुभ-अशुभ कर्म ही विशेष रूपसे परिणमन करता है। यह विचार कर राजा प्रजापालने सुखकर भण्डार और सम्पत्ति श्रीपालको दे दी। दिव्य भूषण और वस्त्र भी दिये। रथ, घोड़े और सिंहासन भी दिये। अश्व, गज, वाहन और जंपाण यान दिये। उसे प्रचुर चिह्न, चमर, करभ, किकाण तथा धनधान्यसे भरे दो हजार गाँवोंके साथ मालवा दे दिया और भी दासी-दास तथा स्वर्ण दिया। मन्त्रियोंने उज्जैनके पास श्रीपालको जनवासा दिया। अंगराज श्रीपाल वहाँ आकर रहने लगा। वहाँ जो साढ़े सात सौ मन्दिर थे, उनमें सभी कोढ़ी रहने लगे। वहाँ वे दोनों अति विचित्र स्नेह परम्परासे सुखका अनुभव करने लगे। (इधर) मन्त्रीने देखा कि राजा प्रजापालकी विह्वलता नहीं जाती, वह इस विषमताको चित्तसे नहीं भुला सकता। अत्यन्त मोहित और शोकातुर होकर राजा कहता है कि "मरे बिना मेरा पश्चात्ताप नहीं जा सकता," तब मन्त्रीने कपट मन्त्र किया। वह बोला कि "अपने नगरको कोई खतरा पैदा हुआ है। हे राजन्, सुनिए, बाहरसे पुकार आ रही है। सीमान्त प्रदेशमें (धुन्धुमारि) हलचल मची हुई है। निर्दय जो मरहठा राजा है, वह आपको शोकसे व्याकुल समझकर आ गया है।" तब प्रजापाल राजा "मारो-मारो" कहकर उठा। युद्धके विचारसे अपने हाथीपर बैठकर वह निकला। अंगदेशमें चम्पापुर नामका नगर है, उसमें धाड़ीवाहन कुलका एक निपुण राजा था, जो देव, शास्त्र और गुरुका भक्त था। उसी राजा अरिदमनकी पत्नी और श्रीपालकी माँ कुन्दप्रभा वहाँसे आयीं।

घत्ता—वे दोनों (श्रीपाल और मदनासुन्दरी) विनयपूर्वक उठे, उसके चरणकमलोंमें गिर पड़े। माँने आशीर्वाद दिया "हे त्रिभुवनईश श्रीपाल, यह तुम्हारी पटरानी बने।"

१६

यह सुनकर मदनासुन्दरीका सन्देह दूर हो गया। वह समझ गयी कि यह राजकुमार है। यह अच्छा ही हुआ कि मैंने गुप्त बात नहीं पूछी, नहीं तो स्वामी मेरा अपराध मानता। जिन-मन्दिरमें जाकर मैं व्रत ग्रहण करूँगी। जिनशासनमें प्रधान मुनिसे पूछकर मैं सिद्धचक्र-विधान

पहिरिवि चल्लिय कर-कंकणाइँ सुंदरि लेविणु करि कंकणाइँ ।
वायाहर-सिरि-छण-चंदणाइँ लेविणु चल्लिय कर चंदणाइँ ।
सइँ सुंदरि दिंती[1] सरस कुसुम जिणमुणि-जोग्गइँ लइ चलिय कुसुम ।
सुह-कम्महँ कारणु जाणि वेय गिण्हिवि चल्लिय सरसा णिवेय ।
१० णिय-णाह-सणेहारत्तियाइँ लेविणु चल्लिय आरत्तियाइँ ।
चंगी पय-वाल-णरिंद धुवा[2] गिण्हेविणु गमइ दहंग-धुवा ।
जहिं दिण्णें णिरु उत्तम-फलाइँ लेविणु चल्लिय उत्तम-फलाइँ ।
भालयलि णिवेसिउ करंजलीय करि तोवि पसूण करंजलीय ।

घत्ता—जिणहरि जाएविणु जिण पुज्जेविणु पुणु पुज्जिउ आयमु पवरु ।
१५ पुणु जाइवि दरसइ मुणि-पय परसइ साहु समाहिदत्तु सुगुरु ॥१६॥

१७

गुरुभत्ति दए[1]विणु भाव-सुद्धि परमेसरु दिण्णी भाव-वुद्धि ।
पुणु थुवइ सहास-दियंवराइँ [2]पहु तुम्ह पवित्ति दियंवराइँ ।
वसि किय करण-विसउ वय-वसेण [3]तुहुं वसण वसि किय सवसेण ।
रइ पीइ पियंविणि हियय-सल्ल [4]तुम्हहिं पियाणि रतिभेय सल्ल ।
५ जय-जय-जय तुहुँ तव-सिरीवाल दइ णाह भिक्ख[5]वेपइं सिरीवाल ।
[6]जिम तिणइं निरुंदइ सीर-वाहि तिम दइ सिद्धचक्कु हय कुट्ठवाहि ।
भुवि पभवइ पुत्ति सम्मत्तु लेहि अणुवयइं गुणव्वय तिण्णि एहिं ।
पुणु सिक्खा-वय गेण्हहि चयारि पभणेइ मुणिसरु पावहारि ।
सुह सिद्ध-चक्कु सब्भाव लेहि ह्वाहइँ णंदीसरु करेहि ।
१० वसु-दिण आरंभहि सिद्ध-चक्कु वसुदिण पुत्ति जिणहरे थक्कु ।
वसु-दल आराहहि सिद्ध-जंतु असिया-उसाइ तहि परम मंतु ।
तिवलउ सकूडु तुहि पासि फेरि [7]छोडंतउ को ओंकारु केरि
चउ-कोपहँ लिहहि तिसूल अट्ठ परमेसर-पंच-मज्झहं अट्ठ ।
पुणु मंगल गोत्तम सरण चारि[8] जिण-धम्म-पुज्ज किज्जइ वियारि ।
१५ पुणु दल-दल अवलेहहि समग्ग अ क च ट त प य स लिहिं अट्ठ वग्ग ।
दल-अंतरि दंसण-णाणु-चारु चारित्त-चारु तउ लिहहि सारु ।
पुणु चक्किणि जाला-मालिणीय अंवा परमेसरि पोमणीय ।
पुणु लिहियहि तह दह दिसावाल गोमुह जक्खेसर तहि सभाल ।
पुणु वाहिरमंडल माणिभद्द पुणु दह-भुव-माणिउ[9] विंतरिंदु ।
२० वसुदिण पालहि चउ वंभयारि [10]एँइंदिय-पसारु वसि करि कुमारि ।
करि एकचित्त वसु दिणइँ जाउ णिच्चिंतु होवि दिढु[11] करहि भाउ ।

---

१. ग. दितिय सरस कुसुम । २. क. थुवा ।

१७. १. ख ग दइविणवि । २. ग पहु पुरु पलित्ति दियंवसइं । ३. ग तुम्ह अवसण वणिकिय वयवसेण । ४. ग तुम्हहं वियहिय तिय-भेय सल्ल । ५. ग स तुव सिरीपाल । ६. ग पालइ जिम तिणहं किकंदइ सीर-चाहि । ७. क छोडंतह । ८. ग मंगल लोगोत्तम सरण चारि । ९. ग णामिउ । १०. ग इंदिय पसारु मा करि कुमारि । ख रय । ११. ग दिढु ।

करूँगी। स्नानके लिए विविध फूल लेकर तथा केशर, कपूर आदि लेकर वह चली। वह हाथोंमें कंगन पहन कर चली। सरस्वती-लक्ष्मी और पूर्णिमाके समान वह हाथमें चन्दन लेकर चली। अत्यन्त सुन्दरी वह सरस फूल देती हुई; मुनिके योग्य फूल-नैवेद्य लेकर चली। शुभकर्मके लिए शास्त्रोंको जानकर वह सरस नैवेद्य लेकर चली। अपने स्वामीके प्रेममें पगी हुई वह आरती लेकर चली। प्रजापाल राजाकी पुत्री बहुत भली थी। वह दस प्रकारकी धूप लेकर चली। जहाँ देनेसे उत्तम फल होता है, वह वहाँ उत्तम फल लेकर चली। उसने अपनी करांजलि भालतलपर रख ली फिर भी उसकी करांजलिमें फूल थे।

घत्ता—जिनमन्दिरमें जाकर जिनभगवान्‌की पूजाकर फिर उसने आगम-प्रवरकी पूजा की। फिर जाकर उसने मुनिके दर्शन किये और मुनिवर गुरुके पैर छुए।

१७

गुरुभक्तिसे भी भावशुद्धि नहीं होती। भावशुद्धि परमेश्वरकी दी हुई होती है। उसने दिगम्बरोंकी स्तुति की कि "हे स्वामी, आप दिगम्बरोंमें पवित्र हैं। व्रतके बलपर आपने इन्द्रियों और मनको अपने वशमें कर लिया है। अवशको अपने वशमें कर लिया है। जो रति कामिनियोंके हृदयमें शल्य करती है उस रतिका आप भेदन करनेवाले हैं। तपश्रीका पालन करनेवाले आपकी जय हो। हे स्वामी, श्रीपालको भीखमें दे दीजिए। जिस प्रकार किसान तृणोंको नष्ट करता है उसी प्रकार कोढ़-रोगको नष्ट करनेवाला सिद्ध चक्र विधान मुझे दो।" यह सुनकर मुनि बोले—"हे पुत्री, तुम सम्यग्दर्शन ग्रहण करो, अणुव्रत और ये तीन गुणव्रत। फिर चार शिक्षाव्रत ग्रहण करो।" पापका हरण करनेवाले मुनिवर बोले—हे पुत्री, शुभ-सिद्धचक्र विधान सद्भावसे लो। अष्टाह्निका और नन्दीश्वरकी पूजा करो। आठ दिन सिद्धचक्र विधान करो। हे पुत्री! आठ दिन जिन-मन्दिरमें रहो। आठदलवाले सिद्धचक्र मन्त्रकी आराधना करो। उसमें भी 'असिया उसाइ' परम मन्त्रका ध्यान करो। उसके पास सकूट तीन वलय खींचो। ओंकार मन्त्रको कौन छोड़ता है? चार कोनोंमें आठ त्रिशूल लिखो, पाँच परमेष्ठियोंको लिखो। चार मंगलोत्तमकी शरणमें जाना चाहिए। जिनधर्मका विचारकर पूजा करनी चाहिए। फिर एक-एक दलको समग्र भावसे देखना चाहिए। आठ वर्गोंमें अ क च ट त प और स लिखना चाहिए। प्रत्येक दलमें सुन्दर दर्शन, ज्ञान और चरित लिखना चाहिए, उसीमें श्रेष्ठ सुन्दर पंक्तियाँ लिखनी चाहिए। फिर चक्रेश्वरी ज्वाला-मालिनी अम्बा परमेश्वरी और पद्मिनी। फिर दश दिग्पाल लिखे जायें और मालसहित गोमुख और यक्षेश्वर लिखे जायें, फिर बाहर मण्डलमें मणिभद्र लिखे जायें, फिर दसमुख और माणिक व्यन्तरेन्द्र लिखे जायें। आठों दिन ब्रह्मचर्यका पालन किया जाये। हे कुमारी, इन्द्रिय-प्रसारको भी रोका जाये, आठों ही दिन एकचित्त जाप करो। निश्चिन्त होकर अपने भावको दृढ़ करो। इस

आयम-उत्तउ जं तं करेहि संसउ छंडिवि सिरु मणु धरेहि ।
एयहँ विहि करि सिरिवाल-कंति णासिउ वाहिउ अट्ठम-दिणंति ।
ता भत्ति अट्ठ-दिणि कियउ तेण वाढिउ विसेसु दिण-दिण-कमेण ।
२५ पढमट्ठहु किय जायरणु संतु मालइँ णिव-चंपइँ पूजि जंतु
इक-गुणी पूज किय कुँवरि कंत णवमिहिँ दिणि भइ दह-गुणि तुरंत ।
दहमिहिं पुणु किरिया कम्मु साहि सयगुणि कराइय पूज ताहि ।
एयारसि दिणि वहु-फल-फलीय सहस[12]-गुणी पूजा अग्गलीय ।
वारसि दिणि आराहेवि[13] जंतु दस-सहस-गुणी पूजइ तुरंतु ।
३० तेरसि दिणि सुंदरि सिद्ध-चक्कु लक्ख[14]-गुण-पूजिउ णाइ चक्कु[15] ।
चउदसि आराहिवि जंत पाय दहलक्ख-गुणी पूजा कराय ।
पुण्णिउ परिपूरणु सिद्धजंतु कोडिगुणी पूजइ कुँवरि कंतु ।

घत्ता—संपुण्णइँ दिण्णइँ अट्ठमइँ मयरद्धसम-देहु भउ ।
जिणधम्म-पहावेँ सुद्धे भावेँ देसु-दिसंतरि लद्ध-जउ ॥१७॥

१८

जे कोढिय सव दुक्ख सहंतइँ ते[1] सव भले भए जि तुरंतइँ ।
पाव-घोर[2] जे पीडिय आवइ सिद्ध-चक्क-फले भए णिरावइ ।
जहिँ-जहिँ सीस गंधोवउ परसिउ तहिँ-तहिँ देहु कणयमउ दरसिउ ।
पंचकोडि जो अठसठि[3] लक्खइँ णं णाणवइ सहासइ संखइँ ।
५ पंचँ[4]सयइं चुलसी अणु-कमियइँ एवमाइ वाहिउ उवसमियइँ ।
सीसि गंधु णर गिण्हइ आउल सयल[5] अवंती भइय णिराउल ।
दिण-दिण पूज करइ वहु-भंतिय[6] पत्तहु दाणु देइ विहसंतिय ।
दोहिमि कील करंतइँ णिय घरि पयवालु वि तह आयउ अवसरि ।
दोण्णिवि देक्खि कियउ हिट्ठा मुहु ता केण वि लवियउ सवडम्मुहु ।
१० देव म करहि भंति पुण्णाहिउ यहु सो कोढिउ तुव जामायउ ।

घत्ता—णरवइ अणुरंजिउ परियणु रंजिउ घरि-घरि णच्चिहिँ वालिय ।
वद्धाए वज्जहिँ मंगल गिज्जहिँ तूरभेरि अप्फालिय ॥१८॥

१९

[1]संतोसिउ णरवइ मणि खोहिउ मउ जामाइय-वरि अइ मोहिउ ।
भणिउ कामरूव तुहुँ धण्णउ कण्णारयणु लद्धु गुण-पुण्णउ ।
वार-वार जंपइ मणि हरसिउ भोजणु किज्जहि अम्हहं सरिसउ ।
पुणि सुंदरि उच्छंगि[2] लएप्पिणु सिरु चुंविउ वहुभाव करेप्पिणु ।
५ हउं थिउ सुपुत्ती किण्ह-वयणु पइं उज्जोयउ जिह फलिह-रयणु ।

---

१२. ग सहसगुण । १३. ग आराहेइ । १४. क लक्ष । १५. ग सवकु ।

१८. १. ग जे कुट्ठिय । २. ग सह । ३. ग अट्ठसठि । ४. ग सहासइं । ख पंचसइं लघु सीअ णु अमियइं । ५. ग सयल अवंग भंगि णीराउल । ६. ग भत्तिय ।

१९. १. ग ये पंक्तियाँ अधिक हैं । ता भुववइ चिंतइ पुण्याहिय णिच्छउ एह कुमरि हय-वाहय । २. ग उच्छगइ लेविणु ।

प्रकार आगममें कहे अनुसार यन्त्र करो। संशय छोड़कर अपना मन स्थिर करो। तुम इस प्रकार श्रीपालको (नीरोग) करो। आठवें दिन उसकी व्याधि नष्ट हो जायेगी। तब उसने शीघ्र ही अष्टाह्निका की और क्रमसे वह प्रतिदिन उसे बढ़ाती गयी। आठों ही दिन उसने जागरण किया। मालवमें चम्पा नरेशने भी यन्त्रकी पूजा की। कुमारी और कान्तने पहले दिन एकगुनी पूजा की। नवमीके दिन वह पूजा दसगुनी हो गयी। दसवींके दिन क्रिया-कर्म साधकर उन्होंने सौगुनी पूजा करायी। ग्यारसके दिन उसने बहुत फलोंसे फलित हजार गुनी पूजा करायी। बारहवींके दिन यन्त्रकी आराधना कर शीघ्र दस हजार गुनी पूजा करायी। तेरसके दिन सुन्दरी ने सिद्धचक्रकी एक लाख गुनी पूजा करायी। कुँवर और कान्तने समस्त सिद्धचक्र यन्त्रकी एक करोड़ गुनी पूजा करायी।

घत्ता—आठवाँ दिन समाप्त होते ही श्रीपालकी देह कामदेवके समान हो गयी। जिनधर्मके प्रभाव और शुद्धभावसे देश-देशान्तरमें उसने जय प्राप्त की ॥१७॥

१८

कोढ़ी; जो दुःख सहन कर रहे थे, वे सब शीघ्र ठीक हो गये। जो घोर पाप उन्हें पीड़ा पहुँचाते आ रहे थे, सिद्धचक्रके फलसे वे उनसे निरापद हो गये। सिरपर जहाँ-जहाँ गन्धोदकका स्पर्श होता वहाँ-वहाँ शरीर स्वर्णिम हो जाता। पाँच करोड़ अड़सठ लाख निन्यानवे हजार पाँच सौ चौरासी रोगोंकी संख्या बतायी गयी है वे सब व्याधियाँ शान्त हो गयीं। लोग आतुर होकर गन्धोदक ले रहे थे। समूचा अवन्ती-प्रदेश निराकुल हो गया। वह तरह-तरहकी पूजा करती और पात्रोंको हँसती हुई दान करती। इस प्रकार दोनों अपने घरमें तरह-तरहसे क्रीड़ा करने लगे। उस अवसरपर राजा प्रजापाल भी आया। उन दोनोंको इस प्रकार क्रीड़ा करते देखकर वह अपना मुँह नीचा करके रह गया। तब किसीने उसके सम्मुख जाकर कहा—"हे देव! सन्देह मत कीजिए, यह पुण्यात्मा वही तुम्हारा कोढ़ी दामाद है।

घत्ता—राजा प्रसन्न हो उठा और परिजन भी प्रसन्न हुए। घर-घर वालाएँ नाचने लगीं। बधावा बजने लगा, मंगलगीत गाये जाने लगे और तूर्य नगाड़े बज उठे।

१९

राजाका क्षुब्ध मन सन्तुष्ट हो गया। दामाद भी अति मोहित होकर घर गया। उसने कहा—"कामरूप, आप धन्य हैं कि आपने गुणोंसे परिपूर्ण कन्यारत्न प्राप्त किया।" मनमें हर्षित होकर वह बार-बार कहता—"हमारे साथ भोजन करिए।" फिर उसने सुन्दरीको अपनी गोदमें बैठा लिया और सद्भावसे उसका सिर चूम लिया। उसने कहा—"हे पुत्री, हमारा मुँह काला हो

महु अवजसु थिउ भुवणयल पूरि पइँ घालिउ सुंदरि सयलु चूरि ।
हउँ मरिज्जंतु विसमउ महंतु ए कम्में किज्जउ पुणु जियंतु ।
महु वाउं ण पुत्तिय लेइ कोइ [3]हउं चिरु[4] वराउ भउ सयल-लोइ ।
जिह वय-फलिं भउ सिरिवालु सक्कु महु पुणि वि करावहि सिद्ध-चक्कु ।
१० णिउ कहइ धण्णु[5] सो रिसि पवित्तु महु पुणरवि सरणु समाहिगुत्तु ।
[6]पुणु जंपइ किं करमि पुरंदर लेहि-रज्जु पालहि सधरा-धर ।
भणइ वीरु सिरिवालु सयाणउ मालव देस देउ परिराणउ ।
देसमंडल महु अत्थि ण कज्जु वि[7] [8]जो ण रक्खु सो महु यहु रज्जु वि ।
घत्ता—सिरिवालु णरेसरु थुवइ जिणेसरु, अच्छइ सुहु भुंजंतु महि ।
१५ सो [9]समरस-रूवउ भल्लउ हूवउ, महिमंडलि जसु भमिउ तहिं ॥१९॥

२०

भट्टहिँ विरदावलिउ पढिज्जइ गायणेहिँ[1] सरसइँ[2] गाइज्जइ ।
जामायउ तुहुँ णिव-पयवालहो एम भणिवि सलहहि सिरिवालहो ।
इय णिसुणेविणु [3]अइ-विद्धाणउ मयणासुंदरि पुच्छइ राणउ ।
दुव्वलु देहु तुव चिंत[4] ण जाणमि माणहि हिय-इंछिय वर-कामिणि ।
५ भणइं कुमरु तुहुँ देवि अयाणिय अण्णणारि महु हियइ ण माणिय ।
गुरुणा दिण्णउ मइँ मणि भाविउ परदारहो णिवित्त-वउ साहिउ ।
तो वि णाह किं णिय-मणि झंखहि गुज्झ वत्त कि ण अम्हहँ अक्खहि ।
सुणि महु को वि ण जाणइ सुंदरि एयहि गायण गावइ घरि घरि ।
महु मणु वट्टइ देवि सलज्जउ करमि सेव तुव ताय णिलज्जउ ।
१० पिय भणइ देव एहु जुत्तउ महु मणि अच्छइ एहु णिरुत्तउ ।
घत्ता—ता पुच्छइ राणउ मणि विद्दाणउ हउँ जाएमि विएसहिं ।
ता जंपिउ तीए चंदमुहीए मइँ जाएवउ समउ तउ ॥२०॥

२१

जइ एह वत्त राणउ सुणेइ संकलु वल्लिवि विण्णिवि धरेइ ।
ता भणइ कुँवरु अवहियइँ जामि वारह वरिसइ[1] हउं इच्छु थामि ।
भणइ कुँवरि किं मोहु णिवारउ पइँ विणु वारह दिण ण सहारउ ।
वयणु ण पिय अण्णारिसु किव्वउ मइँ पुणु तुम समेउ जाएव्वउ ।
५ चंपाहिउ जंपइ विहसंतउ होइ ण सिद्धि धणिय-सिहु जंतउ
पुणु जंपइ तिय[2] वय-आसत्तिय गइय सीय किम राहव-सेत्तिय ।
सिरिवालें अक्खिउ एउ जुत्तउ तुहुँ मि वियारहि जं जिह वित्तउ ।
इम[3] संवोहिवि सुंदरि वालिय वारह वरिसइँ अवहि विचारिय ।

---

३. ख हउं विरु वारउ भउ सयलु लेइ । ४. ग विरु वारउ । ५. क धम्मु । ६. ग पुणु जंपइ णिउ तुहुं लेहि रज्ज । पालहि सवराधर भमइं सोज्ज । ७. ग कज्जोवि । ८. ग सो विण्णवइ लेउ इउ रज्जवि । ९. ग सोमरस रूवउ ।

२०. १. ग गायणेंहि । २. सरसहि । ३. ग मवि । ४. ग चित ण जायणि ।

२१. १. ग वारह वरिस्सह हउ इच्छु थामि । २. ग पहवय-आसत्तिय । ३. ग सुंदरि इम संवोहि रहाइय ।

गया था, तुमने उसे स्फटिक मणिकी तरह स्वच्छ बना दिया। मेरा अपयश सारे भुवनतलमें फैला हुआ था, हे सुन्दरी, उसे तुमने चूर-चूर कर दिया। मैं मारा गया था। बड़ा विस्मय है, तुमने एकाएक मुझे जीवित कर लिया। हे पुत्री, मेरा नाम कोई नहीं लेता। मैं समस्त लोकमें निरीह दीन हो गया था। जिस व्रतके फलसे श्रीपाल इन्द्रके समान हो गया, वह सिद्धचक्र विधान मुझे भी करा दो। वह मुनि द्वारा कहा गया धर्म मुझे बताइए, मैं भी समाधिगुप्त मुनिकी शरणमें हूँ।" वह फिर बोला— "हे इन्द्र, यह राज्य लो और पर्वतसहित इस धरतीका पालन करो।" तब चतुर श्रीपाल कहता है—"हे देव, आप मालवदेशके राजा हैं, मुझे देश मण्डलसे कोई काम नहीं है, फिर भी इसमेंसे आप जो नहीं रखना चाहते, वह मेरा राज्य है।"

घत्ता—राजा श्रीपालने जिनेश्वरकी स्तुति की और वह सुखपूर्वक धरतीका भोग करने लगा। समान रस और रूपवाला वह अच्छा था। उसका यश धरती मण्डलमें फैल गया।

२०

भाट श्रीपालकी विरदावली पढ़ते। घर-घरमें उसके सम्बन्धमें गीत गाये जाते। "तुम राजा प्रजापालके दामाद हो।" यह कहकर श्रीपालकी प्रशंसा की जाती। यह सुनकर श्रीपाल खिन्न हो उठा। मयनासुन्दरीने राजा श्रीपालसे पूछा—"तुम दुर्बल क्यों हो? मैं तुम्हारी चिन्ता नहीं जानती। कोई मनचाही कामिनी हो तो उसे मान सकते हो।" तब कुमारने कहा—"हे देवी, तुम अजान हो। मैं अपने मनमें दूसरी स्त्रीको नहीं मानता। मेरे मनको वही कन्या अच्छी लगती है जिसे उसका पिता देता है। मैंने परस्त्रीके त्यागका व्रत साधा है।" (मयनासुन्दरी पूछती) है—"हे स्वामी! फिर बताओ तुम्हारे मनमें क्या बात है? अपनी गोपनीय बात मुझे क्यों नहीं बताते?" कुमार कहता है—"हे सुन्दरी, यहाँ तुम्हारा कोई (आदमी) मुझे नहीं जानता। घर-घरमें यही गीत गाया जाता है, यही बात मेरे मनमें है और मैं लज्जित हूँ कि मैं निर्लज्ज तुम्हारे पिताकी सेवा करता हूँ।" तब प्रिय मयनासुन्दरी कहती है—"हे देव, ठीक है। मेरे मनमें भी निश्चय रूपसे यह बात थी।"

घत्ता—मनमें खिन्न श्रीपाल उससे पूछता है—"मैं विदेश जाता हूँ।" इसपर चन्द्रमुखी कहती है कि मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।

२१

वह बोली—"यदि यह बात राजा सुन लेगा तो शंकित होकर क्रोधसे दोनोंको बन्दी बना लेगा।" इसपर कुमार कहता है कि मैं अवधि देकर जाऊँगा, मैं बारह वर्षके लिए जानेका इच्छुक हूँ। कुमारी कहती है—"मैं मोहका किस प्रकार निवारण करूँ? तुम्हारे बिना मेरे लिए बारह दिनका भी सहारा नहीं है। हे प्रिय, तुम दूसरी बात मत करो। मैं तुम्हारे साथ चलूँगी।" (यह सुनकर) चम्पाधिप हँसकर बोला—"पत्नी (धन्या) के साथ जानेमें सिद्धि नहीं होती।" स्त्रीव्रतमें आसक्त मयनासुन्दरी कहती है कि सीता रामके साथ क्यों गयी? श्रीपाल बोला—"यह ठीक है। तुम ही सोचो कि उसका क्या परिणाम हुआ था?" इस प्रकार सुन्दरी बालाको समझा-

दोहा—[४]किम महु हियडइ उत्तरइ पइँ जेही सुकलत्त।
पर पिए विहि विच्छोहु किउ वारह वरिस णिरुत्त॥
घत्ता—ता जंपइ पिय महुरसर महु हियडइ[५] तुहु कंतु।
वारहवरिस ण आवइ तो तउ करउँ महंतु॥२१॥

२२

कीलंती[१] चित्त-साल-[२]मंदिरि देइ सँदेसउ मयणासुंदरि।
जिण वीसरहु णाह संसारहँ धम्मुअहिंसा पर उवयारहँ।
[३]जिण वीसरहु सुअण-आणंदण जिणहँ तिकाल करेवी वंदण।
जिण वीसरहु [४]सुहिअहो मग्गहँ दाण चयारि दिंतु चउ-संघहँ।
५ जिण वीसरहु कुंदप्पह मायरि अंगदेसु णयरी चंपाउरि।
जिण वीसरहि णाह जिण-आणा अंगरक्ख सइँ सातउ राणा।
जिण वीसरहिं अह्मारे सामिय साहसु पुरिसायारु [५]गुसामिय।
जिण वीसरहि कहउँ परमक्खर हियइँ देव पणतीसउ अक्खर।
जिण वीसरहि सुपिय आआउह[६] रायणीति छत्तीसउ आउह।
१० जिण वीसरहि कहउँ जग-दुल्लहँ सामिय कज्जु करेव्वउ वल्लहँ।
जिण वीसरहि कहव जइ अच्छिउ भोलेराअँ पियारे पच्छिउ।
जिण वीसरहु देव णिय-गव्वइँ सिद्ध-चक्क णंदीसर-पव्वइँ।
जिण वीसरहु सुभोय पुरंदर वारह[८] वरिसइँ आगम सुंदर।
वयणु एक्कु पिय कहउँ ससासिय जिण वीसरहु णाह हउं दासिय।
१५ घत्ता—जइ णाह विसारहो तउ णिरु मारहो जइ [९]आगमपहपडिचलणु।
[१०]जइ आइ ण पारहो कहव सहारहो तउ अम्हहँ केवलु मरणु॥२२॥

२३

एम सुणेवि[१] णिग्गमिउ धाइवि गहिउण अंचल मुद्ध
ता कुविऊण पयंपइ[२] मुंच[३] पिए ण[४] मे[५]अवसउण। (गाहा)
हो हो पवासगामिय वत्थं धरिऊण कुप्पियं कीस
पठमं ची[५] को मुक्कमि णिय पाण किं अंचल तुज्झु।
५ कर मुत्तिय जातोऽसि वलयादिह[६] किमद्भुतं
हृदयाजदि निर्यासि पौरुसं गणयाम्यहं। (दोहउ)
भणइ वियक्खणु पिय णिसुणहि वल्लहि[७] पराण।
वाह भास जउ विचलइ सिद्ध-चक्क-वय-आण।

वारह वरिसइ अवहि विहाइय। ४. ग प्रति में यह दोहा घत्ताके रूपमें प्रयुक्त है। ५. ग मेहु हियडइं तुहुंकरु।

२२. १. ग कीलंति। २. ग चित्तसालिय रइ मंदिरि। ३. ग प्रतिमें निषेधके अर्थमें 'जिण' की जगह 'जण' है। ४. ग सुहाइय मग्गहं। ५. ग गुसामिय। ६. ग अलाउह। ७. ग रज्ज। ८. ग वारह वरिसहं गमणु वि सुंदरु। ९. ग आगमपह पडिचलणु। १०. ग जइ आणइं पालहु कहव सहारहु।

२३. १. ग भणिवि। २. ग पयंपए। ३. ग मुच्चसु। ४. ग कुणसु मासवणं। ५. ग चिय। ६. ग वाला-दिह। ७. ग मुहि वल्लहिय।

बुझाकर और बारह वर्षकी अवधिका विचारकर वह बोला कि क्या तुम जैसी स्त्री मेरे हृदयसे उतर सकती है ? फिर भी हे प्रिये ! विधाताने बारह वर्षका निश्चय ही विछोह दिया है।"

घत्ता—तब सुन्दर स्वरमें वह बोली—"हे स्वामी, तुम मेरे हृदयमें हो। यदि तुम बारह वर्षमें लौटकर नहीं आये, तो मैं महान् तप ग्रहण करूँगी ॥२१॥

२२

घरकी चित्रशालामें क्रीड़ा करते हुए मदनासुन्दरी प्रियको सन्देश देती है—"हे स्वामी, संसारको नहीं भूलना। अहिंसा धर्म और पर-उपकारको नहीं भूलना। स्वजनोंको आनन्द देना नहीं भूलना। जिन भगवान्की तीन काल वन्दना करना। शुभ मार्गको नहीं भूलना। चतुर्विध संघको चार प्रकारका दान देना। कुन्दप्रभा माँको मत भूलना। अंगदेश और चम्पापुरी नगरीको नहीं भूलना। हे स्वामी ! जिनकी आज्ञाको नहीं भूलना। अंगरक्षक सात सौ रानाओंको नहीं भूलना। मेरे स्वामी, आप साहस और पुरुषार्थको नहीं भूलना। मैं पैंतीस अक्षरोंका परममन्त्र कहती हूँ, यह मत भूलना। अपने प्रिय आयुधोंको मत भूलना। मैं कहती हूँ स्वामी मत भूलना जगमें दुर्लभ प्रिय लोगोंका काम करना। मत भूलना जो कुछ कहा है, बादमें मत भूलना हे मेरे प्यारे भोले राजा, हे देव, अपने गर्वको मत भूलना। सिद्धचक्रविधान और नन्दीश्वर पर्वको नहीं भूलना। भोगने योग्य इन्द्रके पदको मत भूलना और बारह वर्षमें अपने सुन्दर आनेको मत भूलना। थोड़ेमें हे प्रिय, एक बात और कहती हूँ, हे स्वामी, मुझ दासीको मत भूलना।"

घत्ता—"हे स्वामी, यदि तुमने भुला दिया और तुम आनेसे मुकर गये तो तुम मुझे मार डालोगे। यदि तुम नहीं आ सके और सहारा नहीं दिया तो हमारे लिए केवल मरण निश्चित है।"

२३

यह सुनकर वह कुमार चला और दौड़कर मुग्धाने उसका आँचल पकड़ लिया। तब क्रुद्ध होकर उसने कहा—"हे प्रिये, छोड़ो मुझे अपशकुन मत करो।" (गाहा)।

उसने कहा—"ओ ! प्रवासपर जानेवाले, वस्त्र पकड़नेपर तुम क्रुद्ध क्यों होते हो ? पहले किसे छोड़ूँ, हे प्रिय, अपने प्राण कि तुम्हारा आँचल ?"

इसमें अचरजकी क्या बात है कि तुम हाथ छुड़ाकर जबर्दस्ती जा रहे हो ? हृदयसे यदि निकल जाओ तब तुम्हारा पौरुष मैं जानूँ। वह विलक्षण कहता है—'हे प्रिय प्राणवल्लभे, तुम सुनो यदि मैं अपने व्रत और वचनसे विचलित होता हूँ तो मुझे सिद्धचक्र व्रतकी शपथ है।...

घत्ता—पुणु जणणि समंदइ चलणइं वंदइ अंवि विएसहो गच्छमि ।
सुण्हा-छलु किव्वइ जिणु पणविज्जइ जामि माइ आगच्छमि ॥२३॥

२४

करुणु करंती माय णिवारिउ पइं पेक्खिवि [1]सुव हियउ सहारिउ ।
जाम वच्छ तुहुं णयणहिं पेच्छमि [2]णिव-अरिदमणहो सोउ ण लेखमि ।
मइँ उरु धरिउ आस करेप्पिणु जाहि वच्छ णिरास करेप्पिणु ।
धीरी सामिणी होहि ण कायरि दइ आएसु जामि जिम मायरि ।
५ भणइ माइ [3]वीससहि मा णंदण [4]अहि आसी-विस आणा खंडण ।
मा वीससहि पुत्त विस विसहर कउल-पिसाय-जलणजल जलहर ।
[5]अट्ठ-वट्ठ-कक्कस कठोहरहं दंती-णहि-सिंगी दाढालहं ।
मा वीससहि कुपुरिस णिलक्खण [6]मइर-पियाण अभक्खण-भक्खण ।
मा वीससहि वसण-आसत्तिय अलिय[7] जुवाण णारि विड-रत्तिय
१० मा वीससहि पुत्त परएसह साइणि-डाइणि-कुट्टणि-वेसह ।
मा वीससहि सुयण णिद्दालस लोही-आसण[8] कोही-माणुस ।
मा वीससहि पुत्त खल-दुट्ठहँ पित्तिय वीरदवण पाविट्ठहँ ।
घत्ता—डंभी[9] पाखंडी भवहिं तिदंडी, आण आहि सुय[10] मेरिय ।
एयहँ ण पतिव्वउ कहिउ ण किव्वउ घाड-पहाड-वसेरिय ॥२४॥

२५

सिद्धासीस दिण्ण सिरिवालहो किउ भालयलि तिलउ सुउमालहो ।
दहि-दूवक्खय मत्थय[1] देविणु पुणु आरत्तिउ उत्तारेप्पिणु ।
दिण्ण असीस पुत्त[2] एउ पावहि चाउरंगु वलु लेविणु आवहि ।
माय-घरिणी विण्णि वि संवोहिय अंगरक्ख सयसत्त विवोहिय ।
५ साहस-कोडि-भडहँ आसंघिवि गउ पायार-सत्त णह[3] लंघिवि ।
णाणा-देस-णयर विहरंतउ सरि-सरवर-पव्वय लंघतउ ।
गउ भडु वच्छ-णयर सुविसालउ[4] धवलु सेठि जहिं अवगुण-आलउ ।
सत्थवाह परदीवहँ चलियउ [5]पोहणाहं सयपंचहं मिलियउ ।
वोइत्थ-सय-सायर-तडे मेल्लिय[6] चलइ वत्तीस-लक्खण-पय पेल्लिय ।
१० वणि समूह अवलोयणे धाविउ जोयंतहँ सिरिवालु वि पाविउ ।[7]
वणह मज्झि सुत्तउ परियाणिउ [8]छाया गमणि उत्तम जाणिउ ।
आपु आपु कहुँ धरि धरि ताणहिं कोडि भडो वि ण वणिवर जाणहिं ।
कोलाहलु पहणु जणु खुहियउ कहहि कोइ परएसिउ गहियउ ।[9]

---

८. ग प्रतिमें [illegible]वहिः छन्दोंको अलग कड़वक नहीं माना गया । इनके वाद वस्तुतः तेईसवाँ कड़वक प्रारम्भ हो [illegible] : उसमें एक कड़वक कम है ।

२४. १. ग कीलंति । २. वउ साहारिउ । २. ग णिव । ३. ग वीस सहु ण णंदण । ४. ग अहिय-असेवय-आणा खंडणे सुहए । ५. ग अट्ठवट्ट कक्कस लंवा ठोरहं । ६. ग मयर । ७. ग अलिय जुवार णारि विडरत्तिय । ८. ग आलस । ९. ग डिंभी । १०. ग सुव ।

२५. १. ग माये । २. ग घणु पुत्तय पावहि । ३. ग नह । ४. ग वेसालउ । ५. ग पोहणाहं सय संवखहि मिलयउ । ६. ग घोलिय । ७. ग पराविउ । ८. ग छायागमणें । ९. ग मिलियउ ।

घत्ता—धीरे-धीरे वह माँके चरणोंकी वन्दना करता है और कहता है—"हे माँ ! मैं विदेश जाना चाहता हूँ। बहूसे स्नेह करना। जिन भगवान्‌को प्रणाम करना। विदेश जाता हूँ माँ, फिर वापस आऊँगा।" ॥२३॥

२४

करुण (विलाप) करती हुई माँने उसे मना किया। "हे पुत्र, तुम्हें देखनेसे हृदयको ढाढ़स मिलता है। जब मैं तुम्हें अपनी आँखोंसे देखती हूँ तब अपने (पति) अरिदमनके शोकको कुछ नहीं समझती। आशाके बलपर ही मैं अपने हृदयको धारण कर सकी। हे पुत्र, तुम मुझे निराश करके जाओ।" पुत्रने कहा—"हे स्वामिनी, धीरज धारण करो, कायर मत बनो। माँ आदेश दो जिससे मैं जाऊँ।" माँ कहती है—"हे पुत्र, विश्वास मत करना, विषैले दाँतवाले साँपों तथा आदेशका खण्डन करनेवालों का। हे पुत्र, विष और विषधरका विश्वास मत करना। कौल, पिशाच, आग और पानीका विश्वास नहीं करना। हे पुत्र, ठग और चोरोंका विश्वास मत करना। अट्ठ-वट्ठ ? लवणकठोर ? लोगोंका विश्वास नहीं करना। दाँत, नख, सींग, दाढ़वालों (पशुओं) का विश्वास नहीं करना। मदिरा पीनेवालों और अभक्ष्य भक्षण करनेवालों और व्यसनोंमें आसक्त लोगोंका विश्वास मत करना। झूठे युवक और गुण्डोंमें आसक्त नारीका विश्वास नहीं करना। हे पुत्र, परदेशीका विश्वास नहीं करना। साइन-डाइन, कुट्टनी और वेश्याका विश्वास नहीं करना। निद्रालसी सुजनका विश्वास मत करना। आसनके लोभी और क्रोधी मनुष्यका विश्वास मत करना। हे पुत्र, खल और दुष्टोंका विश्वास नहीं करना और अपने पापी चाचा वीरदवणका भी विश्वास मत करना।

घत्ता—दण्डी, पाखण्डी और त्रिदण्डीका विश्वास नहीं करना। यह मेरी आज्ञा है। इनका विश्वास नहीं करना चाहिए। इनका कहा नहीं करना चाहिए। घाट पहाड़में बसनेवालोंका विश्वास नहीं करना चाहिए।"

२५

श्रीपालको उसने सिद्ध आशीर्वाद दिया। उसके सुकुमार भालपर तिलक किया। माथेपर दही, दूध और अक्षत देकर उसने फिर आरती उतारी और आशीर्वाद दिया—"हे पुत्र,तुम सब कुछ पाना—चतुरंग सेना लेकर आना। तब उसने माँ और पत्नी दोनों नारियोंको सम्बोधित किया। सात सौ अंगरक्षकोंको भी समझाया। करोड़ योद्धाओंका साहस अपनेमें इकट्ठा कर सातों परकोटोंको लाँघता हुआ वह चला गया। वह योद्धा विशाल वत्सनगर पहुँचा, जहाँ अवगुणोंका घर धवलसेठ था। सार्थवाह धवलसेठ दूसरे द्वीपको जा रहा था। उसके पाँच सौ जहाज सम्मिलित थे। जहाज सागर तटपर जाम हो गये, जो बत्तीस लक्षणोंसे युक्त किसी मनुष्यके प्रेरित करनेपर ही चल सकते थे। वणिक्-समूह (उस आदमीको) देखनेके लिए दौड़ा। ढूँढ़ते हुए उन्होंने श्रीपालको पा लिया। छाया नहीं पड़नेसे उन्होंने उसे उत्तम समझ लिया। वे अपने आप कहने लगे कि उसे पकड़ो, पकड़ो! वे वणिक्वर उस कोटिभडको भी नहीं समझ सके। बाजारमें कोलाहल होने लगा। लोग क्षुब्ध हो उठे। उन्होंने कहा कि कोई परदेशी पकड़ा गया है।

घत्ता—जो जिणपय-भत्तउ धम्मासत्तउ कोडिवीरु अभउ जोवि रणे।
१५ सुर-कर-करि-वाहउ जयसिरि-लाहउ केम गहिज्जइ इयर जणे ॥२५॥

२६

आणिवि दंसिउ जह सत्थ-वाहि पहु आणिउ लक्खणवंतु चाहि।
वद्धाइं[1] वज्जिय विडहरेहिं[2] माणियउ वीरु पहु आयरेहिं[3]।
वर-कुसुमहिं पुज्जिउ उत्तमंगु हरि-चंदण[4]-चच्चिउ वीर अंगु।
आराहिउ करि[5] पहु सो वियारु जिम दुत्तरु तरहिं[6] समुद्द-पारु।
५ सय-पंच-परोहण रहियतीर चालावहि ते वीराहि-वीर।
विहसेविणु जंपइ वीरु ताहि चलु सायर-कूलहँ सत्थवाहि।
ता चल्लिय वणिवर तहिँ तुरंत पडुपडह-भेरि-काहल[7] रसंत।
जाइवि पुज्जिय जल-देवयाइँ पडवाई-पोहण-वावसाइँ।
पय परसइ पोहण वीरु जाम [8]सयलवि तरेवि णिग्गमहि ताम।
१० ता सेट्ठि पयंपइ तह तुरंतु तुहुँ वीरु महारउ धम्म-पुत्तु।
मग्गहि जीवलु जो फुरइ तोहिं दह-सहस-तणउ दइ सेट्ठि मोहि।
दह-सहस वीरहू जिणहि तेम तें कहिउ सीहु गय घडह जेम।
सुणि सेट्ठि पयंपमि तुज्झु अज्जु महु जीवलु[9] दिज्जहि कियए[10] कज्जु।
घत्ता—पंचसयइँ जल-जाणइँ रयण-समाणइँ सायर-मज्झि सरंति किह।
१५ णं णहयलि मिलियइँ उडुयण चलियइँ ससि-रवि-केउ सहंति जिह ॥२६॥

२७

मुग्गर[1] काढेविणु णु एसारिय[2] वाउ सपडवाई संचारिय[3]।
मज्झि वंसु रोपियउ उकिट्ठउ तहि चडेवि मरजिया वइट्ठउ।
लोहढोपरी[4] मत्थइँ अच्छइ णत-भेरुंड चड-उलई[5] गच्छइ।
गह-गहाइ चालहि वाणिज्जइं रयण-दीउ उप्परहँ मणोज्जइं।
५ चलिउ सत्थसहु जाणारूढउ जणु[6] कल्लोलत्तरंगह खद्धउ।
मरुवसेण चालंति परोहण लक्खु चोरु तहि धाविउ गोहण।[7]
एक्कमेक्क जुझंति परोप्परु हक्क दिंति मारंतिय[8] मरु-मरु।
धवलु सेट्ठि संगरि सण्णद्धउ दहसहसहिँ पाइक्कहिँ सद्धउ।
धाणुक्किय चालिय अगिवाणहँ[9] तीरी-तोमर-सर-संधाणहँ[10]।
१० वंधिय अंगरक्ख सण्णाहहँ [11]ट्टाट्टर सीस देवि सुद्दाहहँ।
असिवर-छुरिय-फरिय चालंतहँ[12] धाइय मुग्गर-कोंत-गुणंतहँ।[13]
पुणु मरहट्ठ जाण उट्ठतहँ सव्वल-सेल हत्थ-फरकुंतहँ।

---

२६. १. ग वढावा। २. ग विडहरेहिं। ३. ग आयरेहिं। ४. ग चंदण। ५. ग कहि। ६. ग तरहिं ७. ग काहलई दित। ८. ग सयल वि महि छुट्टिवि चलिय ताम। ९. ग जिम्वलु। १०. ग कियइ।

२७. १. ग कड्ढेवि। २. ग संचारिय। ३. ग ऐसारिय। ४. ग लोहटोपरी मत्थे अच्छइं। ५. ग चिडउ गल। ६. ग जल कल्लोल तरंगह छूटउ। ७. ग मोहण। ८. ग मारंतिय। ९. ग अगिवाणिय। १०. ग संचाणिय। ११. ग टाटर सीसि देवि उछातहं। १२. ग च चालंतइं। १३. ग गुणंतइं।
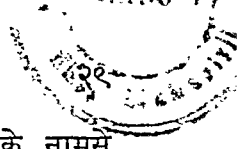
घत्ता—जो जिनवरका भक्त और धर्ममें आसक्त है, जो युद्धमें कोटिभड वीरके नामसे प्रसिद्ध हुआ। जिसके हाथ ऐरावतकी सूँडकी तरह हैं, जिसे जयश्रीका लाभ है, वह दूसरोंके द्वारा क्या पकड़ा जा सकता हे ?

२६

उन्होंने उसे लाकर वहाँ दिखाया जहाँ सार्थवाह था और कहा कि हे प्रभु ! लक्षणोंसे युक्त (वत्तीस लक्षणोंवाला) व्यक्ति ला दिया है, देख लीजिए। विटघरमें बधाई वजने लगी। राजाने उस वीरको आदरसे बहुत माना। उत्तम फूलोंसे उसके उत्तमांग (सिर) की पूजा की। उस वीरके शरीरका लाल चन्दनसे लेप किया। राजाने उसकी आराधना की। हे स्वामी ! ऐसा विचार कीजिए जिससे यह दुस्तर समुद्र हमलोग पार कर सकें। ये पाँच सौ जहाज समुद्रके तटपर जाम हो गये हैं। हे वीरोंके वीर, आप इन्हें चला दें। उस वीरने हँसकर उससे कहा—"हे सार्थवाह, समुद्रके किनारे चलिए।" तब वह वणिक्वर शीघ्र ही वहाँ गया। नगाड़े, भेरियाँ और काहल बज उठे। जाकर उन्होंने जलदेवताकी पूजा की। पटवादियों (पालवालों) ने जहाज प्रेरित किये। जैसे ही वीरने पैरसे जहाज छुए वैसे ही सब तिरकर उस पार पहुँच गये। तब सेठने तुरन्त उससे कहा—"हे वीर, तुम मेरे धर्मपुत्र हो, तुम्हें जितना धन माँगना हो माँग लो।" उसने कहा—"हे सेठ, दस हजार दो।" तब उन्होंने कहा—"दस हजार वीरोंको तुम उसी प्रकार जीत लेते हो जिस प्रकार गजघटाको सिंह।" तब कुमारने कहा—"हे सेठ सुनो, मैं तुमसे आज कहता हूँ, मुझे धन तब देना जब मैं तुम्हारा काम करूँ।

घत्ता—रत्नोंके समान पाँच सौ जलयान समुद्रके बीचमें इस प्रकार चल रहे थे मानो आकाशतलमें चन्द्र, सूर्य और केतुके साथ मिलकर नक्षत्रगण चल रहे हों ॥२६॥

२७

लंगर उठाकर जहाजोंको चला दिया गया। पटवादियोंने हवा तेज की। बीचमें उत्तम बाँस रोप दिया गया। मरजिया उसपर चढ़कर बैठ गया। लोहेकी टोपी उसके सिरपर थी। नत-भेरुंड और गौरैयाका समूह भी उसके साथ चल रहा था। सुन्दर वाणिज्यके लिए वे प्रसन्न होकर चले। यानोंपर बैठे हुए सार्थवाह रत्नद्वीपके ऊपरसे यात्रा कर रहा था। लोग हिलोरों और तरंगोंसे क्षुब्ध थे। हवाके वेगसे जहाज चल रहे थे। तब लाख चोर उसके पीछे लग गये। वे एक-दूसरेसे युद्ध करने लगे। 'मारो ! मारो !!' की हाँक देकर, एक दूसरेको मारने लगे। धवलसेठ भी युद्धके लिए तैयार हो गया। वह दस हजार योद्धाओंसे लैस था। धनुषधारी अग्निवाण चलाने लगे। तीर, तोमर और सरोंका सन्धान किया जाने लगा। कवच पहने अंगरक्षकोंको बाँध दिया गया।...? उत्तम तलवारें, छुरे और फरसे चलाते हुए वे मुद्गर और कोंतको घुमाते हुए दौड़े। मराठा लोग भी सब्बल, सेल और हाथमें फरकुन्त (फरसे) लेकर उठे।

घत्ता—जाएप्पिणु वव्वर समर-धुरंधर धवलु सेट्ठि रणि[१४] अब्भडिउ ।
अण्णेत्तहिँ संगरु कय-रण-डंवरु जाइवि सत्तु[१५] उवरि पडिउ ॥२७॥

२८

रणे[१] संगामु करंता[२] दिट्ठिहि चोर-उलइँ जित्तइँ सह सेट्ठिहिं ।
रहसारूढउ पुट्ठिहि लग्गउ वाहुडि[३] चोरहँ धरिउ अभग्गउ ।
गहिउ सेट्ठि पाइक्क पलाणा गूजर मरहट्ठय विद्दाणा ।[४]
जाइवि कहिउ तेहिं सिरिवालहँ सेठि ण अग्गाहु[५] वव्वर चोरहं ।
५ इय आयण्णिवि कोवाऊरिउ धाइय हाक्क दिंतु रण-सूरउ ।
वाम-करग्गें वारणु तोलिउ दाहिणेण असिवरु संचालिउ ।[६]
जाइवि लक्खु-चोर हक्कारइ जिह[७] गयवर वलि-हरिणा संकइ ।
सीह-णादु भड-कुँवर कीयउ सवर-समूहु जंतु जणु भीयउ ।
पडिउ भगाणउ सव्वहँ चोरहँ लइउ ललाइ वहिउ जिम भोरहँ ।
१० कोडि-भडहँ वहु पउरिस[८] धाविउ [९]उपरा उपरि सयल वंधाविउ

घत्ता—वव्वर समर-विथक्कइँ रणहँ चमक्कइ, वंधिवि सुहडहँ धरिय खणे ।
रे रे पाविट्ठहो समरि णिट्ठहो, महु पहु वंधिवि लेहु रणे ॥२८॥

२९

सेट्ठिहि वंध कुमारु विछोडइ कम्म-पयडि जिम केवलि तोडइ ।
वंधिउ तक्कर-गणु भइ कंपइ विडयणु तुट्ठउ रहसें जंपइ ।
जे रक्खिय अट्ठाइं सो णंदउ पुत्त-कलत्त-सहिउ अहिणंदउ ।
सह कुसमाल[१] धरेविणु आणिय ताहँ वत्थु गिण्हेवि अपमाणिय ।[२]
५ वणिजारिय-सिरु सेस भरंतह अइहव-मंगल चारु करंतह[३] ।
घरि घरि तोरण-वंदण-मालइँ[४] कंचण-कलसइँ मालइ-मालइँ ।
णव-णट्टइँ गेयइँ गिज्जंतइँ मंदल-पडह-संख वायंतइँ ।
धवलु सेठि सिरिवालु वि धण्णउ पुण्णवंतु[५] गुण-गण-संपुण्णउ ।
वव्वर[६] समरथेण सह आणिय वहु-भोयण-वत्थहिं सम्माणिय ।
१० करिवि तिलउ, सिरि दूवय घल्लिय पुणु सिरिवाल सव्व मोकल्लिय
भणिउ तेहि तुहुँ सामि महारउ पेसणु देहि देव गरुयारउ ।
जणणि जणणु जे जणिय सुघग्गउ अम्हहँ जीव-दाणु पइँ दिण्णउ ।
किम हम उरिण होहिँ तुव सामिय रिण-मुक्के करि मैंगल-गामिय ।

घत्ता—गय तुरय सरोहण सत्त-परोहण मणि-माणिक्क-पवालहिँ ।
१५ अवर जि दीवंतर रयण णिरंतर ते ढोइय सिरिवालहिं ॥२९॥

---

१४. ग अब्भिडिउ । १५. ग सत्थ ।

२८. १. ग रण । २. ग करंतहं । ३. ग वाहुडि चोरहं धणुहरु सज्जिउ । ख वाहुडि चोरह छडिउ अभग्गउ । ४. ग विण्णाणा । ५. ग गाहउ । ६. ग संभालिउ । ७. ग जिम गय जूहु हरिहि णउ संक्कर । ८. ग पउरिस । ९. ग उपरापरु सयल वि वंधारिय ।

२९. १ क सह कुसवाल । २. क अपवाणिय । ३. ग करंतइं । ४. क वालइं । ५. ग वहुगुण । ६. ग वव्वर समर धरेसह आणिय ।

घत्ता—धवलसेठ भी जाकर धुरन्धर बव्वरोंसे युद्धमें भिड़ गया। दूसरी जगह भी संग्राम हो रहा था। युद्धका आडम्बर करनेवाला वह शत्रुके बीच कूद पड़ा ॥२७॥

२८

युद्धमें लड़नेवाले चोर-कुलको सेठने अपनी दृष्टिसे जीत लिया। हर्षसे भरा हुआ वह उनका पीछा करने लगा। बादमें चोरोंने उसे साबत पकड़ लिया। सेठके पकड़े जानेपर पैदल सिपाही भाग खड़े हुए। गूजर और मराठा नष्ट हो गये। उन्होंने जाकर श्रीपालसे कहा कि धवलसेठको चोरोंने पकड़ लिया है। यह सुनकर वह क्रोधसे भर उठा और युद्धवीर वह, हकारा देकर दौड़ा। बायें हाथमें उसने ढाल ले ली और दायें हाथसे उसने अपनी श्रेष्ठ तलवार चलायी। जाकर उसने लाखचोरको हाँक दी। जिस प्रकार बड़े-बड़े हाथी सिंहसे डरते हैं, उसी प्रकार भटकुमारने सिंहनाद किया। उससे सबर-समूह मानो डरकर भाग खड़ा हुआ। सब चोरोंमें भगदड़ मच गयी। [इस पंक्तिका अर्थ स्पष्ट नहीं है] कोटिभड बहुत पौरुषसे दौड़ा और तटके ऊपर सबको बँधवा दिया।

घत्ता—बव्वर युद्धमें थक गये। रणमें वे चौंक गये। एक क्षणमें सुभटोंको बाँधकर रख लिया गया। कुमार बोला—"हे युद्धमें पराजित पापियो, तुम मेरे स्वामीको युद्धमें बन्दी बनाकर ले जाना चाहते हो?" ॥२८॥

२९

कुमारने सेठके बन्धन खोल दिये। उसी प्रकार जिस प्रकार जिन भगवान् कर्म प्रकृतियोंको तोड़ देते हैं। बन्दी चोरोंका गिरोह डरसे काँप उठा। विडजन सन्तुष्ट होकर खुशीमें कहते हैं कि जिसने अष्टाह्निका की है वह फले फूले। पुत्र-कलत्र सहित उसका अभिनन्दन किया। चोरों सहित उन्हें वे पकड़कर ले आये और उनकी वस्तुएँ लेकर उन्हें अपमानित किया। एक दूसरेको सिरसे भरते हुए वणिक् अत्यन्त उत्सव और सुन्दर मंगल करने लगे। घर-घर तोरण और वन्दनवार सजा दिये गये। स्वर्णकलश और मालतीकी मालाएँ वहाँ थीं। नव नृत्य और गीत होने लगे। मृदंग, नगाड़ा और शंख बज उठे। धवलसेठ और श्रीपाल धन्य हैं। पुण्यवान् और गुणगणसे परिपूर्ण है। समर्थ वरके साथ उसे लाये। बहुत भोजन और वस्त्रोंसे उसका सम्मान किया। तिलककर सिरपर दूब रखी। फिर श्रीपालने सबको छोड़ दिया। उस (बव्वर) ने भी कहा—"आप हमारे स्वामी हैं। हे देव, कोई बड़ी आज्ञा दीजिए। जिस माता-पिताने आपको जन्म दिया वे धन्य हैं। आपने हमें जीवन-दान दिया। हे स्वामी, हम आपसे कैसे उऋण हो सकते हैं। हे कल्याणगामी, हमें ऋणसे मुक्त कीजिए।

घत्ता—गज, अश्व आदि और शोभायुक्त मणि-माणिक्यों और मूँगोंसे भरे सात जहाज और भी जो द्वीप-द्वीपान्तरोंके रत्न थे वे उन्होंने श्रीपालको अर्पित कर दिये ॥२९॥

३०

णित्तु[1] खंभु मणिभूसणु अंवरु रयणहँ जडिउ छत्तु[2] धणुडंवरु ।
दिण्णु हिरण्णुवण्णु धण-धण्णइँ सयइँ सत्त दासी गुण-पुण्णइँ ।
वब्वर भणइ सेट्ठि इम किज्जइ अम्हहँ वक्खरु[3] सादिवि लिज्जइ ।
मुत्ताहल-सिरि-खंड-पवालइँ कप्पूरइँ-लवंग-कंक्कोलइँ ।
५ एय-माइ वहु रयणहँ भरियइँ लेविणु वत्थ परोहण चलियइँ ।
रयण-दीवि लग्गइँ जल-जाणइँ पोमराय-मणि तहिँ अपमाणइँ ।
खंचिवि हंसदीवि पोहणु णिउ सुद्ध-फलिहमणि णं विहिणा किउ ।
जेहि दीव अट्ठारहं क्खाणिय[4] सार टार गय कणय-पहाणिय ।[5]
[6]लाटहँ पाट जिवाइ कत्थूरिय कुंकुम-हरियंदण-कप्पूरिय ।
१० [7]कूव-विहरि अम्माउ सुरंगइँ धवल-हरइँ जिणहर उत्तंगइँ ।
रहिय परोहणाइँ तहो अग्गइँ [8]वणिजारेँ सह भोयण लग्गइँ ।
घत्ता—पोहण-सह थक्कइ चलिवि ण सक्कइं दीउ विउलु घण गज्जइ ।
धम्मु वि दह-लक्खणु णाण-वियक्खणु सयलविवणि आवज्जइ ॥३०॥

३१

विडहर रहि थक्के हंस दीवि णियरुइ सविसेसिय हंसदीवि ।
तहिँ विज्जाहर-वइ कणयकेउ सोहलय-सिहर जहि कणय-केउ ।
रायंगु मुणइ णवि सो अणंगु जसु विग्गहिँ णिग्गहियउ अणंगु ।
[1]जो पाया किसि-रक्खणु किसाणु [2]जो वइरि-सुक्खु-भूरुह किसाणु ।
५ जस वाय-विरुद्धउ जो वि राउ वहुविह णिवाल सो खहवि जाउ ।
जो दीण-दयावण-कप्प-विडउ जो पाव-कला-णिहि-पिहुण-विडउ ।
जो असहणं दरसय पलइ वाहु जो अतुल तुलइ सुपयंड-वाहु ।
जो सेयवंतु वहु-सुक्ख-धम्मु अहणिसु चिंतइ दय-सुक्ख-धम्मु ।
पणवासर[3] इव मंती पहाण समरंगणि खंडिय[4] जेहिँ पहाण ।
१० घत्ता—गेहिणि पिय-वल्लहँ परियण-दुल्लहँ रइ-रस रुव-सुरंगी ।
दिट्ठिहि जण-जोवइ पुणु अवलोवइ णं भयभीय-कुरंगी ॥३१॥

३२

गय-गामिणि भामिणि कणयमाल सुपियारी जिह मणि-कणय-माल ।
महुरालावणि[1] जिह कोइलाइँ तहि सरिसु जुवइ णहि कोइलाइँ ।
गुरु-पिय-पय वंदइ सा सईय भत्तिय आहंडलि जिह सईय ।
वे सुय तहि जाया गुण-धणाइँ उवयारेँ णं सावण-घणाइँ ।

---

३०. १. क ग णित्तु खंभुणिब्भूसणु अंवरं । २. ख तत्तु । ३. ग साटिवि । ४. ग खानिवि । ५. ग पहाणिवि । ६. ग लाटह पाटह जिवाइ कत्थूरियं । ७. ख कूव विहारइं णरइ सुरंगइ । ग धूव विहरि अमराउलु गंवइ । ८. ग वणिवराय सह ।

३१. १. क जो कव्वडीय अपणीय राउ । २. क जो वासु किसि रक्खणु किसाणु । ग जो पयासु किसि रक्खणु पहाणु । ३. ग जो वइरि णिहणु-भूरुह किसाणु । ४. ग पणवासर इव मती पहाण । ५. क खंडी ।

३२. १. ग महुरक्खर णिज्जिय कोइलाइं ।

३०

उचित रेशमी वस्त्र, मणियोंके आभूषण अम्बर (?) रत्नोंसे जड़ा हुआ विस्तृत छत्र, सोना-चाँदी, धनधान्य, गुणोंसे परिपूर्ण सात सौ दासियाँ उसे दीं। बब्बर बोला—"सेठ जी, ऐसा करिए कि अनुग्रह कर हम लोगोंकी वाखर ले लीजिए। मोती, श्रीखण्ड, मूंगा, कपूर, लौंग और कंकोल आदि बहुतसे रत्न उसमें भरे हुए हैं। वस्तुएँ लेकर जहाज वहाँसे चल दिये और जलयान रत्नद्वीपसे जा लगे। उसमें अनन्त पद्मराग मणि थे। वहाँ से चलकर वे लोग हंसद्वीप पहुँचे, जिसे विधाताने शुद्ध स्फटिक मणियोंसे बनाया था। जिस द्वीपमें अट्ठारह खदानें हैं। सार (धन), टार (अश्व, टट्टू), गय (हाथी) और स्वर्णकी खदानें जिनमें प्रमुख हैं। लाट, पाट, जीवादि, कस्तूरी, कुंकुम, हरिचन्दन और कपूरकी खदानें उसमें हैं। जिसमें अमित कुँए और विहार (स्थल) हैं। रंग-बिरंगे धवलगृह और ऊँचे जिनमन्दिर हैं। उसके सामने जहाज ठहर गये। सब वणिक् लोग भोजनमें लग गये।

घत्ता—जहाजोंके साथ वे वहीं ठहर गये, वे चल नहीं सके। उस द्वीपमें सघन बादल गरज उठे। मानो ज्ञान विचक्षण दस लक्षणोंवाला धर्म, समूची धरतीको प्रसन्न कर रहा हो ॥३०॥

३१

दुष्ट थककर हंसद्वीपमें ठहर गये और अपनी-अपनी रुचिके अनुसार उसकी विशेषता बढ़ाने लगे। उसमें विद्याधर राजा कनककेतु रहता था। जिसके सोलह शिखरों पर कनककेतु थे। वह राजनीतिकी चिन्ता करता था—कामदेवकी नहीं। कामको तो उसने अपने शरीरसे ही जीत लिया था। वह अपनी पत्नीमें अनुरक्त था और अपने नगरका राजा था, जो प्रजा रूपी खेतीकी रक्षा करने वाला किसान था, जो शत्रुओंके सुखरूपी वृक्षोंके लिए आग था। जो भी राजा उसके वचनों-के विरुद्ध जाता, वह राजा उसके लिए क्षय था। जो दीन और दयनीय लोगोंके लिए कल्पवृक्ष था और पापरूपी कलानिधिको नष्ट करने के लिए दुष्ट था। जो असहनशील लोगोंके लिए प्रलय दिखा देता था और प्रचण्डबाहु अतुलनीयको तोल लेता था। जो बहुतसे सुखों और धर्मका सेवन करता था तथा दिनरात दया और सुख धर्मका चिन्तन करता था। दिनरात जो मन्त्रणा करनेमें प्रमुख था और जिसने युद्धके मैदानमें प्रधानोंको नष्ट कर दिया था।

घत्ता—परिजनोंके लिए दुर्लभ उस प्रिय पतिकी घरवाली कनकमाला रति, रस रूपमें सुन्दर थी। दृष्टिसे वह, लोगोंको देखती और फिर देखती, ऐसी लगती जैसे डरी हुई हिरनी हो ॥३१॥

३२

गजके समान गमन करने वाली कनकमाला उसकी प्यारी स्त्री थी। इतनी प्यारी कि जिस प्रकार मणि-स्वर्ण-माला हो। कोयलोंके समान मधुर बोलने वाली उसके समान युवती कोई नहीं ला सका। वह सती अपने गुरु और प्रियके चरणोंकी वन्दना करती उसी प्रकार जिस प्रकार भक्तिसे इन्द्राणी इन्द्रके पैर पड़ती। उसके प्रचुर गुणवाले दो पुत्र उत्पन्न हुए, जो परोपकारमें

५ जग झंपउ णिम्मल चित्त मोतिउ कपासु णं साइचित्त ।
णामेण चित्तु वीयउ विचित्तु साहसहो ण छंडइ जाहँ चित्तु ।
पुणु तीजी रयणमँजूस धीय सीलाहर[2] जो गंभीर धीय ।
णेहग्गल रूवग्गल सुतार लोयण-जुउ[3] णं गुरु-सुक्क-तार ।
एक्कहि[4] दिणि णिउ लइ फुल्ल जाइ गुरु-पय पुज्जिय जिण-भवणु जाइ ।
१० पुच्छिउ परमेसरु एह धुवा कहो[5] दिज्जइ सो पहु कहहु धुवा ।
मुणि उत्तउ जिणहरु सहसकूडु जो फेडइ सहसा पाव-कूडु ।
लहि पवि-किवाडु फेडइ जु कोइ सो परिणइ णिय अण्णु जि ण होइ ।
घत्ता—ता णरवइ जाणिवि मणि परियाणिवि वारवाल वइसारिय ।
अक्खिउ जो आवइ ए विहडावइ सो महु कहहु पुकारिय ।।३२।।

३३

एम भणेविणु गउ घरि णरवइ जासु चित्तु खणु पावे ण रमइ[1] ।
एत्तहिं वणि गच्छहिँ पुरि भीतर मणि रयणइँ जहिं आवणि भीतर ।
उवहि-तरंग-भंग वेला-उलु पिक्खहिं विउल लच्छि वेला-उलु ।
जहिँ जइणी सोहहिं वेसाडइँ णरु ण कोइ गच्छइ वेसाडइँ ।
५ जहिं णेमु णिग्गइ थणवट्टइ [2]परमेसरी वद्ध-थण-वट्टइ ।
जहिँ दंड परदारा-पेक्खण णर ण सहहिं परदारापेक्खण ।
जहिं वोलिज्जइ खज्जइ महुरउ ण वि दिज्जइ ण वि छुईयइ[3] महुरउ ।
जहिं असंख-सीमा-हालाहल अण्णरिद्धि तहिँ णवि हालाहल ।
कूव जहिं पुर करुण कूव-वहु वाटी जणु ण करेइ[4] जत्थ वहु वाटी ।
१० [5]जहिं णिब्भय वण कीलहिं सावय देव-सत्थ-गुरु-भत्ता सावय ।
मय-भुल्ला गय अलि महुमासहँ जणु विरत्तु णिम्मउ महु-मासहँ ।
ववहारइँ णिवसहिं सिरिवालहँ किं वहु लवमि [6]सिखमि सिरिवालहँ ।
घत्ता—तहिँ अत्थि णेमु सिरिवालहँ अइ-सुकुमालहँ जहिं णयरहो चेयालउ ।
तहिं विणु दँसेवइँ विणु परसेवइँ भोयणु करइ ण वालउ ।।३३।।

३४

दिट्ठु तेहिं जिणहरु णहु-लग्गउ दंसणे पाव-पडलु जसु भग्गउ ।
[1]अंड-दंडइक सोवण्ण-घडियउ पोमराय-मरगय-मणि-जडियउ ।
सुद्ध-फलिह-विद्दुम-आवद्धउ [2]रावट्टें भीसम-मणिहिं णिवद्धउ ।
सूर-कंति-ससि-कंतिहिं सोहिउ कडियल-गय-मुत्ताहलु खोहिउ ।
५ गरुडायार-वद्ध[3] सवणासहँ इंद-नीलमणि पुणु चउपासहँ ।
आवलसारु जडिउ गोमेयहिं पुक्खर-गवय-गवक्ख-अणेयहिं ।

---

२. ग सीलाहारि । ३. ग लोयणरुह गुरु णं सुक्कतार । ४. ग एक्कहिं । ५. ग कहि दिज्जइ सो पहु कहहि धूव ।

३३. १. ग रमइ । २. ग परमेसरु व घण घण वट्टइ । ३ ग णासिज्जइ महुरउ । ४. क कहेइ । ५. क जेहिं णिग्गसवाण कीलहि सावय । ६. ग कवमि । ७. ग देवखेवइ ।

३४. १. ग अंड दंड इक सो वण्ण घडियउ । २. क रावट्टें भीसण मणिहि वद्धउ । ३. ग सुवणासहिं ।

सावनके मेघोंके समान थे निर्मल और पवित्र चित्तवाले। उन्होंने उपकारसे संसारको ढक लिया। उनका चित्त मोती और कपासके समान स्वच्छ था। एकका नाम चित्र था और दूसरेका विचित्र। उनका चित्त एक पलके लिए साहस नहीं छोड़ता था। तीसरी बेटी थी—रत्नमंजूषा। शीलके आभूषण वाली जो गम्भीर पुत्री थी। वह स्नेह और रूपकी सुन्दर अर्गला थी। उसके दोनों नेत्र ऐसे थे मानो शुक्र तारे हों। एक दिन राजा कनककेतु फूल लेकर जा रहा था। गुरुके चरणोंकी पूजा करनेके लिए जिनमन्दिर जा रहा था। उसने गुरु महाराजसे पूछा—"यह कन्या किसको दी जाये? हे स्वामी कृपया बताइए।" मुनि बोले—"सहस्रकूट जिनमन्दिर है, जो अनायास पाप समूहको नष्ट कर देता है। उसके वज्र-किवाड़ोंको जो खोल देगा उसीके साथ हे राजन्, कन्याका विवाह कर देना। दूसरी बात नहीं हो सकती।"

घत्ता—यह बात जानकर राजाने मनमें निश्चय कर लिया। उसने द्वारपाल बैठा दिया, और बोला—जो आकर ये किवाड़ खोले, उसकी खबर मुझे देना ॥३२॥

३३

यह कहकर राजा अपने घर चला गया। उसका हृदय एक क्षणके लिए भी पापमें रमता नहीं था। यहाँ वणिक्पुत्र भी नगरके भीतर गये। जहाँ बाजारमें मणि और रत्न भरे पड़े थे। जो समुद्रकी लहरोंसे आकुल तटकुल ऐसा लगता है मानो विपुल लक्ष्मीका तट हो। जहाँ जैनोंकी वैश्याटवी (बाजार) शोभित है। वहाँ वेश्यालयमें कोई भी नहीं जाता। स्त्रियाँ जहाँ नियमसे निकलती हैं। परमेश्वरके समान जिसमें मेघ गरजते हैं। जिसमें परस्त्रीको देखना दण्डित समझा जाता है। लोग परस्त्री देखना सहन नहीं करते। जहाँ मधुर (मीठा) बोला जाता और खाया जाता है, परन्तु जो मधुर (शराब) न तो देते हैं और न छूते हैं। जिसकी सीमाओं पर असंख्य मालाकार हैं, परन्तु अपनी सिद्धिके लिए हलचल नहीं है। जहाँ नगरमें कुँए और बहुत सी बावड़ियाँ हैं...। अर्थ स्पष्ट नहीं है—जहाँ वनमें पक्षि निडर विचरण करते हैं, और श्रावक देव, शास्त्र और गुरु की भक्तिमें लीन हैं। भ्रमर मधुमाह (वसन्त) में मदसे छक जाते हैं लेकिन लोग मधुमाहमें निर्मद और विरक्त होते हैं। व्यापारी श्रीपालके पास निवास करते हैं। मैं (कवि) बहुत क्या कहूँ और श्रीपालको क्या सिखाऊँ?

घत्ता—वहाँ भी अत्यन्त सुकुमाल श्रीपालका नियम था। उस नगरमें जो चैत्यालय था, उसके दर्शन और स्पर्शके बिना वह भोजनको हाथ नहीं लगाता था ॥३३॥

३४

उसने आकाशको चूमनेवाले जिनमन्दिरको देखा। जिसके दर्शन मात्रसे पापका समूह नष्ट हो जाता था। अण्ड[1] दण्ड और सुवर्णसे निर्मित वह लाल मणि और पन्नोंसे जड़ा हुआ था। शुद्ध स्फटिकमणियों-मूँगोंसे सजा हुआ। राजपुत्रोंने उस पर बड़े-बड़े मणि लगा रखे थे। वह सूर्यकान्त और चन्द्रकान्त मणियोंसे शोभित था। उसका मध्यभाग गज-मोतियोंसे चमक रहा था। उसमें श्रमणोंकी सभा गरुड़के आकारकी बनी हुई थी। उसके चारों ओर इन्द्रनील मणि लगे हुए थे। उसकी श्रेष्ठ पंक्तियाँ (आवलसार) गोमेद रत्नोंसे जड़ी हुई थीं। पुष्कर, गवय, गवाक्ष आदि

---

१. मछलीकी आकृतिका दण्ड था, जो स्वर्णसे जड़ित और पद्मराग तथा पन्नोंसे जड़ा हुआ था?

तार-सुतारहिँ घडिउ णियंविउ सुक्कोदय-मोत्तिय-पडिविंविउ ।
एहउ सहसकूडु जिणमंदिरु गउ सिरिवालु तित्थु जगसुंदरु ।
[4]वज्ज-पाटलागइ सिहवारइँ [5]वारवाल पुच्छिय सिरिवालइँ ।
१० जो उत्तंग-सिहरु गण पुण्णउ सो सव्वंग-वारु [6]किह दिण्णउ ।
[7]ते जंपहिँ ग्रहु ण कुहु उघाडइ जिह पहु किवणहो हियय-कवाडइ ।
छुत्तु वीरें उघाडिउ तुरंतउ दिट्ठउ जिणहँ विंवु विहसंतउ ।
जयकारिउ जय-जय परमेसर जय सव्वंग-णाह जगणेसर ।
घत्ता—हरि-णचियउ पुणु हरि-जवियउ हरि-थुइ हरिहि पसंसिउ ।
१५ हरि वंदिउ हरि आणंदिउ इम छह हरिहिँ णमंसिउ ॥३४॥

३५

जय [1]तासण-णासण सरवेसर जयहि [2]अणाइ आइ परमेसर ।
जयहि अणाइ आइ वंभीसर
जय पसत्थ रयणत्तय आवण जय सामी थक्कउ वसु [3]आवण ।
तं कहि पहु जेहिं तुट्टइ आवण तहिँ [4]ट्ठइ लइ जहिँ जाइ ण आवण ।
५ जय पहु विरमउ चउगइ-रिद्धी जइ लइ थक्कउ सिव-सुह-रिद्धी ।
[5]जय जय णाह लहय्य-परुप्पउ जय सुजाण जाणिय-परमप्पउ ।
इम वंदिवि जिणु परमाणंदें जम्मणह्वणु किउ मेरु सुरिंदे ।
घियहं दुद्ध-दहि-खंड-पवाहें सव्वोसहि ण्हाविउ उच्छाहें ।
आवज्जिउ सुह-कम्मु थुणेप्पिणु अट्ठपयार पूज विरएप्पिणु ।
१० पुणु णिविट्ठु मझाण समाइय एत्तहिँ चर रायहरु धाइय ।
घत्ता—तहि अक्खिउ जं मइ रक्खिउ मण-चिंतिउ संपाइयउ ।
हंसदीव-वर-सामिय णहयल-गामिय रयणमँजूस-वरु आइयउ ॥३५॥

३६

कणयकेउ विज्जाहरु चलियउ कणयमाल घरिणिएँ सहु चलियउ ।
पुणु आणंद-भेरि अप्फालिय णिसुणि लोय जिणवंदण चालिय ।
णिवइ णंपि जिणु दिट्ठु अभंगउ सोक्खु-मोक्खु-सामी-पहु मग्गिउ ।
पुणु [2]सिरिवालु भेंटिउ वहु-करणहिं चालु सुहड महु कण्णा परणहिं ।
५ रयणमँजूस धीय सुह-लक्खण तुज्झु कहिय मुणि-वरहिं वियक्खण ।
[3]वहु उछाहुँ णयरहँ पइसंतहँ मंदल-संख-भेरि वायंतहँ ।
[4]रच्छा सोहहिँ सिगरि छत्तहिँ गायण-वायणेहि वच्चंतहिं ।

---

४. ग वज्ज कवाड लग्ग सिह वारइं । ५. ग द्वारपाल पुच्छिय । ६. ग कहिं । ७. ग ते जंपहिं कुइ पहु ण उघाडइ ।

३५. १, ग जय भवणासण सव्व सुरेसर । २. ग अणाइं णाइं वंभेसर । ३. ग वसुहा वण । ४. ग ठइ । ५. ग प्रतिमें ये पंक्तियां अधिक हैं—"जय आवज्जिय चउ सठि रिद्धि । जय तांडिय कम्माणं रिद्धि ॥"

३६. १. ग सहवंदणु । २. ग सिरिपालुवि भेट्टिवि वहुकरणहिं । ३. ग वहुउच्छह । ४. ग रत्था सोहहिं सिगिरि छत्तहिं । गायण वायणेहिं णच्चतहिं ॥

अनेकों स्वच्छ रत्नोंसे उसकी नीचेकी भूमि जड़ी हुई थी, जो ऐसी लगती थी मानो शुक्रके उदयमें मोती प्रतिविम्बित हों। यह है वह सहस्रकूट जिनमन्दिर। जगसुन्दर श्रीपाल उसके भीतर गया। उसके सिंहद्वार पर वज्रके दरवाजे लगे हुए थे। श्रीपालने (द्वारपालसे) वार-वार पूछा—"जो पुण्यशाली सबसे ऊँचा शिखर है उसके पूरे किवाड़ वन्द क्यों है?" द्वारपालने कहा—"इसका द्वार अभी तक कोई खोल नहीं सका, उसी प्रकार जिस प्रकार कंजूसके हृदयरूपी किवाड़ कोई नहीं खोल सकता।" तव उस वीरके छूते ही किवाड़ खुल गये। उसने जिन भगवान्के हँसते हुए प्रतिविम्बको देखा। उसने जयजयकार किया। "हे परमेश्वर, आपकी जय हो। हे जगदीश्वर और सर्वांग स्वामी, आपकी जय हो।"

घत्ता—आपको नारायण नमस्कार करते हैं। इन्द्र जपता है। राम स्तुति करते हैं। श्रीकृष्ण प्रशंसा करते हैं। ब्रह्मा वन्दना करते हैं। विष्णु प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार छह हरि आपको नमस्कार करते हैं ॥३४॥

३५

त्रासका नाश करनेवाले हे सर्वेश्वर, आपकी जय हो। हे अनादि और आदि परमेश्वर (आदिनाथ), आपकी जय हो। हे आदिब्रह्म, आपकी जय हो। हे प्रशस्त तीन रत्नोंके आश्रय, आपकी जय हो। हे स्वामी, आपकी जय हो। हे प्रभु, ऐसी वात कहिए जिससे संसारमें आना रुक जाये और वहाँ स्थित हो जाऊँ, जिसे प्राप्त करनेके वाद इस संसारमें आना सम्भव न हो। हे प्रभु, आपकी जय हो। मैं चार गतियोंकी ऋद्धियोंसे विरत हो जाऊँ, जिसे प्राप्त कर मैं शिवसुखकी ऋद्धिमें स्थित हो जाऊँ। हे नाथ, जय, आपकी जय हो। आपने परमपद प्राप्त किया है। हे ज्ञानवान्, आपकी जय हो, आपने परमपद जाना है। इस प्रकार परमानन्दसे जिन भगवान्की वन्दना कर उसने घी, दूध, दहीकी अखण्ड धारा और सव औषधियोंसे उसी प्रकार उत्साहके साथ जिन-प्रतिमाका अभिषेक किया, जिस प्रकार इन्द्र सुमेरु पर्वतपर जिन भगवान्का करता है। स्तुति कर उसने शुभ कर्म अर्जित किया। आठ प्रकारकी पूजा कर जव वह वैठा तव दोपहर हो चुकी थी। यहाँ दूत राजाके घर दौड़ा।

घत्ता—दूतने वहाँ जाकर कहा—"जिस वातके लिए आपने मुझे वहाँ पहरेपर रखा था वह मनचाहा व्यक्ति वहाँ आ गया है। हे आकाशगामी, हंसद्वीपके स्वामी, रत्नमंजूषाका वर आ गया है ॥३५॥

३६

कनककेतु विद्याधर चल पड़ा। उसकी पत्नी कनकमाला भी उसके साथ चली। उसने आनन्दसे डुगडुगी पिटवा दी। लोगो सुनो और जिन वन्दनाके लिए चलो। राजाने अखण्ड जिन भगवान्के दर्शन किये, जो कि सुख और मोक्षके स्वामी एवं प्रभासे परिपूर्ण थे। फिर उसने अपनी समस्त इन्द्रियोंसे श्रीपालसे भेंट की और कहा—"हे प्रभु! मेरी कन्यासे विवाह करो। मेरी वेटी रत्नमंजूषा लक्षण वाली है। विचक्षण मुनिवरने जिसका विवाह तुमसे होना वताया है।" श्रीपाल-ने वड़े उत्साहके साथ नगरमें प्रवेश किया। नगाड़े, शंख और भेरी-वाद्य वजने लगे। रास्तेमें

घरि पेसियउ कियउ संभासणु रयण-विणिम्मिउ दिण्णु वरासणु ।
पुणु सुह-वेल लगुण परिट्ठवियउ [5]हरियवंस तहिँ मंडउ ट्ठवियउ ।
१० चउरी[6] भावरि सत्त दिवाविय रयणमँजूस तासु परिणाविय ।
गयवर-तुरय दिण्ण असरालइँ रयणकचोल-सुवण्णइ-थालइँ ।
भयउ विवाहु सुक्खु पुरि घरि घरि गउ सिरिवालु लेवि तहि विडहरि ।
घत्ता—जय मंगल-सद्दहिँ समउ णरिंदहि णं णारायणु लच्छि सहिँ ।
धवलु सेठि तहि विडहरि गुणगण-मणहरि आयउ लइ सिरिवालु तहिँ ॥३६॥

३७

विडहँ मज्झि उच्छहु पयासिउ कवडेँ धवलु सेठि मणि हरसिउ ।
भोयण-खाण-पाण तंबोलहिँ दिण्ण कपूरइँ कुंकुम-लोलहिँ ।
भणइ वीरु पच्छाणेँ[1] मँजूसहिँ पिय[2] महु पिय छइ मालव-देसहिँ ।
परम-सणेही मयणासुंदरि जेँ णिय-रूवेँ जिणिय[3] पुरंदरि ।
५ मयणासुंदरि-सरिस महासइ णत्थि तीय णउ हुइ णवि होसइ ।
तहिँ उज्जेणि जणणि महारी कुंदप्पह मा सासु तुहारी ।
तहिँ अच्छइ सयसत्तय-राणा अंगरक्ख महुजीव-पराणा[5] ।
मूल-थत्ति णिसुणहि खामोयरि अंगदेसु णयरी चंपाउरि ।
सयल-समूहु उज्जेणि रहायउ वारह-वरिस अवहि दइ आयउ ।
१० थिय[6] जिन पिय परएसह दिण्णी । होसहि राय-भोय-संपुण्णी ।
भणइ मँजूस मिलिउ वरु चंगउ णेह-महा-भरेण आलिंगिउ ।
घत्ता—जो कम्मे[7] दिट्ठउ मुणिवर-सिट्ठउ सहसकूड-उग्घाडणु ।
सो मइँ लद्धउ पिउ णं[8] संगरि रिउ-रोरविहुरघण-ताडणु ॥३७॥

३८

पुणु चलियइँ विडइं परमाणंदेँ गायत[1] वायत जय-जय-सद्देँ ।
जलहि मज्झि वोहित्थइँ पेल्लिय वाय-वसेण जंति णं रेल्लिय ।
णाडय-गीय-विणोय-महंतइँ वणिवारउ सिरिवालु भणंतइँ ।
पोहणाहि जणु णच्चइ जावहिँ धवलु सेठि उम्माहिउ[2] तावहिँ ।
५ देखिवि रयण-मँजूस विदाणउ भिण्णउ काम-सरेहिँ अयाणउ ।
ताल-विल्लि लग्गइ मणि सल्लइ जिम सरि सुक्कइ मच्छइँ विल्लइँ ।
जिह जिह सुंदरि णाडउ णच्चइ तिह-तिह सेट्ठिहि हियवउ रच्चइ ।
रयणमँजूस अलावणि लावइ सेट्ठिहि णं हियवउ सल्लावइ ।
जेम[3] मँजूसा विहसइ गावइ सेट्ठिहि मरणँ[4]-अवत्था दावइ ।
१० जिम जिम सुंदरि पिउ आलिंगइ सेट्ठिहिँ[5] णं सहंतु जरु लग्गइ ।

५. ग हरिहि वंस तहि मंडवु रइय । ६. ग चाउरी ।
३७. १. ग वीरु इपच्छण । २ ग पिय महु छइ मालव देसहिं । ३. ग जिणइ । ५. ग समाणा ।
६. ग धीरी पिय परएसह दिण्णी । ७. ख ग कम्मइं । ८. क णं सवरि रिउ रोर विहुण घणताडणु ।
३८. १. ग गायण वायण । २. ग उम्मोहिउ । ३. ग जिम मजूस सरस सर गावइ । ४. ग सेट्ठिहि मरण वत्थ णं दावइ । ५. ख सेट्ठिहि णरु महं तुडिवि लग्गइ । ग सेट्ठिहि जुरु महिडणं लग्गइ ।
६. ग हउं णरइ गउ ।

पताकाएँ और छत्र शोभित थे। गाने-बजानेके साथ लोग नाच रहे थे। घरमें ले जाकर उससे बातचीत की और रत्न-निर्मित श्रेष्ठ आसन उसे दिया और फिर शुभ मुहूर्तमें लगनकी स्थापना की। हरे बाँसका वहाँ मण्डप बनाया गया और उसे चवरी और सात फेरे दिलाकर रत्नमंजूषाका उससे विवाह कर दिया। उसने बहुत उत्तम हाथी और घोड़े उसे दिये। रत्नके कटोरे और सोनेके थाल दिये। विवाह हो गया और नगरमें घर-घर खुशियाँ मनायी गयीं। श्रीपाल उसे लेकर विडघर पहुँचा ।।३६।।

घत्ता—श्रीपाल जय-मंगल शब्दों और राजाओंके साथ गुणसुन्दरी रत्नमंजूषाको लेकर जहाँ धवलसेठ था उस विडगृहमें ऐसे पहुँचा मानो नारायण और लक्ष्मी हों ।।३६।।

३७

विडोंके बीच उत्साह फैल गया और धवलसेठ भी कपटसे मनमें प्रसन्न हुआ। उसने उसे खान-पान और पानके साथ केशर मिश्रित कपूर दिया। बादमें श्रीपाल रत्नमंजूपासे कहने लगा—"हे प्रिये ! मेरी प्रिया मालव देशमें है, मदनासुन्दरी अत्यन्त स्नेहवाली। उसने अपने रूपसे इन्द्राणीको जीत लिया है। मदनासुन्दरीके समान महासती स्त्री न तो है, न हुई है और न होगी। वहाँ उज्जैन नामकी नगरी है। वहाँ कुन्दप्रभा मेरी माँ और तुम्हारी सास रहती है। वहाँ सात सौ राणा और हैं जो मेरे अंगरक्षक हैं और मेरे जीवनके प्राण। हे कृशोदरी, और भी सुनो। मेरा मूलनिवास अंगदेशमें चम्पापुरी नगरी है लेकिन समस्त समूह उज्जयिनीमें रहता है। मैं उन्हें बारह वर्षकी अवधि देकर आया हूँ। जिस तरह हे प्रिये ! तुम मुझ परदेशीको दी गयी हो, तुम भी राज्य-भोगसे परिपूर्ण हो जाओगी। तब रत्नमंजूषाने कहा—"मुझे अच्छा वर मिला।" और महान् स्नेहसे भरकर उसने उसका आलिंगन कर लिया।

घत्ता—जो कर्मोंके द्वारा देखा गया और जिसका कथन मुनिवरने किया वह सहस्रकूटका द्वार उद्घाटित हो गया। मैं ने पति पा लिया। मानो युद्धमें शत्रु घोर घन ताड़न सह रहा है (?) ।।३७।।

३८

फिर विड लोग आनन्दपूर्वक वहाँसे चल पड़े। गाते-बजाते जय-जय शब्द करते हुए। समुद्रके भीतर जहाज चला दिये गये, हवाके झोंकेसे, मानो यन्त्र ही प्रेरित कर दिये गये हों। नाटक, गीत और बड़े-बड़े विनोद वणिक् लोग श्रीपालको बताने लगे। जब लोग जहाजमें नाच रहे थे तब धवलसेठ कामसे उन्मत्त हो उठा। रत्नमंजूषाको देखकर वह विद्रूप हो उठा। वह मूर्ख कामके तीरोंसे विद्ध हो गया। उसका तालु संकुचित हो गया। मनमें शल्य लग गयी। उसी प्रकार जिस प्रकार नदी सूखनेसे मछली तड़फने लगती हैं जैसे-जैसे सुन्दरी नाटक करती, वैसे-वैसे सेठका हृदय आकृष्ट होता जाता। रत्नमंजूषा आलाप भरती, सेठके हृदयमें कराह उठती। रत्नमंजूषा हँसती और गाती, परन्तु उससे सेठकी मरणावस्था दिखाई देने लगती। वह जैसे ही अपने प्रियका आलिंगन करती वैसे ही उस सेठको बहुत बड़ा ज्वर चढ़ आता।

घत्ता—कलमलइ, वलइ करयल मलइ धवलु सेठि कामें लयउ ।
परतिय-आसत्तउ मयणें मत्तउ णउ जाणइ इहु णरयगउ ॥३८॥

३९

इय[1] दक्खिवि मंती परियाणिउ　　सेठि-सरीरु कुविल्लउ जाणिउ ।
पुच्छिउ किं णाइक्क अचेयण　　किं[2] तुव पेट्ट-सूलु सिर-वेयण ।
किं उम्मउ सणिवाए लइयउ　　किं तुह अत्थु मंतु कहिं गयउ ।
भणइ सेठि तुम कहउँ सहारिवि　　णा[3] मथवाहिं हरि णव हारिवि ।
५ भणइ हीणु महु मणु आसत्तउ ।　　रयणमँजूस-रूव-संतत्तउ ।
भणइं ते वि मा करहिं अजुत्तउ　　तुव पुत्तहो केरउं[4] सुकलत्तउ ।
कामंधउ णउ णरयहो भीयइ[5]　　कामंधउ परलोय ण ईहइ ।

घत्ता—कामिहिं[6] णउ लज्ज वहिणि ण भज्ज[7] णउ पाविहिं[8] सँतु अवसरु ।
धिय वहिणि ण जोवइ पाउ पलोवइ जिम वणयरु कुक्करु खरु ॥३९॥

४०

पुणु कहइ कूड-मंतिहिं सहाउ　　तुम लाखदामु दइहउँ[1] पसाउ ।
तुव[2] गुणु जाणेसउँ हउँ मणेण　　जिम एह णारि माणउँ सुहेण ।
ता कहिउ तुम्हि घोसु वि करेहु　　उच्छलिउ मच्छु जलि वज्जरेहु ।
ताकिविणु एहु वँसहँ चढेइ　　कट्टहु[3] वरत्तु जिम जले परेइ ।
५ ता कियउ कुलाहलु मुक्कदीहँ[4]　　[5]मरजिया ताहँ मेलइ विचीह ।
उच्छलिउ मच्छु वणिवरहँ घोरु　　किं आवइ इहु असमयहु चोरु ।
करसउ कवांसु[6] उत्तंगु दीहु　　सिरिवालु चढिउ देखणे अभीहु ।
कट्टिय वरत्त ढेंढतरालि[7]　　सो पडियउ वूडिवि गउ पयालि ।
पणतीसक्खर सुमरंतु मंतु　　गइयउ णियाणि जिणु जिणु भणंतु ।
१० जिम सूरु ण भुल्लइ हत्थियारु　　जिणमंतु तेम जलि णमोयारु ।

घत्ता—रिद्धि-विद्धि-वरमंगलु सुहु गुणअग्गलु सुव कलत्त मणु रंजणु ।
घरि घरि होइ सुसंपइ गणहरु जंपइ विहुर-रोर-दुह-खंडणु ॥४०॥

४१

जिणणामें मयगलु मुवइ दप्पु　　केसरि वसि होइ ण डसइ सप्पु ।
जिणणामें डहइ ण धगधगंतु　　हुववह-जाला सय पज्जलंतु ।
जिणणामें जलणिहिं देइ थाहु　　आरण्णि चंडि णवि वहइ वायु ।
जिणणामें भर-सय-संखलाइँ　　तुट्टेवि जंति खणि मोक्कलाइँ ।

---

३९. १. ग इउ देक्खिवि मंतिहि परिवाणिउ । सेट्ठि सरीरु कुचिट्ठउ जाणिउ । २. ख किं तु अत्थु मंत किथु गइयउ । ग किं तुव अत्थु दव्वु किछु गईयउ । ३. ग णाहि । ४. क केरो । ५. ग वीहउ । ६. क कामिणिहि । ७. ग भणिज्ज । ८. ग जाणहिं ।

४०. १. ग करिहउं । २. ग मइं कहिउ गतु उ जाणिभणेणु । ३. ग काटिय वरत । ४. ग पोमदीह । ५. ग मरजीवा तहिं मेलविय जीह । ६. ग कवंसु । ७. ग ढेढहंतरालि ।

घत्ता—वह कलमलाता, मुड़ता और हाथ मलता। धवलसेठ कामसे ग्रस्त हो उठा। दूसरेकी स्त्रीमें आसक्त और कामदेवसे मदोन्मत्त वह नरकगतिको नहीं जानता था ॥३८॥

३९

यह देखकर मन्त्री समझ गया। उसने सेठके शरीरकी कुचेष्टा जान ली। उसने पूछा कि तुम बेहोशकी भाँति क्यों हो? क्या तुम्हारे पेटमें शूल है? या सिरमें दर्द है, या सन्निपात हो गया है, या कोई तुम्हें जन्तर-मन्तर कर गया है? सेठ कहता है—"मैं तुम्हें सहारा देनेके लिए कहता हूँ कि ना तो मुझे सिरमें पीड़ा है, मैं न ही व्याधिसे पीड़ित हूँ।" वह हीन कहता है—"मेरा मन आसक्त है। वह रत्नमंजूषाके रूपसे सन्तप्त है।" तब मन्त्रियोंने कहा कि तुम अनुचित काम मत करो। वह तुम्हारे पुत्रकी पत्नी है। कामान्ध व्यक्ति नरकसे नहीं डरता। कामान्ध व्यक्ति परलोक नहीं देखता।

घत्ता—कामीको लज्जा नहीं लगती, चाहे वह बहन हो चाहे भार्या। पापीको केवल अवसर नहीं मिलता। वह बहन-बेटीको नहीं देखता, पाप देखता है। जैसे वनका कुत्ता या गधा ॥३९॥

४०

फिर वह कहता है कि हे कूट मन्त्री, तुम्हीं सहायक हो, तुम्हें मैं प्रसादमें एक लाख रुपया दूँगा। मैं तुम्हारे गुणोंको हृदयसे मानूँगा। यदि मैं इस स्त्रीका हृदयसे भोग कर सकूँ। तब उसने कहा कि तुम इस बातकी घोषणा करो कि जलमें मच्छ उछला है। उसे देखनेके लिए यह बाँसपर चढ़ेगा। तुम रस्सी काट देना जिससे यह जलमें गिर पड़े। तब उसने बहुत जोरसे कोलाहल किया। मरजियाने लहरोंके बीच कहा—"वणिग्वरो, बहुत बड़ा मच्छ उछला है। क्या असमयमें चोर आयेगा।" इसपर ऊँचा लम्बा बाँस खींचकर श्रीपाल देखनेके लिए उसपर निडर होकर चढ़ गया। कोलाहलके बीच रस्सी काट दी गयी और वह पानीमें डूबकर पातालमें चला गया। पैंतीस अक्षरके मन्त्रका स्मरण करते हुए अन्तमें वह 'जिन-जिन' कहता हुआ चला गया। जिस प्रकार शूर-वीर अपना हथियार नहीं भूलता उसी प्रकार श्रीपाल जलमें णमोकार मन्त्र नहीं भूला।

घत्ता—इस मन्त्रसे ऋद्धि-सिद्धि, उत्तम मंगल, शुभ गुणकी शृंखला, सुत, मनरंजन कलत्र और घरमें सुसम्पदा होती है। गौतम गणधर कहते हैं कि यह मन्त्र कठोर रौरव नरकका दुःख नाश करनेवाला है ॥४०॥

४१

'जिन'के नामसे मतवाला हाथी अपना दर्प छोड़ देता है। सिंह वशमें हो जाता है। सर्प नहीं काटता। 'जिन'के नामसे धक-धक करती हुई आगकी सैकड़ों ज्वालाएँ नहीं जला सकतीं। 'जिन' के नामसे समुद्र अपनी थाह बता देता है। जंगलमें हवा भी प्रचण्डतासे नहीं बहती। 'जिन' के नामसे सैकड़ों बेड़ियाँ टूट जाती हैं और आदमी एक क्षणमें मुक्त हो जाता है। 'जिन' के नामसे

५ जिणणामें दुरियइँ खयहु जंति परिपुण्ण-मणोरह णिरु हवंति।
जिणणामें छिज्जइ मोह-जालु उप्पज्जइ देवहँ सामि-सालु।
जिणणामें णासइ सयल वाहि गल-गुम्म-गंड ण वि कोढु ताहि।
जिणणामें णउ छलु छिद्दु कोइ डाइणि साइणि जोइणि ण होइ।
जिणणामें णासइ रोरु घोरु घर-सत्थ-पंथ मूसइ ण चोरु।
१० जिणणामें ठकु ठाकुरु[1] ण दुट्ठु थावरु जंगमु णवि काल-कुट्ठु।
जिणणामें फोडी खणि विलाइ इकतरउ ताउ तेइयउ जाइ।
जिणणामें उच्चाटइ ण कोइ थंभणु मोहणु वसियरणु होइ।
जिणणामें दिणि लब्भइ सुहाइँ[2] सुह सोवत सेजहिँ[3] णिसि विहाइ।
जिणणामें सज्जण देहिँ लीह फणि मुहु गोवहिँ दुज्जण दुजीह।
१५ घत्ता—जिण-गुण-चारित्तें दिढ-सम्मत्तें दुरिउ असेसु विणासइ।
जं जं मणि भावइ तं सुहु पावइ दीणु ण कासु विभासइ ॥४१॥

४२

एत्तहिँ हाहारउ भउ तुरंतु धवलु वि धायउ कवडें रुवंतु।
खामोयरि मेल्लिय दीह धाह हा कहिँ गउ हा कहिँ गयउ णाह।
हा चंपाहिव-सुय सिरियवाल हा कनयकेय हा कणयमाल।
हा बंधव चित्त-विचित्त वीर [1]हउँ अच्छमि मरंति समुद्दतीर।
५ धवलेण वुत्तु पुणु भलउ हुउ उच्चरिहु सयल सिरिवालु मुउ।
पावियहँ चित्त-वद्धावणउ रयणमँजूस रोवइ घणउ।
वणिवर वि सयल रोवहिँ तुरंत चोरह रक्खें मंजूसकंत।
[2]सिरिवालु जँवण लग्गंतुखोर ता लिंतु परोहण लक्खु चोर।
सिरिवालु वि धावतु जवणपुट्ठि[3] को बंधिउ छोडतुँ[4] धवलु सेट्ठिँ[5]।
१० घत्ता—णाह णाह विलवंती करुणु रुवंती रयण-मँजूस विहलग्गय।
सिरिवालु णरेसरु महि-परमेसरु पइँ विणु हउँ जीवंती मुय ॥४२॥

४३

करुण[1]-पलाउ करंति समुट्ठिय कहिँ गउ णाह छाडि सा दिट्ठिय।
[2]कहिँ गउ णाह णाह कोडीभड कहिँ गउ विहडावण-तक्कर-घड।
कहिँ गउ चलण-परोहण-चालण कहिँ गउ जीव-दया-प्रतिपालण[3]।
कहिँ गउ जण-पिय पिय जग-सुंदर सहसकूड-उग्घाडण-मंदिर।
५ [4]वाविउ मइँ विण्णविउ सहेसहँ काहे वप्प दिण्ण परएसहँ।
तेण कहिउ जं कहिउ णिमित्तिय सो मइँ तुज्झु विहायउ पुत्तिय।
[5]सव्वहँ कम्म-विवाउ वि वलियउ मुणिवर-भासिउ होइ ण अलियउ।
वाहुडि रयणमँजूसा घोसइ [6]सो कहि मयणासुंदरि होसइ।

---

४१. १. ग ट्ठाकुरु। २. ग सुहाइं। ३. ग सिज्जिहिं।

४२. १. ग हउं अच्छमि मज्झ समुद्दतीर। २. ग सिरिपालु जउ ण लग्गंतु खोर। ३. ग पुट्ठि। ४. ग छोड़इ। ५. ग सेट्ठि।

४३. १. ख ग कलुणु। २. ग समर सूर विहडावण गय घड। ३. ख ग दयापरिपालण। ४. ख ग पाविउ मइ विण्णिविउ सहेसहं। ५. ख ग सव्वहं कम्म विवाउ वि वलियउ। ६. ख ग सा।

एक भी ग्रह पीड़ित नहीं करता। दुर्मति पिशाच भी हट जाता है। 'जिन'के नामसे पाप नष्ट हो जाते हैं और समस्त मनोरथ परिपूर्ण हो जाते हैं। 'जिन'के नामसे मोहजाल क्षीण हो जाता है और आदमी देवताओंका स्वामीश्रेष्ठ होता है। 'जिन'के नामसे समस्त व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं। उसे घूमड़ (फोड़ा), गंडव और कोढ़ नहीं होता। 'जिन'के नामसे कोई छल-माया नहीं होती। डायनी, सायनी और जोगिनी नहीं होती। 'जिन'के नामसे भयंकर (रोर) नरक नष्ट हो जाता है। चोर घर और शास्त्र और पन्थको चोर नहीं सकता। 'जिन'के नामसे ठक ठाकुर दुष्ट नहीं हो पाते। स्थावर-जंगम और कालका कष्ट नहीं होता। 'जिन'के नाम फुड़िया एक क्षणमें विला जाती है। इकतरा ताप और तिजारी चली जाती है। जिन'के नामसे कोई उच्चाटन नहीं कर सकता। स्तम्भन, मोहन और वशीकरण भी नहीं होते। 'जिन'के नाम से दिन-प्रतिदिन लाभ होता है और सुखसे सोते हुए दिन-रात बीत जाते हैं। 'जिन'के नामसे सज्जन अपनी लीक दे देता है और सर्पमुख दुर्जन अपनी जिह्वा छिपा लेता है।

घत्ता—'जिन'के गुण, चरित्र और दृढ़ सम्यक्त्वसे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। मनमें जो-जो इच्छा होती है, वह सुख पाता है। वह किसीसे भी दीन नहीं बोलता ॥४१॥

४२

इधर शीघ्र ही 'हा-हा' की ध्वनि गूँज उठी। धवलसेठ भी तुरन्त कपटपूर्ण दौड़ा। दुबली-पतली देहवाली वह लम्बी साँसें छोड़ रही थी। हे स्वामी, तुम कहाँ गये, तुम कहाँ गये ? हे चम्पा-नरेशके पुत्र श्रीपाल, हे कनककेतु, हे कनकमाला, हे भाई चित्र और विचित्र वीर ! मैं यहाँ हूँ और समुद्रके किनारे मर रही हूँ। धवलसेठने कहा—"चलो अच्छा हुआ।" सबने कहा कि श्रीपाल मर गया। उस पापीका हृदय बधाइयोंसे भर गया, जबकि रत्नमंजूषा खूब रो रही थी। सभी वणिक्पुत्र रो पड़े। (यह कहते हुए) कि रत्नमंजूषाके पतिने चोरोंसे बचाया। श्रीपाल यवनोंके पीछे लगा, नहीं तो लाखचोर जहाज छीन लेते। परन्तु श्रीपाल उसके पीछे-पीछे दौड़ा। धवलसेठको बन्धनसे किसने छुड़ाया ?

घत्ता—"हे नाथ ! हे नाथ !!" यह कहती हुई, करुणापूर्वक रोती हुई रत्नमंजूषा विलाप कर उठी। "धरतीके स्वामी, हे श्रीपाल, तुम्हारे बिना जीते हुए भी मैं मरी हुई हूँ" ॥४२॥

४३

इस प्रकार करुण विलाप करती हुई वह उठी और बोली—"हे स्वामी, वह दृष्टि छोड़कर तुम कहाँ चले गये ? चोर-समूहका नाश करनेवाले तुम कहाँ चले गये ? अपने पाँवसे जहाज चलानेवाले तुम कहाँ गये ? हे लोगोंके और विश्वके प्रिय, तुम कहाँ चले गये ? सहस्रकूट मन्दिरका उद्घाटन करनेवाले तुम कहाँ चले गये ? जो कुछ मैं ने बोया है, खिन्न मैं उसे सहूँगी। लेकिन पिताने परदेशीसे मेरा विवाह क्यों किया ?" उन्होंने कहा था, "किसी नैमित्तिकने बताया था उसीके अनुसार मैंने तुम्हारा विवाह किया था। हे पुत्री, सबका कर्मसे विवाह बलवान् होता है।" मुनिवरका कहा कभी असत्य नहीं हो सकता। फिर रत्नमंजूषाने कहा कि मदनासुन्दरीका क्या होगा ? जो राजा प्रजापालकी बेटी है और गुणोंसे परिपूर्ण है, जिसे उसके प्रियने बारह बरस-

जा पयपाल-धीय गुण-पुण्णिय वारहवरिस-अवहि पिय दिण्णिय।
१० कहिं होसइ कुंदप्पह मायरि को लेसइ णयरी चंपाउरि।
अंग-रक्ख ते को रक्खेसइ को तहिं अंगदेसि जाएसइ।
को पिय सावय-वउ ठवएसइं[७] सिद्ध-चक्क-वउ कवणु करेसइ।
इम विलवंति वि वारइ सहियणु अवसें दिण्ण[८] जो संचिउ रिणु।
अंतराय कम्मु इहु जोयहि संभरिवि वहिणि मा कंदहि रोवहि।
१५ घत्ता—कारुण्णु णिवारइ हियउ सहारहि पाणिय अंजुलि देहि तहो।
सिरिवालु अतीतउ गयउ जु वीतउ रयणमँजूसा रुवहि कहो ॥४३॥

४४

लोयायरहँ[१] कुणहि पलोवणु करि भोयणु सइं ण्हाणु विलेवणु।
खाणह-पाण-विलेवण मायइँ [२]महाएवि सिरिवालहो आयइँ।
अच्छइ एम महासइ जावहिं दूई सेट्ठि पठाई तावहिं।
भणइ दूइ सिरिवालु म जोवहि धवलु सेट्ठि सामिउ अवलोयहि।
५ णिसुणि भणिउ हे दूइ णिक्किट्ठिय अम्हहँ ससुरु होइ पाविट्ठिय।
जुत्ताजुत्त[३] ण जाणइ कामिउ सुण्ह[४] वहिणि सेवइ णिण्णामिउ।
वलिवंडइ किर आइ वुलावइ पाइ लागि कर जोडि मणावइ।
रयण-मँजूस भणइ विहडप्फड ओसरु रे ओसरु तिय-लंपड।
पापिय[५] काल-मुखी[६] कुल-भंडिय पइँ णिय-माइ-वहिणि किम छंडिय।
१० हउँ जाणउँ ससुरउ वावुहरु अव तूँरे कूकँरु खरु सूवरु।
अहो जल-देवय तुम्ह णिरिक्खहु इहि पापियहि पास मोहि रक्खहु।
घत्ता—वहु-दुक्ख णिरंतर अण्ण-भवंतर कासु कीय भो णाह मइं।
परलाउ करंतहँ एम रुवंतहँ जल-देवि-गणु आउ सइं[८] ॥४४॥

४५

माणिभद्दु सायरु हल्लोलिउ पोहणु धरि[१]अहमुहु चम्वोडिउ।
चक्केसरिय चक्कु जिम फेरिउ वणि आउलिय परंपरि वोलिउ[२]।
हरिसंदण[३] अंवाइय आइय कुक्कुड सप्प रहहँ पोमाइय।
खेत्तपालु[४] सुणहा चढ़ि धायउ धवल-सेठि-मुहे लूहडु[५] लायउ।
धूमायारु कियउ तव रोहिणि अग्गि पजाली[६] जाला-मालिणि।
५ रयणमँजूस-सील-गुण-सेविहिँ वणिवर तासे सासण-देविहिँ।
धिंतरिंद गरुडासणि आयउ दह-मुह-णामिउ गहु सइँ मायउ।
आइवि धवलु सेठिँ[७] तहिं साधिउ णिविडवंध पाछे करि वाँधिउ।
उद्ध पयइं अह सिरु करि चालिउ पुणु अमेहु पापी-मुहे वालिउ।
१० एवमाइ वहु-दुक्खु सहंतउ रक्खहु रक्खहु एम भणंतउ।

---

७. ख ग पालेसइ। ८. ग दिण्णउं। ख देवउं

४४. १. ख लोयाचारहु। ग लोयाचारु वि। २. ख ग इय पवित्ति सिरिपालुहु आपइं। ३. ग जुत्तु अजुत्तु। ४. ग सुण्ह। ५. ग पाविय। ६. ख पापी काला मुह। ग 'कालय मुह'। ७. ग कुक्करु। ८. ग तहिं।

४५. १. ग पोहणु धरि करिउ मुहुं चमोलिउ। २. ग फेरिउ। ३. ग हरिदंसण। ४. ग खेत्तपालु सुणह हं रह धायउ। ख खेत्तपालु सुणहा रह धायउ। ५. ग लुहलु। ६. ग पंज्जालिय। ७. ग सेट्ठि।

की अवधि दी है। माता कुन्दप्रभाका क्या होगा ? चम्पापुर नगरीको कौन लेगा ? उन अंगरक्षकों (सात सौ) की कौन रक्षा करेगा ? इस प्रकार विलाप करते हुए उसे सखीजनोंने समझाया कि जो ऋण संचित किया है, उसे देना ही होगा। इसे कर्मोंका अन्तराय समझना चाहिए। हे बहन, अपनेको सँभालो, चिल्लाओ और रोओ मत।

घत्ता—करुणा छोड़ो, हृदयको ढाढ़स दो। उन्होंने उसे अंजुलीमें पानी दिया। श्रीपाल अब 'अतीत' हो चुका है। जो गया, वह जा चुका है। हे रत्नमंजूषा, अब क्यों रोती हो ? ॥४३॥

४४

तुम लोकाचारको देखो, भोजन करो, स्वयं स्नान विलेपन करो। हे आदरणीये, भोजन पान भी लो। हे महादेवी, श्रीपाल आयेगा। इस प्रकार वह महासती किसी प्रकार रह रही थी कि इतनेमें सेठने अपनी दूती भेजी। दूतीने आकर कहा कि तुम श्रीपालकी बाट मत जोहो। स्वामी धवलसेठकी ओर देखो। यह सुनकर उसने कहा—"हे नीच दूती, वह पापी हमारा ससुर होता है। कामी पुरुष उचित-अनुचितका विचार नहीं करता। निर्नाम वह, बहू और बहनका सेवन करता है। वह धूर्त बलपूर्वक उसे बुलाता है। उसके पैर पड़कर और हाथ जोड़कर उसे मनाता है। विह्वल रत्नमंजूषा उससे कहती है—"हे स्त्रीलम्पट, दूर हट, दूर हट। ओ कुलनाशक कालमुखी पापी, तूने अपनी माँ-बहन किस प्रकार छोड़ दी। मैंने तुझे अपना ससुर और बाप समझा था। अब तू कुत्ता, गधा और सुअर है। ओ जलदेवताओ, अब तुम देखो, मुझे इस पापीके मोहपाशसे बचाओ।"

घत्ता—"हे स्वामी, दूसरे जन्ममें मैंने ऐसा क्या किया जो जन्मान्तरमें मुझे निरन्तर दुःख झेलने पड़ रहे हैं।" परलोक मनाती हुई वह रो रही थी। उसके इस प्रकार रोनेपर जल-देवताओंका समूह स्वयं आया ॥४४॥

४५

माणिभद्रने समुद्रको हिला दिया। जहाजको पकड़कर उलटा कर दिया। चक्रेश्वरी देवीने जैसे ही अपना चक्र चलाया, वणिक् व्याकुल होकर एक-दूसरेसे कहने लगे—अश्वोंके रथपर अम्बा देवी आयी। मुर्गो और साँपोंके रथपर पद्मादेवी आयी। क्षेत्रपाल कुत्तेकी सवारी करके आये। उन्होंने धवलसेठके मुखपर लूघर (जलती हुई लकड़ी) मारा। रोहिणीने सब ओर धुआँ फैला दिया। ज्वालामालिनीने सब दूर अग्नि ज्वाला प्रज्वलित कर दी। रत्नमंजूषाके शील गुणकी सेवा करनेवाली शासनदेवियोंने धवलसेठको खूब उत्पीड़ित किया। तब व्यन्तरेन्द्र अपने गरुड़ आसनपर आया। उसने दसमुखको झुका दिया और स्वयं आया। आकर उसने धवलसेठको वहाँ साधा। खूब मजबूतीसे कसकर उसके हाथ पीछे बाँध दिये। सिर नीचे और पैर ऊपर कर उसे चलाया गया और 'अमेह' चीज उस पापीके मुँहमें डाल दी। इस प्रकार बहुतसे दुःखोंको सहन करनेके

वणिवर भणहिँ ढेंढु णिसारहो[८] इहु पाविट्ठहो दुट्ठहो जारहो।
गय उवसग्ग करेविणु विंतर वणिवर सिक्खा देवि[९] णिरंतर।
रयणमँजूसहि गय मण्णाइवि तुव सिरिवालु मिलइ गउ आइवि।
ता[१०] एत्तहिं जल-जाण पयट्टहिं दीव दीव टापू संघट्टहिं।
१५ णिसुणहु अण्णकहा संचलिय [११]सायर-वीर जहिं उच्छलिय।

घत्ता—रयणायरि पडियउ कम्में णडियउ रयणमँजूसा-वल्लहउ।
सयल वि सुर हल्लिय करुणें वुल्लिय गउ सिरिवालु वि दुल्लहउ ॥४५॥

४६

ता सिरिवालु वीरु तहिँ झावइ[१] जिणवर-सिद्ध-सूरि मणि भावइ।
जल-कल्लोल-लहरि आसंघइ करणदेवि[२] जल-भवणइँ संघइ।
मयर-गोह-घडियाल वलावइ कच्छ[३]-मच्छ-जलमाणुस णावइ।
सुंसुमार जलकरिणउं थक्कहि वडवानल[४]-तंतु ण तहि संकहि।
५ गउ पयालु उच्छलिउ महावलु जिह जल-मज्झे मुक्कु तुंबी-फलु।
भुव-वलेण सायरु संभरियउ पुण्णें कट्ठु[५]-खंडु करि धरियउ।
हत्थें जलहि तरंतु समागउ सिरिवालु वि दलवट्टण लग्गउ।
जो अरि-राय माणदल[६]-वट्टणु दीउ दिट्ठु पाटणु दलवट्टणु।
तहिँ धणवालु णिवइ धर-वालउ धणय-जक्ख णावइ धणवालउ।
१० पट्टमहिसि णामें[७] वणमाला ललिय-भुवहि णं मालइ-माला।
तिण्णि पुत्त तहि पढमु मणोहरु पुणु सुकंठु सिरिकंठु मणोहरु।
कहि उवमिज्जइ ते णरवइ सुय अहिणिसु पढहिँ गाइ पव्वय सुय।
पुणु तहि दुहिय णेह गुणमाला णं विहि विहिय णेह[८]-गुण-माला।
रूव-छंद-लायण्णहिं सोहइ कला-बहत्तरि सहु जणु मोहइ।
१५ ताह कज्जि पुच्छिउ मुणिराएं को वरु सो अक्खहु अणुराएं।
लडह वियक्खण कण्ण कुमारी [९]णं जुवाण-जण-रइय-कुमारी।
[१०]सील-विवेय-णाह अइ-भल्ली [११]जा कामियण-उरत्थल-सल्ली।
मुणि उत्तउ जु तरइ जलु पाणिहिँ वसइ णरिंद-गेह तह पाणिहिँ।
एम पयासिउ जइवइ जाणिहिँ छलु दइ णिउ गउ चढ़ि जाणिहिँ।
२० घत्ता—[१२]आयउ कर तरंतु सो सायरु पेक्खिवि मोहिय किंकरा।
सलहहिँ इहु वरवीरु पुण्णें चड़िउ णिव-सुव-करा ॥४६॥

---

८. ग णीसारहु। ९. ग देहि। १०. ग ता एतूहि। ११. ग सायर वीर तहा उछलियउ।
४६. १. ग मायइ। २. ग किरणदेवि। ३. ग मच्छ कच्छ। ४. ख ग वडवानल तरुण तहि संकहि। ५. ग कट्ठ-खंड। ६. ग माण। ७. ग णामइं। ८. ग णेयगुणमाला। ९. ग प्रतिमें यह पंक्ति नहीं है। १० ग सील विवेय णाइं अइमारी। ११. ग जा कामियण-उरत्थल भल्लो। ख सा परणेवी केण सुहिल्ली। १२. ग आयउ कर तरंत सो सायरु मोहिय देक्खि किंकरा। सयलहं पीरमज्झि वीराहिउ पुण्णहि चडिउ सुवकरा॥

वाद वह चिल्लाया कि मुझे वचाओ। वणिग्वर भी वोले कि इस नीचको निकालो। इस पापी नीच और दुष्टाचारवालेको। व्यन्तर देवता इस प्रकार उपसर्ग करके चले गये। उन्होंने लगातार उस वणिग्वरको शिक्षा दी। वे रत्नमंजूषाको भी समझाकर चली गयीं कि तुम्हारा श्रीपाल आकर मिलेगा। इसके वाद जलयान चल पड़े तथा वे दूसरे द्वीपों और टापुओंसे जा लगे। अव सुनिए कथा वहाँकी जहाँ श्रीपाल उछला था।

घत्ता—कर्मसे नचाया गया, रत्नमंजूषाका प्रिय समुद्रमें गिर गया। सभी शोकमें पड़ गये। करुणासे भरकर वोले—"अव श्रीपाल दुर्लभ हो गया" ॥४५॥

४६

श्रीपाल वहाँ ध्यानमें लीन हो गया। जिणवर सिद्ध साधुका वह मनमें ध्यान करने लगा। जलसमूहकी लहरें आकर उससे टकराने लगीं। करुणदेवी अपने जलभवनमें वोलने लगी। मगर, गोह और घड़ियाल भी चिल्ला उठे। कच्छ, मच्छ और जलमनुष्य ज्ञात होने लगे। सुंसुमार और जलहाथी भी चुप नहीं वैठे। वडवानलकी ज्वालाओंसे भी वह डरा नहीं। वह महावली उछलकर पाताल लोकमें चला गया। उसी प्रकार जिस प्रकार मुक्त तूम्वीफल जलके भीतर। अपने वाहु-वलसे वह समुद्रका सन्तरण करने लगा। पुण्यसे उसे काठका एक टुकड़ा मिल गया। हाथसे समुद्रको तैरता हुआ आया और दलवट्टण नगरके किनारे जा लगा। जो शत्रु राजाओंके मनका दमन करने वाला था। उसने पाटनद्वीपमें दलवट्टण नगर देखा। वहाँ राजा धनपाल धरतीका पालन करता था। उसे धनद और यक्ष नमस्कार करते थे। उसकी पट्टरानीका नाम वनमाला था। अपनी कोमल भुजाओंसे वह मालतीकी माला थी। उसके पहले तीन सुन्दर पुत्र थे, कण्ठ, सुकण्ठ और श्रीकण्ठ। नरपतिके उन पुत्रोंकी उपमा किससे दी जाये? पर्वतकके सुतकी तरह वे दिन-रात पढ़ते। उसकी एक पुत्री थी, जो स्नेहकी गुणमाला थी। मानो विधाताने स्नेहगुणमाला-का निर्माण किया हो। वह अपने रूप और उन्मुक्त सौन्दर्यसे शोभित थी। वहत्तर कलाओंसे सव मनुष्योंको मोहित करती थी। राजाने उसके विवाहके लिए मुनिराजसे पूछा कि प्रेमसे वताइए कौन वर होगा? यह कुमारी कन्या लड़कियोंमें विलक्षण है। मानो वह युवाजनोंके लिए रति है। शील और विवेकशालियोंमें यह अत्यन्त भली है। जो कामीजनोंके उरके लिए शल्य है। तव मुनि-ने कहा—"जो हाथोंसे जल तैरकर आयेगा, हे राजन्! यह उसके हाथोंके घरमें रहेगी।" ज्ञानी मुनिवरने यह प्रकाशित किया। वहाना वनाकर राजा यानपर चढ़कर घर गया।

घत्ता—वह समुद्रके तटपर आया, उसे देखकर अनुचर भौंचक्के रह गये। उनने उसने सलाह की कि यही वरवीर है। पुण्यसे ही यह राजपुत्र हाथ चढ़ा है ॥४६॥

४७

चरपुरिसहिँ रायहो संसिट्ठउ देव णिमित्तिएहिँ जं दिट्ठउ ।
सो वरु आयउ णाह गरिट्ठउ तरि जलणिहि वड-छाहि वइट्ठउ ।
छायातणु छाडिवि ण गच्छइ जहिँ णिविट्ठु तहिँ अज्जवि अच्छइ ।
ता णरिंदु मइ रहसो सुम्माइउ अवहीसरहिँ कहिउ सो आयउ ।
५ ता णरवइ सईँ सम्मुहुँ आयउ णयरिमाहँ उच्छाहु करायउ ।
रच्छा सोहइ मंगलु गिज्जइ भट्टहिँ विरदावलीय पढिज्जइ ।
इयउच्छाहें णयरि पवेसिउ सिरिवालु वि राएं संतोसिउ ।
सुह-वेलग्गहे गुणमाल-सुय सिरवालहो दिण्णी मुसलभुय ।

घत्ता—जा पुव्व-भवंतरि सुक्ख-णिरंतरि सिद्ध-चक्क-विहि जें विहिय ।
१० तें वयहँ पहावें मण-अणुराएँ गुणमाला सुंदरि लहिय ॥४७॥

इय सिद्धकहाए महारायसिरिवाल-मयणासुंदरि-देविचरिए, पंडितणरसेण-देवविरइए
इह-लोय-परलोय-सुहफल कराए रोर-दुह-घोर-कोढ-वाहि-भवाणुभव-
णासणाए मयणासुंदरि-रयणमंजूसा-गुणमाला-विवाह-
लंभो णाम पढमो परिच्छेउ सम्मत्तो ॥१॥

४७

चर पुरुषोंने राजासे कहा कि हे देव, नैमित्तिकोंने जो वताया था वह आ गया है, वरश्रेष्ठ। समुद्र तटपर वह वटवृक्षकी छायामें बैठा है। छाया उसे छोड़कर नहीं जा रही है। वहाँ जहाँ बैठा था वह, अभी वहीं है। तव राजाकी बुद्धि हर्षसे भर उठी कि अवधीश्वरने जो कहा था, वह बात पूरी हुई। राजा स्वयं सामने आया। नगरीके भीतर उसने उत्साह करवाया। रास्तेमें शोभनाओंने मंगल गीत गाये। भाटोंने यशकी प्रशस्तियोंका गान किया। इस प्रकार उत्साहपूर्वक नगरमें उसे प्रवेश दिया गया। राजाने श्रीपालको सन्तुष्ट कर दिया। शुभ वेला और लगनमें मूसलके समान भुजाओंवाली। गुणमाला कन्या श्रीपालको दे दी गयी।

घत्ता—सुखोंसे परिपूर्ण अपने जन्मान्तरमें उसने जो सुखोंसे परिपूर्ण सिद्ध चक्र विधि सम्पन्न की थी, उसी व्रतके प्रभावसे मनको अनुरक्त करनेवाली सुन्दरी गुणमाला उसने प्राप्त की ॥४७॥

सिद्धकथामें महाराज श्रीपाल और मदनासुन्दरी देवीके चरितमें पण्डित श्री नरसेन द्वारा विरचित, इस लोक और परलोकमें शुभ फल देनेवाला, भयंकर दुःख और कोढ़ व्याधि तथा जन्म-जन्मान्तरोंका नाश करनेवाला मदनासुन्दरी, रत्नमंजूषा और गुणमालाके विवाहवाला पहला परिच्छेद समाप्त हुआ।

सन्धि २

१

पुणु अक्खमि भव्व[1] गंजणु भउ सिरिपाल जहं
आयण्णहु तं पि सेट्ठिहि दुट्ठ-पवंचु-कहं।

पुणु जामायउ राएं वुत्तउ[2] जं मग्गहि तं देमि णिरुत्तउ।
देव ण मग्गमि कहमि समासहँ दिण दस-पंच अछमि तुव पासहँ।
५ करइ रज्जु सिरिवालु सइच्छइ गुणमाला भामिणि सुहु सुच्छइ[3]।
एत्तहि कहा पयट्टइ तेत्तहि रयणमँजूस महासइ जेत्तहि।
सच्चइं[4] सील-पइज्ज महासिरि णं सासण-देवी परमेसरि।
[5]णिय-पइ मेल्लि अण्णु जउ मोहिय तउ हउँ देव-सत्थ-गुरु-दोहिय।
धवलु सेट्ठि तउ करइ पयट्टणु कहा-संजोउ आउ दलवट्टणु।
१० पाविउ आइ दीव तहिं लग्गइ [6]रायहो पासि चलिउ लग्गइ।
दिट्ठु राउ धवलेण णवेप्पिणु मुत्ताहलइँ णवल्लइँ लेप्पिणु।
भणइ राउ को इहु कोसुंमिउ कहइ सेट्ठि हउँ धवलु सधम्मिउ।
राउ चवइ सिरिवालु समप्पइ थवइँ माडु वीडउ इह अप्पइ।
[8]भरिय तमोल-कपूर-सुपाडिय सोवणहं पासि सेट्ठिकहुं झाडिय।
१५ जइ पाविउ देखइ सिरिवालहँ तउ जणु हयउ सीसु वजतालहँ।
पुणु थिर-दिट्ठि करेविणु झाइय तउ सणिवाय-लहरि जणु आइय।
कवणु एहु आयउ कहिँ होंतउ पुच्छइ सेट्ठि [9]हियएँ पजलंतउ।
केणवि कहियउ राय-जमायउ सिरिवालु वि सायरु तिरि आयउ।

घत्ता—तहि सेठि परायउ विडहरि आयउ वइसिवि मंतिहि अक्खियउ।
२० इहु छइ सिरिवालु महु खयकालु रायकुंवरि परिणिवि थियउ ॥१॥

२

किउ मंतु सव्वु कूडहँ अयाण कोकविय डोम-मातंग-पाण।
अक्खिउ तहँ तुम्हहँ करहु णच्चु[1] रायंगणइ खेलहु पवंचु।
तुम्ह कहहु मज्झु सिरिवाल पुत्तु तउ लक्खु दामु दइहउँ णिरुत्तु।
तं[2] सुणिवि पहुत्तउ रायवार भीतरि गय पुच्छिवि पाडिहार।
अवलोइय डोमहिं राय-सहा जणु वइट्ठ गण-गंधव्व-सहा।
५ आरंभिउ णव-रस-देक्खणउ [3]हासउडिच्छल-हय-पेक्खणउ।

---

१. १. ख ग भव्व। २. ख ग उत्तउ। ३. ख ग सच्छइ। ४. क सच्च सील-पइजा रुरुढा सिरि। ५. ख ग णिय पय। ६. ग में निम्नलिखित पंक्ति अधिक है—"एत्तहिं तत्थ परोहण लग्गउ।" ७. ग थइय उवाडि तमोलु वियप्पइं। ख धवइ वालु वीडउ इह अप्पइं। ८. ग भरिय तमोल-कपूरसुखाडिय। सोवण्ण हउप सेट्ठि कहु झाडिय। ९. ख हियइ।

२. १. ग णच्चु। २. ख ते सुणिवि पहुत्तउ रायाहि राय। ३. ग हंसावलि छिलहट पेक्खणउ।

दूसरी सन्धि

१

हे भव्यजनो, अब मैं कहता हूँ कि श्रीपालका गंजन किस प्रकार हुआ। सेठकी दुष्ट प्रवंचना कथा भी सुनिए। राजाने अपने दामादसे कहा कि तुम जो माँगोगे वह मैं तुम्हें निश्चयसे दूँगा। (उसने कहा)—"हे देव, मैं कुछ नहीं माँगूँगा। संक्षेपमें अपनी बात कहता हूँ कि मैं दस-पाँच दिन आपके पास हूँ।" इस प्रकार श्रीपाल स्वच्छन्दतापूर्वक राज्य करने लगा। गुणमाला पत्नीके साथ सुखसे रहता था। इसी बीच कथा वहाँ पहुँचती है जहाँ कि महासती रत्नमंजूषा थी। सत्य और शीलकी अपनी प्रतिज्ञापर आरूढ़ वह मानो साक्षात् परमेश्वरी शासन देवी हो। (उसने कहा)—"यदि मैं अपने पतिको छोड़कर किसी दूसरेके प्रति मुग्ध होऊँ, तो मैं देव, शास्त्र और गुरुके प्रति विद्रोही बनूँ।" धवलसेठ वहाँसे कूच करता है और कथाका संयोग दलवट्टण नगर आ जाता है। वह पापी भी इसी द्वीपमें आ पहुँचता है और मिलनेके लिए राजाके पास जाता है। नये-नये मोती लेकर और प्रणामकर धवलसेठने राजासे भेंट की। राजाने पूछा—"इनमें कोई कोशाम्बीका है?" सेठने उत्तर दिया—"मैं हूँ, आपका साधर्मी जन।" राजा तब कहता है—"इन्हें (उपहारोंको) श्रीपालके लिए सौंप दो। श्रीपाल! इसे पानका बीड़ा दो।" उसने कपूर, पान और (सुपाडिय) सुपाड़ी स्वर्णपात्रमें रखकर सेठके पास रख दी। उस पापीने जैसे ही श्रीपालको देखा, वैसे ही मानो उसके सिर पर वज्र गिर गया। फिर जब उसने अपनी दृष्टि स्थिर करके सोचा तो उसे जैसे सन्निपात की लहर मार गयी। हृदयमें जलते हुए सेठने पूछा—"यह कौन है और कहाँसे आया है?" तब किसीने कहा—यह राजाका दामाद है। श्रीपाल, जो समुद्र तैरकर आया है।

घत्ता—तब सेठ वहाँसे चला और अपने डेरेमें आया। बैठकर मन्त्रियोंसे विचार-विमर्श करने लगा। उसने कहा—"मेरा क्षयकाल श्रीपाल तो यहाँ है। वह यहाँकी राजकुमारीसे विवाह करके रह रहा है" ॥१॥

२

उस मूर्ख (सेठ) ने सब प्रकार कूट मन्त्रणा की और उसने डोम, चाण्डाल आदिको बुलवाया। उनसे कहा—"तुम नृत्य करो, राजाके दरबारमें जाकर छल करो। तुम कहना कि श्रीपाल मेरा पुत्र है। मैं तुम्हें निश्चय ही एक लाख रुपया दूँगा।" यह सुनकर वे राजाधिराजके पास पहुँचे। भीतर जाकर उन्होंने प्रतिहारियोंसे पूछा। डोमोंने भीतर जाकर राजसभा देखी मानो साक्षात् गन्धर्वसभा ही बैठी हो। उन्होंने नवरसका प्रेक्षण प्रारम्भ किया। हास्य और छलसे

पुणु इंदजालु आरंभियउ णाडय-पेक्खणु-जणु विंभियउ ।
तंडव-ल्हासहिं जणु खोहियउ भँवरियाचरणहिँ उम्मोहियउ ।
भूमी-पोमासणु णडिउ ताहिँ सुर-णर-खेयर मोहियउ जाहिं ।
१० ता तुट्ठउ णरवइ किं करेइ आहरण-वत्थ सव्वहँ मि देइ ।
सिरिवालु आउ तंमोलु लेइ पुणु कोडि-दाम सव्वहँ मि देइ ।
एत्तहि आयउ सिरिवालु जाम आलिंगिवि एकहिं लयउ ताम ।

घत्ता—धाइय सह-भंडिवि णाडउ छंडिवि वायस जिम वायसु मिलहि ।
किंवि पुच्छहि पच्छहि किं वि तहि मुच्छहि रोवहि कूवारउ करहि ॥२॥

३

चिरु जीवहु पइँ धणवाल तुम्ह जिह दिण्णी णंदण भिक्ख अम्ह ।
हम जाति-डोम-चंडाल देव[1] खज्जइ अखज्जु पिज्जइ अपेव[2] ।
हम्मारउ णरवइ कवणु चोज्जु धोवी-चमार-घर करहिं भोज्जु ।
खर-कूकर-सूवर गसहिं मासु हम डोम-भांड कहियहि कणासु[3] ।
५ सो भणइ मज्झुरो छडउ पुत्तु णातियउ एक्कु थेरेहिं उत्तु ।
डोमिणिय एक्क अक्खिउ अजुत्तु यहु मज्झु देव पुत्तियहँ पुत्तु ।
अण्णेक्कु भणइ इहु मज्झु भाइ एक्केण वि कहियउ धीय-जाइ ।
मायंगिँ एक्क कहियउ कणिट्ठु एको[4] वि थिट्ठु पभणेइ जेट्ठु ।
मायंगिं एक्क पभणेइ एउ [5]एउ जि लहाइ मइं जणदेउ ।
१० [6]कलि करि भोयण लगि अम्हहूसि इहु पडिउ समुद्दहँ देव रूसि ।

घत्ता—ता णरवइ कुद्धउ, भणइ विरुद्धउ गहहु कहिउ तलवरहँ सिउ ।
मारहु चंडालु डोम-विटालु अम्हहँ सह मंडिवि कियउ ॥३॥

४

तलवरेहिँ सिरिवालु वि वद्धउ को मेटइ जो पुव्व-णिवद्धउ ।
णयरि मज्झि हाहारउ जायउ कवणु दोसु सिरिवालहि आयउ ।
अंतेउरु धाहहिं आरडियउ पिय-विच्छोहु गुणमालहि पडियउ ।
धाइउ धाइ उरहि पिट्टंती जहिं गुणमाल तिलउ साजंती ।
५ वस्तुबंध— काइँ सुंदरि करहि सिंगारु मुह-मंडणु किं करहि ।
काइँ णयण अंजणहिं अंजहि आलावणि किं आलवहि ॥
सिरिवालु णिग्गहणे लिज्जइ छंडि तमोल वि आहरण छंडवि हार सुतार ।
हंस-गमणि गुणमाल उठि करहि कंतकी सार ॥
कलमलिय कुँवरि वयणेण सिरिवाल-पास गय तक्खणेण ।
१० कर जोडिवि वोलइ तहो घरिणी पइँ तीए जुत्तउ णवतरुणी ।
तुहुँ णाह वियक्खणु कोडिभडु तुह पुरउ ण कोवि अण्णु सुहडु ।
पहु कवण जाइ णिव कहहि कुलु सिरिवालु भणइ इहु महु सयलु ।
गुणमाल लवइ अप्पउ हणउं पहु सच्चु पयासहि सुह-जणउ ।

---

३. १. ग देउ । २. ग अपेउ । ३. ग कण्णास । ४. ग इक्केवि । ५. ग रजलियाहु इमइ जणिय देव । ६. भोयण लग्गि विण्णिवि कलह रूसि ।

भरपूर प्रदर्शन प्रारम्भ किया और तब इन्द्रजाल। नाटकके देखनेसे लोग आश्चर्यमें पड़ गये। वे ताण्डव और लास्यसे क्षुब्ध हो उठे। भँवरियाके प्रदर्शनसे सब उन्मद हो उठे। उन्होंने भूमी पद्मासनका नाट्य किया। उसपर सुर, नर और विद्याधर मुग्ध थे। तब राजाने सन्तुष्ट होकर सभीको आभरण और वस्त्र दिये। श्रीपाल पान लेकर आया और वह सबको पान देने लगा। जैसे ही श्रीपाल इधर आया कि एकने आलिंगन करके उसे उठा लिया।

घत्ता—नाटक छोड़कर सभी भाँड़ दौड़े। जिस प्रकार कौए कौओंसे मिलते हैं उसी प्रकार वे एक-दूसरेसे मिले और बादमें कुछ पूछने लगे। तुम क्यों मूच्छित होते हो और विलाप करके क्यों रोते हो? ॥२॥

३

हे धनपाल, तुम चिरकाल तक जीवित रहो। जिस प्रकार तुम लोगोंने मुझे पुत्रकी भीख दी। हे देव, हम जातिसे डोम और चमार हैं, हम अखाद्य खाते हैं और अपेय पीते हैं। हे नरपति, हम लोगोंका कौन-सा शौक? धोबी और चमारोंके घर हम भोजन करते हैं। गधा, कुत्ता और सुअरका मांस खाते हैं। हम डोम भाँड़ और अन्नकण खानेवाले हैं। वह कहता है हम भाँड़ समझे जाते हैं। एक कहता है कि यह मेरा मझला बेटा है। एक और कहता है कि यह मेरा भाई है। एकने कहा यह मेरी कन्यासे जन्मा है। एक डोमने कहा यह मेरा छोटा भाई है। एक और ढीठने कहा कि यह मेरा बड़ा भाई है। एक चाण्डाली कहती है कि यह हमें जन्नदेवकी कृपासे मिला है। एक दिन भोजनके लिए झगड़ा करके यह गया। हे देव, यह रूठकर समुद्रमें जा पड़ा।

घत्ता—यह सुनकर राजा क्रुद्ध हो गया। एकदम विरुद्ध होकर राजाने तलवरसे कहा—इसे पकड़ो। इस चण्डाल और नीच डोमको मार डालो। इसने हमारे गोत्रमें दाग लगाया है ॥३॥

४

तलवरने श्रीपालको बाँध लिया। जो पूर्वजन्ममें लिखा जा चुका है, उसे कौन मेट सकता है। नगरके मध्य हाहाकार होने लगा कि आखिर श्रीपालका दोष क्या है? विलाप करता हुआ अन्तःपुर रो उठा कि गुणमालाको प्रियका विछोह हो गया। अपना उर पीटती हुई धाय दौड़ती हुई वहाँ पहुँची, जहाँपर गुणमाला तिलक लगा रही थी।

वस्तुबन्ध—वह बोली—"हे सुन्दरी, तुम शृंगार क्यों करती हो? मुँहका मण्डन क्यों करती हो? आँखोंमें अंजन क्यों आँज रही हो? वीणा (आलापिनी) क्यों बजा रही हो? श्रीपालको तो बेड़ियाँ डाल दी गयी हैं। तुम पान और गहने छोड़ो। स्वच्छ हार भी छोड़ो। हंसगामिनी गुण-माला उठो और अपने कन्तकी सुध लो।"

उसके वचनोंसे कुमारी गुणमाला काँप उठी और उसी क्षण श्रीपालके पास गयी। उसकी पत्नी उससे हाथ जोड़कर बोली—"तुम नवतरुणीसे युक्त हो। हे स्वामी, तुम विचक्षण कोटिभट हो। तुम्हारे सामने कोई दूसरा सुभट नहीं है। तुम्हारी कौन सी जाति है? तुम अपना कुल बताओ।" श्रीपाल कहता है—"यही मेरा सब कुछ है।" तब गुणमाला कहती है कि मैं अपना

ता पिय इम सिरिवालें भणिया विउ अच्छइ णारि सुलक्खणिया।
१५ सो पुच्छहि रयण-मँजूस तिया जो कहइ मोहि सो होउ पिया।
घत्ता—तहिं गय गुणमाल अइसुमाल अच्छइ रयणमँजूस जहिं।
जाइ सुकुलु सिरिवालहो कोडि-भडालहो तासु वत्त मुहि वहिणि कहि ।।४।।

५

ता पुच्छइ रयणमँजूस सहि सिरिवालु कवणु किर माइ कहि।
गुणमाल भणइ सायरु तरेवि अम्हारे पुरे थिउ पइसरेवि।
तह परएसिहि हउं दिण्ण कण्ण [1]अवडोमहँ किय सहवत्त अण्ण।
तिण्हि[2] पेक्खणु णच्चिउ भाव-जुत्तु पाणेहि भणिउ इहु अम्ह पुत्तु।
५ ते वयणें रायहुँ[4] कोहु जाउ सिरिवालु हणहु इहु पाणु पाउ।
मइँ पिउ आइवि पुच्छिउ सुतारु [3]तुहुँ पुच्छण पठई हउँ भत्तारु।
ता भणइ मँजूसा सयलजुत्ति हउँ फेडउँ रायहो तणिय भंत्ति।
गुणमाला रयणमँजूस तहिं गय विण्णि वि अच्छइ राउ जहिं।
विज्जाहरि पभणइ देव सुणि [4]सिरिवालहो जायउ कुलु सुगुणि।
१० सिरिवालु णरेसरु राय-वुत्तु हउँ विज्जाहरि महु देव कंतु।
इहि-तणउ णराहिउ अंगदेसु अरिदवणु ताउ चंपा-णरेसु।
हउँ कणयकेय-णरवइहि धीय जसु ठाउ णराहिव हंसदीव।
सहु लगि पापिहि किउ कूड सच्चि [5]राजु काटिवि खिउ[6] उवहि मज्झि।
धवलहो पवंचु इहु सयलु राय जं जाणहि तं तुहुँ करहि ताय।
१५ घत्ता—णिसुणेविणु वयणइँ कोपिउ पभणइ गउ तुरियउ धणवालु पहो।
सिरिवालहो उत्तउ कियउ अजुत्तउ जामायउ खमु करहि यहो ।।५।।

६

ता सिरिवालु भणइ अइ तुम्हहँ मंतु ण दिट्ठु ताय पुणु अम्हहँ।
[1]णिम्मित्तिउ जं कहइ णरेसर सो किइ असच्चु होइ परमेसर।
णउ मुणहि देव अम्हहँ पमाणु जो उवहि गणइ गोवग्र-समाणु।
मोकल्लि परिग्गहु सुहड थड हउँ एक णराहिव कोटिभड।
५ पायहँ लग्गउ धणवालु राउ खमु करि कुमर म करि विसाउ।
कर धरिवि चढ़ायउ करिवरिंद जो सेविउ अगणिय-भमरविंद।
लेविणु गउ णिय-मंदिरहु राउ वहु तूर-भेरि-मंगल-सहाउ।
णिय चावरि वइसारिउ तुरंतु किउ तिलयपट्टु जय-जय भणंतु।
गुणमाला-मणु रंजिउ पवाणु णं दालिद्दिय लद्धउ णिहाणु।
१० णं अंधें लद्धे वेवि णयण णं वहिरें फुट्टे भए सवण।
णं वज्झहि लद्धउ पुत्त-जुवलु लउ पाविय ण दयधम्मु अमलु।
णं वाइहि[1] सिद्धउ धाउवाउ गुणमालहिं तह संतोसु जाउ।

---

५. १. ग अवडोम कहियं वत्त अण्ण। २. ग तहि पेरणु। ३. ग तुहुं पुंछण पट्ठइ हउं भत्तारु। ४. ग सिरिपाल हो जायउ कुलु सुगुणि। ५. ग रज्जू कट्टि वि। ६. ग घिउ।

६. १. 'ग' प्रतिमें ये पंक्तियाँ अधिक हैं—दोसु णत्थि जम किउ भवि अम्हहं तिहि पावहु फलु सयल-समायहो दोसु ण सेट्ठिण पाण-वरायहो णउ छुट्टिज्जइ अज्जिय-कम्हहों।

घात कर लूँगी। प्रियजनसे तुम सच्ची वात कहो।" तव प्रियने गुणमालासे कहा कि "डिडोंके पास एक सुन्दर सुलक्षण नारी है। तुम जाकर उस सती रत्नमंजूषासे पूछो। वह जो कहेगी, हे प्रिये! मैं वही हूँ।"

घत्ता—तव गुणमाला वहाँ गयी, अत्यन्त सुकुमार रत्नमंजूषा जहाँ थी। वह वोली—"हे वहन, मुझे कोटिभट श्रीपालके कुल और जातिकी वात वताओ" ॥४॥

५

तव सखी रत्नमंजूषा पूछती है—"हे आदरणीय, यह वताओ कि यह श्रीपाल कौन है?" गुणमाला वताती है कि समुद्र तैरकर वह हमारे नगरमें आकर रहने लगा है। उस परदेशीके लिए मैं (कन्या) दे दी गयी हूँ। अव डोम दूसरी हजारों वातें कर रहे हैं। उन्होंने भावपूर्ण प्रेक्षण और नृत्य किया है। डोमोंने दूसरी वात कही है। उनके वचनोंसे राजाको क्रोध आ गया। "श्रीपालको मार डालो" यह राजाका आदेश है। हमने आकर अपने प्रिय पतिसे पूछा। उसने हमें तुमसे पूछने के लिए भेजा है। तव पूर्णयुक्ति वाली रत्नमंजूषा वोली—"मैं राजाकी भ्रान्ति दूर करूँगी।" गुणमाला और रत्नमंजूषा दोनों वहाँ गयीं, जहाँ राजा था। विद्याधरी वहाँ वोली—"हे देव, सुनिए। श्रीपालका जन्म अच्छे और गुणी कुलमें हुआ है। श्रीपाल राजपुत्र है। मैं विद्याधरी हूँ, परन्तु वह मेरा पति है। हे राजन्! इनका अंगदेश है। चम्पानरेश अरिदमन इनके पिता हैं। मैं राजा कनककेतुकी पुत्री हूँ। उनका स्थान हंसद्वीप है। मेरे लिए इस पापीने कूट साक्ष्य (कपटाचरण) किया है। उसने रस्सी कटवाकर उन्हें समुद्रमें गिरा दिया। हे राजन्, यह सव धवलसेठकी प्रवंचना है। अव आप जो ठीक समझें, हे तात, वह करें।"

६

घत्ता—यह वचन सुनकर राजा क्रुद्ध होकर वोला। धनपाल तुरन्त गया और श्रीपालसे वोला—"मैंने वहुत अनुचित किया, हे दामाद, तुम मुझे क्षमा करो" ॥५॥

तव श्रीपालने कहा—"यह तुम्हारा अतिवाद था। हे तात, आपने हमारा मन्त्र नहीं समझा। नैमित्तिकने जो कुछ कहा है वह असत्य कैसे हो सकता है? हे देव, मेरी शक्तिकी वात मत पूछिए जो समुद्रको भी गोखुरके समान गिनता है। मैंने सुभट समूहको पकड़कर छोड़ दिया। हे राजन्, मैं अकेला कोटिभट हूँ।" धनपाल राजा उसके पैरोंपर गिर पड़ा और वोला—"हे कुमार, आप विषाद न करें।" हाथ पकड़कर उसने उसे गजराजपर चढ़ाया। जो अनेक भ्रमर-समूहसे सेवित था। उसे लेकर राजा अपने महलमें गया, अनेक नगाड़े, भेरी और मंगल शब्दोंके साथ। उसे अपने सिंहासनपर वैठाया, और जय-जय शब्दके साथ तिलककर उसे राजपद दे दिया। गुणमालाका मन विशेषरूपसे रंजित हुआ, मानो किसी दरिद्रने खजाना पा लिया हो। मानो अन्धेने दो आँखें पा ली हों। मानो वांझ स्त्रीने दो पुत्र पा लिये हों। मानो पापीने पवित्र दयाधर्म पा लिया हो। मानो वादीने धातुवाद सिद्ध कर लिया हो। गुणमालाको उससे इतना सन्तोष हुआ।

घत्ता—पियमेलहिँ तुट्ठी पणवइ जेट्ठी पाइँ पडिवि धणवाल-सुव ।
हउँ उरिणु ण तुम्हहँ अवरहँ इहि उवयार मँजूस तुव ॥६॥

७

मंजूसा पुणु भेटिउ सुरंगु [१]पिय-चलणअंते धरि उत्तमंगु ।
वल्लह-पय झाडे[२] केसभार पुणु अग्गे[३] लोटीय वार वार ।
उट्ठाविय[४] आलिंगिय वरेण मुहु चुंविउ सामी-[५]महवरेण ।
उच्छंगे लएवि पुच्छिय पिएण चंगी मँजूस अच्छहि सुहेण ।
५ मंजूस कहइ एकंत-गोट्ठि अइसउ सुखु देखउं धवलु सेट्ठि ।
इय अच्छहि सुह-कीलाइ जाउ धणवालु कुविउ वणिवरहँ ताउ ।
णिउ जंपइ मारहु धवलु सेट्ठि पाणह समेउ पाविट्ठ धिट्ठि ।
धरि वोल्लिउ धवलु अमेह-कुंडि खर-रोहणु किउ तहो मुंडु मुंडि ।
सह पाण विगोइय महाय राय छिंदे कर-णासा-कण्ण-पाय ।
१० पुणु सेट्ठि मरावइ जाम राउ छंडावण तहँ सिरिवालु आउ ।
वोलइ कुमारु मा मारि राय इह होंतइँ मइँ गुणमाल पाय ।
सिरिवालु भणइ मा करि विसाउ तुहुँ सेट्ठि महारउ धम्म-ताउ ।
पुत्तहो[६] वप्पहो विवहारु जुत्तु जं लहणउ तं महु देहि वित्तु ।
[७]सिरिवाल लियउ तं सयलु वित्तु अप्पणउ वि जंतउ लियउ सव्वु ।
१५ पुणु सेट्ठिहि किउ आमंतणउ दिण्णउ तहो खउ-रसु भोयणउ ।

घत्ता—देखेविणु भत्तिय गुणगण-जुत्तिय फुट्टिवि हियडउ णरय गउ ।
तहिं दुक्ख-परंपर सहिय णिरंतर सेट्ठि णरय पर-तियहँ लउ ॥७॥

८

अच्छइ सुहेण [१]अरिदवण-पुत्तु गुणमाला-रयणमँजूस-जुत्तु ।
ता आयउ वणिवरु एकु तित्थु सिरिवाले पुच्छिउ कहि पसत्थु ।
जं दिट्ठु अपुरवु कहि णिरुत्तु णिय देस-मँडलु जुत्तउ अजुत्तु ।
ता कहइ सेट्ठि गुणगण-विसालु जो सव्व-सलक्खणु अइ-गुणालु ।
५ कुंडलपुर-णामें देव रम्मु तहिँ मयरकेउ णरवइ सुधम्मु ।
[२]अंगरुह विण्णिवि जियउणु मारु जीवंतु अवरु सुंदरु कुमारु ।
कप्पूर-तिलय णामेण धी तहि चित्तलेह णामेण धीय ।
सउ-वहिणिउ तहि संवंधिणीय विण्णाण-जाण-रइ-वंधणीय ।

घत्ता—दुइजी जगरेह अवर सुरेह गुणरेहा मणरेह तहँ ।
१० रंभा जीवंती पुणु भोगवती रइरेहा अच्छरिय जहँ ॥८॥

---

७. १. 'ग' पय जुवलअंत । २. ग झाडि । ३. ग अग्गें । ४. ग उट्ठाविवि । ५. न गहवरेण । ६. ग पुत्तहु ।
७. ग प्रतिमें ये पंक्तियाँ नहीं हैं—ता साच्च धम्मउ जोवहि णिउत्तु । वणिवरहिं भणीयउ एह जुत्तु ॥
८. १. ग सणेह । २. ग अंगरुह विण्णिजि णिजियउ मेरु ।

घत्ता—प्रिये, इस गलतीको क्षमा करो। जेठीको प्रणाम करो। धनपाल-सुत तुम इसके पैर पड़ो। मैं तुमसे न इस जन्ममें और न दूसरे जन्ममें ऋणमुक्त हो सकता हूँ। हे रत्नमंजूषा, तुम्हारा इतना उपकार मेरे ऊपर है ॥६॥

७

मंजूषाने तब प्रियसे भेंट की। प्रियके चरणोंमें उसने अपना सिर रख दिया। केशभारसे प्रियके पैर पोंछे और फिर आगे आकर वह बार-बार लोटी। उस महावरने उठाकर उसका आलिंगन किया और उसका मुँह चूम लिया। गोदमें बैठाकर प्रियने उससे पूछा—"हे रत्नमंजूषा, क्या तुम सुखसे रही?" एकान्त गोष्ठीमें रत्नमंजूषाने बताया कि धवलसेठसे मैंने अतिशय सुख देखा। इस प्रकार वे दोनों सुख-विलास करने लगे। इधर धनपाल वणिग्वर धवलसेठ पर क्रुद्ध गया। राजाने कहा—"धवलसेठको मार डालो। प्राणों समेत यह पापी नष्ट हो जाये।" उसने कहा कि "धवलसेठको अमेह कुण्डमें पटक दो। मूँड़ मूड़कर उसे गधेपर बैठाओ। चण्डालोंके साथ इसे भी कलंकित करो। उसके हाथ, नाक, कान और पैर छेद दो।" और इस प्रकार जब सेठको राजा मरवा रहा था, तब उसे छुड़वानेके लिए श्रीपाल आया। कुमारने कहा, "हे राजा, तुम इसे मत मारो। इसीके होनेसे ही मैं गुणमालाको पा सका।" श्रीपालने सेठसे भी कहा कि तुम विषाद मत करो। हे सेठ, तुम हमारे धर्मपिता हो। इसलिए दोनोंमें पुत्र और पिताका व्यवहार ही युक्त है। जो मुझे लेना है वह धन मुझे दे दो। इस प्रकार श्रीपालने उससे सब धन ले लिया और जाते हुए अपना भी सब धन ले लिया। फिर सेठको आमन्त्रित कर उसे षड्रस भोजन कराया।

घत्ता—श्रीपालकी गुणसमूहोंसे युक्त भक्ति देखकर धवलसेठका हृदय विदीर्ण हो गया। वह नरकगतिमें गया। परस्त्रियोंके कारण, जहाँ वह दुःख परम्पराको निरन्तर झेलता रहा ॥७॥

८

अरिदमनका पुत्र (श्रीपाल) सुखसे रहने लगा, गुणमाला और रत्नमंजूषाके साथ। तब इतनेमें वणिग्वर वहाँ आया। श्रीपालने उससे कुशल-कामना पूछी। जो कुछ तुमने अनोखी बात देखी हो वह सुनाओ। अपने देश और मण्डलके युक्त-अयुक्त समाचार सुनाओ। तब दूतने कहा कि वहाँ गुणगणसे विशाल एक सेठ है जो सर्वगुणोंसे सम्पन्न और अत्यन्त गुणवाला है। कुण्डलपुर नामका एक सुन्दर नगर है। उसमें मकरकेतु नामका सुधर्मी राजा है। उसके दो पुत्र हैं जिन्होंने कामदेवको जीत लिया है। एकका नाम जीवन्त है और दूसरेका सुन्दर। कर्पूरतिलक नामकी उसकी पत्नी है। उससे चित्रलेखा नामकी लड़की है, जो विज्ञान और रतिमें निष्णात है।

घत्ता—दूसरी है जगरेखा। एक और सुरेखा, गुणरेखा, मनरेखा, रम्भा, जीवन्ती, भोगमती और रतिरेखा जैसे अप्सरा हो ॥८॥

९

वस्तुबंध—जो णच्चेसइ पडह वाएण सउ-हाव-भाव संजुत्तउ।
सो परणेसइ सयल ते रायकुमरि सउ-कण्ण-जुत्तउ॥
जासु पटह-वाएण पुणु उच्छहिँ णडहिँ विचित्त।
सिरिवाल-सामी णिसुणि तसु केरउ ते सुकलत्तु॥

५ आयण्णिवि सेट्ठिहि वयणगइ तहिँ गउ सिरिवालु वि अमलमइ।
तहि दिट्ठी सुंदरि ससिवयणी गल कंदलि लोलइ हार-मणी।
ता भणइ कुमरु णाडउ णडहि घायउ मुयंगु तुहुँ णच्चिसहि।
ता धरिउ तालु चचपुट्ट मुयंगु सा चित्तलेह णच्चिय सुरंगु।
जयमंगल-तूरइँ वज्जियाइँ कण्णडियइँ सरसइँ णच्चियाइँ।
१० एक्केण सहिउ सउ परणियाउ ससुरें सिरिवालु समण्णियाउ।
रहवर-हयवर-गयवर-घणाइँ करहइँ दिण्णइँ कर-कंकणाइँ।
ता मयरकेउ रंजिउ मणेण संतोसिउ जणु कुंडलपुरेण।
[2]जा अच्छइ सुहेण जामायउ ता तहिँ एकु पुरिसु संपायउ।
घत्ता—सो भणइ णवेप्पिणु पय पणवेप्पिणु विण्णत्ती अवधारि पहु।
१५ इह अत्थि पसिद्धउ वहुगुण-रिद्धउ कंचणपुरु णामेण तहु॥९॥

१०

तहिँ वज्जसेणु णामें णरिंदु विहवेण पराजिउ जेण इंदु।
तहो कंचणमाला पिय-घरिणी जहि रूवें जित्तिय सुर-रमणी।
सुय चारि देव पढमउ सुसीलु गंधव्वु जसोहु विवेय-सीलु।
तहो कण्णा णाम विलासमइ णिय-गमण-विजित्तिय-हंसगइ।
५ वस्तुबंध—राउ[1] सुंदरि अत्थि णउसयइँ
सविलास सविज्जमइँ परिणि देव रइ-सुक्खु माणहि।
कंतइँ कुसलइँ कुच्छरइँ सुरय-रंगु ते वहु विजाणहि॥
सव्वहँ जेट्ठ विलासमइ तुव विरहे संतत्त।
चल्लहि कुँवरि-पसाउ करि परणहि सयल कलत्त॥
१० ता भणइ दूउ रइ-रमण-हारि जो चित्तलेह परिणइ कुमारि।
तहो णव सय पुणु वि णिमित्तिएण इय कहियउ आयम-जुत्तिएण।
तं सुणिवि कुमरु संचालियउ गउ णयरहो दिट्ठउ वालियउ।
ता परिणिय कण्ण विलासमइ णव-सयइँ ताहँ पुणु सुद्धसइँ।
राएं सिरिवालु संमाणियउ पुण्णाहिउ इहु संदाणियउ।
१५ दिण्णइँ भंडारइँ मणहराइँ पुणु दिण्ण तुरंगम-साहणाइँ।
कयवइ दिवसा तहिँ करिवि रज्जु पुणु करइ वीरु पत्थाण-कज्जु।
एक्को जि सहसु एक्को ण अहिउ चालिउ अंतेउरु सयल-सहिउ।
घत्ता—पुणु सहु कण्णडियहिँ, गय-घड-गुडियहिँ, चलिउ वीरु दलवट्टणु।
वहु-समउ णरिंदहिँ, कुवलय-चंदहिँ, सिरिवालु वि अरि-दलवट्टणु॥१०॥

---

९. १. ख क-ण जसइ। २. ग अच्छइ सुहिण कुमारु जाम ता एकु पुरिसु संचंतु ताम।
१०. १. ग राय

९

वस्तुवन्ध—जो नगाड़ा वजाकर और भी दूसरे हावभाव और विभ्रमसे युक्त सौ कन्याओंको जीत लेगा, राजकुमारी चित्ररेखाके साथ वे सौ कन्याएँ उससे विवाह कर लेंगी। जिसके नगाड़ा वजानेसे वे उत्सवमें नाचेंगी, हे श्रीपाल सुनिए, वे उसीकी पत्नियाँ होंगी। सेठके वचन सुनकर अमलमति श्रीपाल वहाँ गया। वहाँ उसने चन्द्रमुखी सुन्दरीको देखा। उनके गलेमें कन्धौरा और मणिहार हिल रहे थे। उससे कुमारने कहा कि तुम नाट्य करो। मृदंग वजाता हूँ तुम नाचो। तव उसने 'च च पु ट' ताल पर मृदंग वजाया। चित्रलेखा उसपर नाचने लगी। जयमंगल नगाड़े वजने लगे। कन्याएँ सरस नृत्य करने लगीं। अकेले ही सौके साथ उसने विवाह कर लिया। ससुरने श्रीपालका सम्मान किया और उसे रथवर, अश्व, गजवर, धन, ऊँट और कंचन भेंटमें दिया। राजा मकरकेतुका मन खूव सन्तुष्ट हुआ और कुण्डलपुरके लोग भी प्रसन्न हुए। दामाद वहीं सुखपूर्वक रह रहा था कि एक आदमी वहाँ आया।

घत्ता—चरणोंमें प्रणामपूर्वक वह वोला—मेरी विनतीपर ध्यान दिया जाये। यहाँपर अत्यन्त प्रसिद्ध, वहुतसे गुणोंसे समृद्ध कंचनपुर नामका नगर है ॥९॥

१०

उसमें वज्रसेन नामक राजा है। उसने वैभवमें इन्द्रको पराजित कर दिया है। उसकी कंचनमाला नामकी सुन्दर पत्नी है। जिसके रूपने इन्द्राणीको जीत लिया है। उसके चार पुत्र हैं—सुशील, गन्धर्व, जसोह और विवेकशील। उसकी एक विलासवती कन्या है, जिसने अपनी चालसे हंसकी गतिको पराजित कर दिया है।

वस्तुवन्ध—विलास और विद्यासे परिपूर्ण उसकी नौ सौ राजकुमारियाँ हैं। उनसे हे देव, विवाह कीजिए और रतिसुखका आनन्द लीजिए। वे कान्ताएँ कुशल हैं। सुरतिरंग और विज्ञानमें कुशल हैं। उनमें सवसे वड़ी है विलासमती जो तुम्हारे विरहमें सन्तप्त है। चलिए और कुमारीपर प्रसाद करिए और सभी कन्याओंसे विवाह कीजिए।

दूत कहता है—"सुन्दर और मौन धारण करनेवाली चित्रलेखासे जो विवाह करेगा वही उन नौ सौ कन्याओंसे भी विवाह करेगा। ऐसा आगमयुक्तिको जाननेवाले नैमित्तिकने कहा है।" यह सुनकर कुमार चल पड़ा। नगरमें पहुँचकर उसने कन्याओंको देखा। वहाँ उसने विलासमतीसे विवाह किया और नौ सौ पवित्र सतियोंसे। राजाने श्रीपालका सम्मान किया। पुण्याधिकोंका यही सम्मान होता है। उसे सुन्दर भण्डार दिये और घोड़े आदि साधन दिये। कितने ही दिनों तक उसने वहाँ राज्य किया, फिर वह वीर वहाँसे कूच कर गया। एक हजार एक अन्तःपुर उसके साथ चला।

घत्ता—शत्रुदलको चूर-चूर करनेवाला वह वीर कन्याओं और कवचोंसे सजी हुई गजघटा और कुमुदोंके लिए चन्द्रमाके समान राजाओंके साथ दलवट्टण नगरके लिए चल पड़ा ॥१०॥

११

	कंचणपुरु छंडिवि चलइ जाम	आइवि भेटिउ चर-पुरिसु ताम।
	पहु वसइ णिरंतर देस-गाम	तहिं ठावा कोकणु दीउ णाम।
	जसु-रासिविजउ णामें णरेसु	णं सग्गु मुइवि आयउ सुरेसु।
५	चउरासी राणी रूव-खाणि	जसमाला-देवी पट्टराणि।
	पण णंदणु तहो पढमउ हिरण्णु	णेहाउलु जोहु जियारिकण्णु।
	तहो दुहियइँ सोलह-सय-गुणड्ढ	सोहग्गगउरि जेट्ठी वियड्ढ।
	पुणु वीई तहि सिंगारगोरि	पउलोमी तहि तीजी किसोरि।
	रण्णा चउथी पंचमी सोम	संपइ छट्ठी सत्तमिय पोम।
१०	अट्ठमी देव ससिलेह तीय	जसरासि विजय जसमाल धीय।
	अवरइँ सह वहु-णरवइहि सुवा	संवंधी सह सिरिवाल तुवा।
	अट्ठहु जो भणइ वयण-गइ	सो परिणइ सोलह-सय णिवइ।
	जेट्ठी जहि साहस-सिद्ध-चोरि	गउ पेक्खंतह सव्वु सिंगारगोरि।
	पउलोमी तहिं कच्च-रा सुमिट्ठ	रण्णा पंचाइणु सीहु सिट्ठ।
१५	सोमा कह कासु पियाउ खीरु	संपय कइ कहँवि ण दिट्ठु धीरु।
	पोमा कह कासु विधत्तु तेइ	ससिलेहा सो तहि काइं करेइ।

घत्ता—वर-वयणु सुणेप्पिणु सिंहु चलेप्पिणु ठाणा कोकण आउ सही।
अक्खिउ सहुं कण्णउं तुम्ह वलिमण्णउ अप्पणी वत्त[1] कही॥११॥

१२

सोहग्गगवरि-समस्सा—
　　"जहँ साहसु तहँ सिद्धि।"
　　सत्तु सरीरहँ आयतउ दइवायत्ती वुद्धि॥
　　एत्थु म कायउ भंति करि जहिँ साहसु तहिँ सिद्धि॥१॥
५ सिंगारगोरी-वचनं—
　　"गउ पेखंतहं सव्वु।"
　　णउ वंचिउ खद्दउ ण विकिउ ण संचिउ दव्वु।
　　रावलि जूव-पलेवणइँ गउ पेखंतहँ सव्वु॥२॥
पउमलोमी दंदोलि सिरीवालु भणइ—
१०　　रयणायरु थोरउ कहइ दद्दुरु कूव-पइट्ठु।
　　जेहि ण खद्धउ णारियलु तहो कच्चरा सुमिट्ठु॥३॥
रण्णादेवी उत्तं—
　　"ते पंचाइण सीह।"
　　सील-विहूणे जे वि णर तिण्ह कीलेहु मलीह।
१५　　जे चारित्तह णिम्मले ते पंचाइण-सीह॥४॥

११. १. ग आपणी वात कही।

११

कंचनपुर छोड़कर जैसे ही उसने कूच किया कि इतने में एक चर पुरुषने आकर उससे भेंट की। वह बोला, "हे स्वामी, कोकपद्वीप नामका एक स्थान है, उसमें बहुत देश और गाँव सघन बसे हुए हैं। उसमें यशोराशि विजय नामका राजा राज्य करता है। वह इतना सुन्दर है कि मानो इन्द्र ही स्वर्ग छोड़कर आया हो। रसकी खान, उसकी चौरासी रानियाँ हैं। उसमें जसमाला देवी मुख्य रानी है। उसके पाँच पुत्र हैं, उनमें पहला पुत्र है हिरण्य। स्नेहाकुल योद्धा और शत्रुकन्याओंको जीतने वाला। उसकी गुणोंसे योग्य सोलह सौ कन्याएँ हैं। उनमें सौभाग्य गौरी जेठी और विदग्ध है। दूसरी है शृंगार गौरी। तीसरी है पुलोमा। चौथी है रण्णा, पाँचवीं है सोमा, छठी है सम्पदा, सातवीं है पद्मा और आठवीं है शशिलेखा। यशोराशि, विजया और यशमालाकी कन्याएँ और भी दूसरे राजाओंकी सौ कन्याएँ हैं जो तुम्हारे लिए हैं। जो उन आठ कन्याओंके आठों प्रश्नोंका उत्तर देगा, वह राजा सोलह सौ कन्याओंसे विवाह करेगा। जेठी कहती है—"जहाँ साहस है, सिद्धि दासी है।" शृंगार गौरी कहती है—"देखते-देखते सब कुछ चला गया।" पुलोमा कहती है—"काचरी मीठी होती है।" रण्णा कहती है—"पंचानन ही शेर है।" सोमा कहती है—"क्षीर किस मुँहसे पियाऊँ?"। सम्पत्ति कहती है—"धीर कौन दिखाई देता है?"। पद्मा कहती है—"तेज किससे बढ़ता है?"। शशिलेखा कहती है—"उसका क्या किया जाये?"

घत्ता—चरके वचन सुनकर सिंह श्रीपाल चलकर थाणा कोकण जा पहुँचा। लड़कियोंसे बोला—"तुम्हारी बलिहारी जाता हूँ। अपनी-अपनी बात कहो ॥११॥

१२

(१) सौभाग्य गौरी—

जहाँ साहस है वहाँ सिद्धि है।
शरीरका शत्रु आलस्य है, बुद्धि भाग्यके अधीन है।
इसमें कुछ भी भ्रान्ति मत करो, जहाँ साहस है वहाँ सिद्धि है।

(२) शृंगार गौरी वचन—

देखते-देखते सब चला गया।
धर्म अर्जित नहीं किया, कुछ खाया नहीं, संचय भी नहीं किया द्रव्य। राजकुलमें द्यूत (जुआ) देखते (खेलते) हुए सब कुछ चला गया।

(३) पउलोमी घुमक्कड़ श्रीपालसे कहती है—

कुएँमें बैठा मेढक, समुद्रको छोटा बताता है।
जिसने नारियल नहीं खाया उसके लिए कचरियोंका रस ही मीठा लगता है।

(४) रण्णादेवी कहती है—

वे पंचानन सिंह हैं।
शीलसे रहित जो भी मनुष्य हैं वे मलिन वस्तुओंसे क्रीड़ा करते हैं, परन्तु जो चारित्र्य से निर्मल है पंचानन (इन्द्रियों के लिए) सिंह है।

सोमकला-वचन-गति—

"कासु पियावउँ खीरु?"
रावण सिद्धी विज्ज दहमुह इक्कु सरीरु ।
ता केकसि चिंताविथउ कासु पियावउँ खीरु ॥

२० संपदादेवी भणति—

"सो मइं कहँवि ण दिट्ठु ।"
सातउ सायर हउँ फिरिउ जंबूदीव पइट्ठु ॥
तत्ति पराइ जु ण करइ सो मइँ कहँवि ण दिट्ठु ॥६॥

पद्मा-वचनं—

२५ "काइं विढत्तुउ तेण ।"
कोंती जाए पंच सुव पंचउ पंच-पिएण ।
गंधारी सउ जाइयउ काइँ विढत्तउ तेण ॥७॥

चन्द्रलेखा कथयति—

"सो तहि काइँ करेइ ।"
३० सत्तरि जासु [1]चउग्गलिय वालिय[2] परिणेइ ।
अच्छइ पास [3]वइट्ठरि सो तहि काइँ करेइ ॥८॥

णाणा-पयारेण सिरिवालो समस्सा पूरेइ—

[4]अट्ठमिहिं गाहु फेडियउ जाम णयरहिँ[5] कोलाहलु भयउ ताम ।
णर-णारीयण वहु कियउ रोलु ठाणाकोकण-हल्ला-कलोलु ।
३५ जससेणविजउ आइयउ ताउ देवाविउ तहिँ णीसाण-वाउ ।
पडु-पडह तूर वज्जिय महंत [6]भेरी-काहल-संखइँ रसंत ।
परिणाविउ सोलह-सइ कुमारि [7]विज्जाहरि णं अच्छरिय णारि ।
हय-गय-रह-करहइँ वाहणाइँ दाइज्जइँ मणि-रयणइँ घणाइँ ।
वहु हार सुतार हिरण्णु वण्णु अवराउँ[8] दिण्णु चउरंगु सेण्णु ।
४० जंपहि णिव-सुय पंच वि कुमार जुवरायपट्टसु तिभुवणसार ।
तुहुँ वंदणीउ सिरिवाल तेम [9]पंचहँ पंडव महि विण्णु जेम ।
अम्हहं छट्ठउ तुहुँ परमभव्वु पण-दव्व-माहि जिम जीव-दव्वु ।
अम्हहँ[10] पंचहँ तारणु तुहुतेम परसमय देव जिण-समउ जेम ।
इय जंपि अराहिउ वहु-पयारु पर तो वि ण तहिँ थक्कउ कुमारु ।
४५ सोलह-सइ लइ चालिउ खणेण जे मुणि भासिय अवहीसरेण ।
पंचहि पंडिय-सुपएसएहिँ परिणिय सहसइँ कण्ण तेहिँ ।
मल्लिवाहि [11]सत्तसइ विवाहिय सहसु तिलंग-देसि परिणाइय ।
एवमाइ अंतेउर-सहियउ चाउरंगु वलु सेणहँ मिलियउ[12] ।

---

१२. १. क चउगइ । २. क वालि । ३. ग वइट्ठुलिय । ४. क अट्ठहंमि । ५. ग णयरहं । ६. ग भेरिय काहल संखइ महंत । ७. ग विज्जाहरि अछरि अरु कुमारि । ८. ग आऊरि । ९. क पंच हरिउ वइ सीयारि जेम । १०. अम्हहं पंचहं तारणु तुहं पि । पर समउ देव जिण समय तंपि ॥ ११. ग सयसत्त । १२. ग महियउ ।

(५) सोमकला का वचन—

किसे पिलाऊँ क्षीर ?
रावण को जव एक शरीर और दस मुखवाली विद्या सिद्ध हुई, तव केकशी (रावणकी माँ) को चिन्ता हुई कि वह किस मुँहसे दूध पिलाये ?

(६) सम्पदादेवी कहती है—

वह मुझे कहीं भी नहीं दिखाई दिया ।
सातों समुद्रोंमें मैं घूमा और जम्बू द्वीपमें भी । जो दूसरेको सन्तप्त नहीं करता, नहीं सताता, ऐसा आदमी मुझे दिखाई नहीं दिया ।

(७) पद्मावचन—

उसने क्या जोड़ा ?
कुन्तीने उत्पन्न किये पाँच पुत्र, जो पाँचों के पाँच प्रिय थे । गन्धारीने सौ पुत्र पैदा किये, उससे उसका क्या वढ़ गया ?

(८) चन्द्ररेखा कहती है—

उसके लिए क्या किया जाये ?
जिसकी सत्तर और चार (७४) की आयु हो चुकी है । फिर वालासे विवाह करता है, वह उसके पास वैठी हुई है, वह उसका क्या करे ?

इस प्रकार श्रीपाल ने नाना प्रकार से समस्यापूर्ति की ।

ज्यों ही उसने आठवीं गाथा हल की त्यों ही नगरमें कोलाहल होने लगा । नर-नारियोंने वहुत शव्द (आश्चर्य व्यक्त) किया । थाना कोकणमें हलचल मच गयी । इतनेमें जयसेन वहाँ आया और उसने नगाड़े वजवाये । वड़े-वड़े पट-पटह और तूर्य वाजे वजने लगे । भेरी, काहल और शंख गूँज उठे । उसने सोलह सौ कुमारियोंसे विवाह किया । वे मानो विद्याधरी या अप्सराएँ थीं । घोड़े, गज, रथ, ऊँट आदि वाहन और वहुत-से मणिरत्न दहेजमें दिये । सोनेके वहुतसे स्वच्छ हार और समूची चतुरंग सेना उसे दी । राजा कहता है कि ये पाँच कुमार हैं किन्तु भुवन-श्रेष्ठ हे युवराज, यह पट्ट तुम्हारा है । हे श्रीपाल, तुम उसी प्रकार वन्दनीय हो जिस प्रकार पाँच पाण्डवोंमें विष्णु । हमलोगोंमें तुम छठे भव्य हो, जैसे पाँच द्रव्योंके भीतर जीव द्रव्य । हम पाँचोंको तारनेवाले तुम हो, उसी प्रकार जिस प्रकार हे देव, परसिद्धान्तोंमें जिनसिद्धान्त उद्धार करता है । इस प्रकार उन्होंने तरह-तरहसे कहकर उसे रखना चाहा । परन्तु कुमार वहाँ रुका नहीं । सोलह सौ वधुओंको लेकर एक क्षणमें चल पड़ा, जैसा कि अवधिज्ञानी मुनिने कहा था । पंच पाण्डवोंके सुप्रदेशमें उसने दो हजार कन्याओंसे विवाह किया । मल्लिवाडमें सात सौको व्याहा । और एक हजार कन्याओंसे तेलंग देशमें विवाह किया । इस प्रकार अन्तःपुर और चतुरंग

दलवट्टणु पट्टणु संपत्तउ गुणमाला-मँजूस अणुरत्तउ ।
किर अच्छइ सुहेण जामायउ रयणिहि अद्धरत्ति चिंताविउ ।
५० जइ ण जाइ भेटउँ उज्जेणि तउ लेइ दिक्ख पिय सुक्ख-जोणि ।
धणवालु राउ विण्णविउ ताम जाएवउ मइँ पट्ठवहि माम ।
[13]जइ ण जाउँ तो भास ण वुच्चइ मयणासुंदरि तउ पडिवज्जइ ।

घत्ता—इय भणिवि कुमारु णिज्जिय-मारु गय-वर-रूढउ विमलमइ ।
मयजलभिंभारुणु सिंदूरारुणु घंटियालु[14] करि मंदगइ ॥१२॥

५५

१३

चाउरंगु बलु चलिउ तुरंतउ काहल-तूर-भेरि वाजंतउ[1] ।
रायहो चउ-पासिउ अंतेउरु पिंडवासु रुणझुणियउ णेउरु ।
सोरट्ठिय-राणा सलवलियइँ लयउ कप्पु अगिवाणहँ चलियइँ ।
[2]पंच-सयइँ परिणिय सोरट्ठिय अवरइँ पंच-सयइँ मरहट्ठिय ।
गुजरात सय चारि विवाहिय मेवाडिय वे सय परिणाविय ।
५ अंतरवासिय सेव कराविय कण्ण-छाणवइ तहिँ परिणाविय ।
[3]सवर-पुलिंद-भील-खस-वव्वर लए डंडि ते झाडिय मच्छर ।
मालव-देस मज्झि जे वंकुड [4]ते सइँ विक्कमेण कय संकड ।
वारह-संवच्छर सम्पत्तउ उज्जेणिहि आइयउ तुरंतउ ।

घत्ता—सिमिरु मुक्कु चउपासइँ कोडि-सहासइँ खोहु वि णयरहं जाइयउ ।
१० हल्लोहलि हूवउ [5]सयलु पुरु कवणु णराहिउ आइयउ ॥१३॥

१४

सेणावइ तहो कडयहो थप्पिवि गउ पायार सत्त णहू लंघिवि ।
गउ एकल्लु घरिणि देखण वरु मयणासुंदरि झावइ जिणवरु ।
सासु हिं अग्गइ भणइ विसूरिय आजु अवहि सामिय[1] की पूरिय ।
जइ णवि आजु[2] आउ तुम्ह णंदणु [3]कालि करउँ तउ दिक्खा-मंडणु ।
ता सिरिवाल-माय वारइ तंहु[4] दिवसु एक्कु पडि वारहि कुलवहु ।
५ 'किम वारउ' सुंदरि इम कहियउ 'अवरु ताउ परमंडल-गहियउ' ।
मुणिउ ण माइ ताहु किं होसइ कहिँ-होंतउ सामिउ आवेसइ ।
वारह-वरिस जोण[5] पिउ आवइ तउ महु सासु दिक्ख परिभावइ ।
तउ सिरिवालें वोलिउ सुंदरि उग्घाडहि किवाड णिय-मंदिरि ।
ताम झत्ति तहो वारु उघाडिउ गंपि जणणिपय कमलु जुहारिउ ।
१०

१३. ग जइ जाउ ण तो भासिउ चलेइ मयणासुंदरि पवज्ज लेइ । १४. क घट्टियालु ।

१३. १. ग वज्जंतउ । २. ग पंच सयइं परिणिय मरहट्ठिय । ३. ग समर पुलिंद मिल्ल खस वव्वर लइय दंडि ते छाडिय मच्छर । ४. ग ते सहविक्कमेण कय संकुड । ५. ग विभय भू वउ कवणु णराहिउ आइयउ ।

१४. १. ग सामिय किय पूरी । २. ग अज्जु । ३. ग कल्लि । ४. ग वरइत्त हो । ५. ग जइ ।

सेनाके साथ वह दलवट्टण नगरमें आया और वहाँ गुणमाला और रत्नमंजूषा में अनुरक्त होकर दामाद श्रीपाल सुखपूर्वक रहने लगा। एक दिन आधी रातको वह सोचने लगा कि यदि अब मैं उज्जैन मिलने नहीं जाता तो मेरी प्रिया मैनासुन्दरी सुख देने वाली दीक्षा ले लेगी। उसने राजा धनपालसे विनय की कि मैं जाऊँगा, हे ससुर, मुझे भेज दो। अगर मैं नहीं जाऊँगा तो मेरी बात नहीं रहेगी और मैनासुन्दरी तप ग्रहण कर लेगी।

घत्ता—यह कहकर कामदेवको जीतनेवाला विमलमति कुमार मन्दगतिवाले गजवरपर बैठकर चला, उसपर मदजलसे भ्रमर गुनगुना रहे थे। सिंदूरसे लाल, और बजती हुई घंटियोंवाला।

१३

चतुरंग सेना तुरन्त चल पड़ी तूर्य और भेरी बजाती हुई। राजा के चारों ओर अन्तःपुर था। अन्तःपुरके नूपुरकी रुनझुन झंकार हो रही थी। सौराष्ट्रका राणा एकदम सकपका गया। श्रीपालने अग्निबाण चलाकर उससे कर वसूल कर लिया और सौराष्ट्रकी पाँच सौ कन्याओंसे विवाह कर लिया और भी पाँच सौ महाराष्ट्रकी कन्याओंसे। गुजरातकी चार सौ और मेवाड़की नौ सौ कन्याओंसे उसने विवाह किया। अन्तर्वेदके लोगोंसे उसने सेवा करवायी और वहाँकी छियानवे कन्याओंसे उसने विवाह किया। शबर, पुलिन्द, भील, खस और बब्बरने ईर्ष्या छोड़कर उसकी सेवा की। मालव देशके भीतर जो दुष्ट लोग थे, उसने स्वयं अपने पराक्रमसे उनमें संकट उत्पन्न किया। इस प्रकार बारह वर्ष पूरे होते ही वह तुरन्त उज्जैन नगरीमें आ गया।

घत्ता—चारों ओर उसने अपनी सेना छोड़ दी और चारों ओर सहस्र कोटि सेना नगरमें चली गयी। सारे नगरमें हलचल मच गयी कि कौन राजा आ गया है ?॥१३॥

१४

सेनापतिको छावनीमें स्थापित कर वह अकेला सात परकोटेको लाँघकर अपनी पत्नीको देखनेके लिए घर गया। मदनासुन्दरी जिनवर का ध्यान कर रही थी और सासके आगे रो-रोकर कह रही थी कि आज स्वामी की अवधि समाप्त होती है, यदि आज भी तुम्हारा बेटा नहीं आता तो कल मैं दीक्षा ले लूँगी। तब श्रीपालकी माँने दीक्षा लेनेसे एक दिन और उस कुलवधूको रोका। सुन्दरी ने कहा—"मुझे मना क्यों करती हो। पिताको शत्रुमण्डलने घेर लिया है। हे माँ! तुमने नहीं सोचा कि उनका क्या होगा ? वह (श्रीपाल) भी सादर कहाँसे होकर आवेंगे ? (क्योंकि उज्जैनको शत्रुसेनाने घेर लिया है।) बारह बरस में भी यदि प्रिय नहीं आता, तो हे सास, मुझे केवल दीक्षा ही अच्छी लगती है।" इतनेमें श्रीपालने कहा—"हे सुन्दरी! अपने घर का दरवाजा खोलो।" उसने द्वार खोला। श्रीपालने जाकर माँ के चरणकमल छुए तथा मदना-

पुणु आलिंगिय मयणासुंदरि लेहु देवि पहिरहु मोत्तियसरि ।
मेहजाय[6] पंगुरइ जि वासिउ [7]थत्ती-हल-पमाणु रुइ वासउ ।
घत्ता—ता भणइ णरिंदु कुवलयचंदु चाउरंगु बलु सज्जियउ ।
सयल वि अंतेउरु णिज्जिय रइवरु तुज्झु पसाएँ अज्जियउ ॥१४॥

१५

दोण्णि वि कर धरेवि गउ तेत्तहिँ[1] खंधावारु अवासियउ जेत्तहिँ[2] ।
अंतेउर-परिवार सणेहें किउ परिणामु सयल उच्छाहें ।
रयण मँजूस आइ गुणमाला सुंदरि पाइँ पडिय वणमाला ।
चित्तलेह जग-रेह सुरेहा रंभा जीवंती गुणरेहा ।
५ मयरकेय-णिव-सुय जणमोहा
पाय-पडिय सह मयणासुंदरि णिय-रुवें जिणिहँ[3] जिणिय पुरंदरि ।
[4]पविसेण-कणयमालहि सुव णवसइ सविलासमई जु धुव ।
[5]तहि पणवाविय मयणासुंदरि पउलोमी जिम इयरह अच्छरि ।
पुणु आइय तहिँ सुहागगोरि सिंगारगोरि सइ[6]-चित्त-चोरि ।
१० पुणु रण्णा चंदा [7]संपईय पोमावइ ससिलेहा विणीय ।
जसरासिविजय-णिव-तणिय धूव तिण्हु पणामिय पुणु पयपाल-सूव ।
सिद्ध-चक्क वउ कियउ जु कामिणि अट्ठ-सहस-उप्परि[8] भइ[9] सामिणि ।
घत्ता—जंपइ रइ-मंदिरि मयणा सुंदरि परिहउ अक्खउं णाह सहो ।
सह-महि-णिभंछी अइ-दुग्गंछी कम्मु विणिंदउ ताय महो ॥१५॥

१६

मयणासुंदरि मंतु पयासिउ मेरउ कम्मु ताय उवहासिउ ।
जइ अम्हारउ कहिउ सुणिज्जहु[1] तउ तायहँ सहु[2] एम भणिज्जहु[3] ।
कंवलु पहिरिवि गले[4] कुरहाडी एम भेट जइ करइ महारी ।
तो संधाणु अत्थि णो अत्थिय एह वातणउ[5] होइ पसत्थिय ।
५ अइसउ वोलि[6] दूउ पट्ठायउ । लेक्खु लेवि उज्जेणिहिं आयउ ।
पडिहारें रावलि पइसारिउ सीसु णाइ णरवइ जयकारिउ ।
दइ आसणु गउरवि वइसारिउ दिण्णु तमोलु कियउ संभासणु ।
पुच्छिय वात सुकुसल-पयासणु को इहु णरवइ पुच्छिउ राएँ ।
दूए वात[7] कहिय अणुराएँ
१० यहु दीवाहिउ णरवइ जुंजइ दीव-समुद-धाड-सह भुंजइ ।
जं लेहइं लिहियउ तं किज्जइ धम्म-दुवारु मग्गि[8] जाइज्जइ ।

---

६. ग मेहजाइ । ७. ग थत्ति लइय माणु रुइ वासउ ।
१५. १. ग तेत्तहुं । २. ग जेत्तहुं । ३. जिणि । ४. ग कणयप्पह पविसेणह जे सुव । ५. ग तेहि वि । ६. ग सयचित्त । ७. ग संपईय । ८. ग उपरि । ९. ग भइ ।
१६. १. ग सुणिज्जइ । २. ग सिहुं । ३. ग भणिज्जइ । ४. ग गलय कुठारी । ५. ग वत्त । ६. ग अइसउ वुल्लिवि । ७. ग वत्त । ८. क भागि ।

सुन्दरी का आलिंगन किया। उसने कहा—"हे देवी, मोतियोंकी माला पहनो। मेघजातकी सुवासित साड़ी पहनो। धात्रीफलके प्रभाववाला और कान्ति से सुवासित।"

घत्ता—पृथ्वीचन्द्र राजा श्रीपाल बोला—"चतुरंग सेना सज्जित है और अन्तःपुर भी। हे देवी, आज मैंने तुम्हारे प्रसादसे कामदेवको भी जीत लिया है ॥१४॥

१५

उसके दोनों हाथ पकड़कर वह वहाँ गया कि जहाँपर पड़ाव था। अन्तःपुरने परिवारके स्नेहके कारण उत्साहपूर्वक मयनासुन्दरीको प्रणाम किया। रत्नमंजूषा और गुणमाला भी आयीं। सुन्दरियाँ उसके पैरोंपर गिर पड़ीं। चित्रलेखा, जगरेखा और सुरेखा, रम्भा, जीवन्ती, गुणरेखा। जनोंको मोहित करनेवाली और अपने रूपसे इन्द्राणीको जीतनेवाली मकरकेतु राजाकी कन्याने मदनासुन्दरीके पैर पड़े। वज्रसेन और कनकमालाकी विलासवती आदि नौ सौ पुत्रियोंने भी मदनासुन्दरीको प्रणाम किया। पद्मलोमा जैसी दूसरी अप्सराएँ भी वहाँ आयीं। इन्द्राणीका चित्त चुरानेवाली सौभाग्यगौरी और श्रृंगारगौरी, रण्णा, चन्द्रा, संवईय, पद्मावती और विनीत चन्द्रलेखा। यशोराशि विजयराजाकी पुत्री, इन्होंने भी राजा पयपालकी कन्या मदनासुन्दरी के चरण छुए। उस कामिनीने सिद्ध चक्र विधान किया था, इसीसे वह अठारह हजार स्त्रियोंकी स्वामिनी बनी।

घत्ता—अपने रतिमन्दिरमें मदनासुन्दरी बोली—"हे नाथ, मैंने अक्षय पराभव सहन किया है। सभामें मुझे बुरी तरह फटकारा गया। पिताजीने मेरे कामकी निन्दा की" ॥१५॥

१६

मदनासुन्दरीने अपने मनका रहस्य प्रकट करते हुए कहा कि "पिताजीने मेरे कर्म (या आचरण) का उपहास किया है। यदि आप मेरा कहना सुनें तो पिताजीसे यह कहिए कि कम्बल पहनकर गलेमें कुल्हाड़ी डालें और हमसे भेंट करें। तभी कुशल है, नहीं तो, कुशल नहीं है और यह अच्छी बात नहीं होगी।" ऐसा कहकर उसने दूत भेजा। वह लेख लेकर उज्जैन आया। प्रतिहारने उसे राजकुलमें प्रवेश दिया। उसने सिर झुकाकर राजाको नमस्कार किया। उसे आसन देकर गौरवके साथ बैठाया गया। पान देकर उससे बातचीत की। उसने राजाके दूतसे पूछा—"प्रजा तो सकुशल है?" राजाने पूछा—"यह कौन नरपति है?" दूतने प्रेमपूर्वक बात कही—यह राजा द्वीपाधिप है और योग्य है। द्वीप, समुद्र और सैकड़ों घाटोंका उपभोग करता है। इसलिए जो लेखमें लिखा है उसे आप अवश्य कीजिए। धर्मद्वारके मार्गसे ही तुम्हें आना चाहिए।

घत्ता—पयपालु वि कुद्धउ भणइ विरुद्धउ कवणु एहु को मण्णइ।
समरंगणि मारउँ महि विब्भाडिउँ करउँ रज्जु णिय-पुण्णइँ ॥१६॥

१७

मंतिहिँ संबोहिउ मालवइँ [1]राय-णीति [2]हारिय सामिय पइँ।
जइ पहु अम्हहँ कहिउ सुणिज्जइ तउ वलि एसहु वलु ण करिज्जइ।
म करि देव असगाहु णिरुत्तउ। सव्वहँ राय-कम्मु वलवंतउ।
५ मंतिहि वयणें[3] पहु उवसंतउ सम्माणिउ सो दूउ तुरंतउ[4]।
जह तुम्हि कहियउ तह भेटेसमि गयउ दूउ कहियउ सामीसिमि।
सिरिवालें मण्णाविय[5] सुंदरि खमहि देवि अम्हहँ परमेसरि।
सिरिवालें पुणु दूउ-विसज्जिउ समपरिवड्ढें[6] भेंट करिज्जउँ[7]।
मालवराउ चढिउ[8] साणंदे चंपाहिउ सिरिवालु गयंदे।
१० करुणदेवि सिरिवालु समायउ जय जय भणेवि मामु वुल्लाविउ।
कण्णदेव तुहुँ मइँ परियाणहि जामायउ सिरिवालु ण जाणहि।
तो आलिंगि विणयरि पवेसिउ चाउरंगु वलु सयलु वि तोसिउ।
पुणु भेटिय सातउ-सय राणा वालमित्त जे जीव-पराणा।
हार-डोर-सेहरइं समप्पिय कडय-चूड-कर-कंकण अप्पिय।
१५ सयल विदेस-देस किय राणा ये महु यावहु मित्त व राणा।
हट्ठ-सोह जा किय तहिँ अवसरि वाएसरि वण्णइ परमेसरि।
घत्ता—सिरिवालु पयट्ठउ पुरयणु[9] तुट्ठउ घरि घरि कियउ वद्धावणउ[10]।
मणि-मोत्तिय-मालहिँ खचिय-पवालहिँ मंदिर-मंदिर तोरणउ ॥१७॥

१८

जय-मंगल-सद्दहिँ लवहिँ संख भेरी-काहल-मंदल असंख।
रायंगणि कणयासणइँ देवि वयसारिउ सिरि सेसइँ भरेवि।
जिह गउरवणु कियउ सिरिवालहो तहो विसेसु किउ खंधावारहो।
चंपाउरि मणि सुमरिय तावहि किर सुहेण तहिँ अच्छइ जावहि।
५ ता पुच्छिउ उज्जेणिहि राणउ भणइ त चंपहिँ देउं पयाणउ।
पयपालेंण उत्तु जं किंपि वि अद्धउ रज्जु लेहि तुहुँ वंटिवि।
भणइ कुमरु पुणु एहु ण जुज्जइ [1]हो हो माम एम तं पुज्जइ।
मय-गलिय-गंड कुंजर रसंत आरूढउ णरवइ पट्टदंत[2]।
डिंडिम-दमाम वज्जिय णिसाण हिलि हिलि हिलंत खंचिय किंकाण।
१० रावत्त चडिय रणजुज्झमाण तोलंत खग्ग|दिढ-पहरमाण।
गय-घड चल्लिय घंटा-रवेण धय-वड-छत्तइँ रण-उच्छवेण।
घत्ता—सिरिवालु वि चल्लिउ महियलि हल्लिउ[3] अरि संकिय भेरी-रवेग।
सामंतइँ चलियइँ सुहडइँ मिलियइँ णहु छायउ हय-खुररवेंण ॥१८॥

१७. १. ग रायणीइं। २. ग हारिय। ३. ग वयणि। ४. ग णिरुत्तउ। ५. ग मन्नावि। ६. ग समपडिवद्धे। ७. ग करिज्वउ। ८. ग चलिउ। ९. ग लोयहिं दिट्ठउ। १०. ग वधावणउ।
१८. १. ग हो हो माम माम तं पुज्जइ। २. ग महंत। ३. ग लुइल्लिउ।

घत्ता—पयपाल राजा यह सुनकर क्रुद्ध हो उठा। वह विरुद्ध होकर बोला—"यह कौन है ? कौन इसे मानता है ? मैं उसे युद्धप्रांगणमें समाप्त कर दूँगा। उस योद्धाको जीतकर धरतीपर राज्य करूँगा अपने पुण्यसे" ॥१६॥

१७

तव मन्त्रीने मालवपतिको सम्बोधित करते हुए कहा कि "हे स्वामी, आप राजनीतिमें हार गये। यदि आप मेरा कहा सुनें तो इस वलवान्‌के साथ आपको अपनी शक्तिका प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। निश्चय ही देव आप असत्‌को पकड़नेका प्रयास न करें। हे राजन्, सबसे वलवान् कर्म होता है।" मन्त्रीके वचन सुनकर राजा शान्त हो गया। राजाने तुरन्त उस दूतका सम्मान किया और कहा—"तुमने जो कुछ कहा है, वह ठीक है, मैं भेंट करूँगा।" दूत वहाँसे चला गया और संक्षेपमें उसने वह वात श्रीपालको वता दी। तव श्रीपालने उस सुन्दरीको मनाया कि हे परमेश्वरी देवी, तुम क्षमा करो। श्रीपाल फिरसे दूतको भेजा कि वह (प्रयपाल) सेनाके साथ भेंट करें ? उसके साथ कर दिये। मालवराज सानन्द वाहनपर चढ़ गया। चम्पाधिप श्रीपाल भी हाथीपर आरूढ़ हो गया। करुणापूर्वक श्रीपाल आया और जय-जय शब्दके साथ उसने अपने ससुरको वुलाया। हे कर्णदेव, आप मुझे जानते हैं, क्या आप अपने दामाद श्रीपालको नहीं जानते ? तव उसने उसे अपने आलिंगनमें परिवेष्टित कर लिया। यह देखकर चतुरंग सेना सन्तुष्ट हो गयी। फिर उसने सात सौ रानाओंसे भेंट की, जो उसके वालसखा और उपराना थे। हार, डोर, शेखर उन्हें भेंटमें दिये गये। कटक, चूड़ा और हाथके कंगन समर्पित किये गये। सभी देश-विदेशके राना और भी जितने मित्र राना हैं, वे भी आये उस अवसरपर। वाजारकी जो शोभा की गयी, उसका वर्णन परमेश्वरी वागेश्वरी ही कर सकती है।

घत्ता—श्रीपालने नगरमें प्रवेश किया, पुरजन सन्तुष्ट हुए। घर-घर आनन्दवधाई हुई। प्रवालोंसे जड़ित मणियों और मोतियोंकी मालाओंसे घर-घरपर तोरण सजा दिये गये ॥१७॥

१८

शंखोंसे जयमंगल शब्द हो रहे थे। अगिनत भेरी, काहल और मन्दल (वाद्य) वज रहे थे। राजभवनमें श्रीपालको स्वर्णसिंहासनपर प्रणामपूर्वक वैठाया गया। श्रीपालको जैसा गौरव दिया गया उसी प्रकार उसकी सेनाका विशेष प्रवन्ध किया गया। वह सुखसे वहाँ रहने लगा। इतनेमें उसे अपने मनमें चम्पापुरीकी याद आयी। उज्जैनीके राजा पयपालने उससे (मनकी वात) पूछी। उसने कहा कि मैं चम्पाके लिए कूच करूँगा। तव राजा पयपालने जैसे-तैसे कहा कि तुम मेरा आधा राज्य वाँटकर ले लो। इसपर कुमार कहता है, यह उपयुक्त नहीं है। हे ससुर! वह आपको ही पर्याप्त है। तव राजा श्रीपाल मदजलसे गलितगण्ड एवं चिग्घाड़ मारते हुए मुख्य हाथीपर सवार हो गया। डिण्डिम, दमाम और निशान वज उठे। हिलते-डुलते निशान निकाल लिये गये। युद्धमें लड़नेवाले राजपुत्र सवार हुए। दृढ़ प्रहार करनेवाले वे अपनी तलवारें तौल रहे हैं। घंटा शब्दके साथ गजघटाएँ चलने लगीं। युद्धके उत्साहसे ध्वजपट और छत्र फहराने लगे।

घत्ता—तव श्रीपालने भी कूच किया। धरती हिल गयी। भेरीके शब्दसे वायु काँप उठा। सामन्त चले और योद्धा आपसमें मिल गये। घोड़ोंके खुरोंकी ध्वनिसे नभ छा गया ॥१८॥

१९

रायउत्त जे समरि धुरंधर सेव कराविय राय वसुंधर।
इय साहंतु देसु वइरायहँ कण्ण कुमारिउ परिणिउ रायहँ।
अट्ठ-सहस मणहर अंतेउर तेत्तिय पिंडवास[1] पय-णेउर।
चाउरंगु वलु मिलिउ असेसहँ [2]आये अंगदेस सुपएसहँ।
५ चंपा-णयरिहि णियडु परायउ वीरदमण[3] कहँ भट्टु परायउ।
भट्टइँ कहिउ जाहि मण अच्छहि धम्म-दुवारु दिण्णु खल गच्छहि।
जाहि जाहि विगुच्चिय आलवहि जीव-दाणु दिण्णउ सिरिवालहि।
पइँ जु भतीजउ मारि णिसारिउ सो सिरिवालु आउ पच्चारिउँ[4]
सिरिवालहो जं पउरिसु सीसइ सो महि-मंडलि कासु ण दीसइ।
१० आयण्णिवि भट्टहँ वयण[5]-भाउ अइ-कोपिउ जंपइ वीरराउ[6]।
संगरि जो मोडइ सुहड-थट्टु[7] को गणइ एहु सिरिवालु भट्ट[8]।

घत्ता—सिरिवालु णिभच्छइ[9] भट्टु पसंसइ सेवमाणु जहिँ अतुल-वलु।
तं तुज्झु वि माणहि वहु-विह-राणहि रण-अभंगु सिरिवाल-दलु ॥९॥

२०

जहिं[1] दट्ठारह-लक्ख वाणवइ देसु सो सेवइ उज्जेणी-णरेसु।
सोरठ-गूजर-वइ पंडिराउ।
[2]दलवट्टण धणवालहु सुवाइ[3]। मेलिउ सुकंठु सिरिकंठ आइ
तहिँ कणयकेय णंदण पियार। आवासे[4] चित्त-विचित्त वार
५ वहु इयर-राइ तहि को गणेइ। जहिँ तिलँगराय सेवा करेइ
तहि कासमीर कीर भडवाण। खस-वव्वर मेली अपमाणा
भडउच्छ पाटण आउ वराहिउ। सेवइ कच्छ-देस कच्छाहिउ
कोडि भडहँ पउरिसु सिरिवालहँ। णउ खल छुट्टहिँ सग्ग-पयालहँ
अज्ज वि किण्ह-वयण किं अच्छहिँ। लेविणु पाण गच्छि जइ गच्छहिं
१० अंगरक्ख जिण मेटहि आणा।कोवें तुज्झ सात-सय-राणा

घत्ता—कहिं जंवू कहिँ केसरि कहिँ हय वेसरि कहिँ रीरी सोवणु कहिं।
जहिं पहु सिरिवालु अरि-खय कालु तहिँ वीरहं ठांउ कहिं ॥२०॥

२१

जा जाहि भट्ट जंपहि असारु रण-महिं वंधिवि घल्लउँ कुमारु।
इम भणिवि दिण्ण संगाम-भेरि णिसुणेवि सद्दु खलभलिय वेरि।

---

१९. १. ग पिंडवासु। २. ग आइय। ३. ग वीरदमण तिहुं भट्टु पठायउ। ४. ग पचारिउ। ५. ग वयणुल्लउ। ६. ग वहु भल्लउ। ७. ग थट्टवि। ८. ग भट्टवि। ९. ग णिभसंइ।

२०. १. ग जसु-ठारह। २. ग जरासि विजउ कुंकुणहि आउ। तहि वज्जसेणु कंचणपुरेउ। कुंडल पुर वह जहिं मयर केउ। (उक्त पंक्तियाँ 'ग' प्रतिमें अधिक हैं) ३. ग सुवाउ। ४. ग सिरि कट्ठ आउ।

१९

युद्धमें धुरन्धर राजपुत्रोंसे उसने राजसेवा करायीं। इस प्रकार बहुतसे देश और उपराज्यों-को साधते हुए उसने बहुत-सी राजकन्याओंसे विवाह किया। आठ हजार सुन्दर अन्तःपुर उसके साथ था। इतना ही पदनूपुरवाला पिण्डवास। समस्त चतुरंग सेना मिल गयी। वे सुन्दर प्रदेश-वाले अंगदेशमें आये। वे चम्पानगरीके निकट पहुँचे। श्रीपालने वीरदमनके पास दूत भेजा। उसके मनमें जो बात थी वह दूतको बताते हुए उसने कहा कि "यही धर्मद्वार है। वह (वीरदमन) इसपर चलता है तो ठीक, नहीं तो उससे खरी-खरी बात कहो। तुमने बचपनमें मारकर निकाल दिया था। वह तुम्हारा भतीजा तुम्हें जीवनदान दे रहा है। तुम्हारा वही भतीजा आ गया है। वह तुम्हें बुला रहा है। तुम श्रीपालके पुरुषार्थको स्वीकार लो। उसका प्रताप त्रिभुवनमें किसे दिखाई नहीं देता ?" दूतके वचनोंका आशय जानकर वह वीर राजा कुपित होकर बोला—"जो समरघटामें सुभट समूहको मोड़ देता है, वह इस योद्धा श्रीपालको क्या समझता है ?"

घत्ता—इसपर, दूत कहता है—'तूँ अपनी प्रशंसा करता है, और श्रीपालकी निन्दा करता है जिसकी अपार सेना सेवा करती है। तुम भी उसे मानो, उसकी सेना बहुतसे रानाओंके कारण अभंग है ॥१९॥

२०

जिसके पास अट्ठारह लाख बानबे देश हैं, ऐसा उज्जैन नरेश उसकी सेवा करता है। सौराष्ट्र, गूजर, पंडिराज, दलवट्टणके राजा घनपालके बेटे सुकण्ठ, और श्रीकण्ठ भी आकर मिल गये। उसमें कनककेतुका भी प्यारा पुत्र है। चित्र-विचित्र वे भी आये हैं। और भी दूसरे राजा वहाँ थे, उन्हें कौन गिन सकता है ? वहाँ तिलकराज सेवा करता है। उसमें कश्मीर और कीरका राजा है। अगनित खस और बब्बर आकर इकट्ठे हो गये हैं। भड़ौच और पाटनके राजा भी आये। कच्छदेशके कच्छवाहे भी सेवा करते हैं। प्रवीर कोटिभट श्रीपालसे तू स्वर्ग और पाताल लोकमें भी जाकर नहीं बच सकता। आज भी कठोर वचन क्यों कहता है ? अपने प्राण लेकर जहाँ जा सके, वहाँ जाओ। अपने अंगदेशको बचाओ। आज्ञाको मत मेटो। तुमसे सात सौ राणा कुपित हैं।

घत्ता—कहाँ शृगाल और कहाँ सिंह; कहाँ घोड़ा और कहाँ गधा; कहाँ पीतल और कहाँ सुवर्ण ? जहाँ प्रभु श्रीपाल हैं शत्रुओंके क्षयकाल, अन्य वीरोंको स्थान कहाँ ? ॥२०॥

२१

तब चम्पानरेशने कहा—"हे भट्ट, तुम जाओ। तुम सारहीन बोलते हो। मैं कुमारको युद्धमें पकड़कर बन्दी बना लूँगा।" यह कहकर उसने रणकी भेरी बजवा दी। उसका शब्द सुनकर खल-बली मच गयी। वीरदमन तुरन्त उठा। मानो मतवाले हाथी पर आरूढ़ यम हो। हाथियोंकी घटाएँ चलने लगीं। धनुर्धारी उठकर, रथ और किक्काण खींचते हुए दौड़े। घर-घरसे बाकी राजपुत्र भी इकट्ठे होने लगे, जो युद्धमें शेष चतुरंग सेनाको जीत सकते हैं। अपने पतियोंसे स्त्रियोंका यह सन्देश वचन था—"हे प्रिय, मुझे श्रीनेत्र पट्ट लाकर देना।" एक कहती—"हाथियों-के गण्डस्थलोंसे उछलते हुए जितने भी मोती मिले हे प्रिय, उतने लाना।" कोई एक सरस प्रिया कहती है कि एक तलवार अपने पौरुषके प्रतीक स्वरूप मुझे देना।

पुणु वीरदमणु उट्ठिउ तुरंतु मयगलें आरुढउ णं कयंतु।
गयघड चालिउ सिंदूरराय कामिणि[1]-भुवंग-कर तुह विणाय।
५ रह-किक्काणइँ कढिज्जमाण[2] धाइय धाणुक्किय उट्ठमाण।
घरि घरि रावत्तहिं भरिय सेस रणि चाउरंगु वलु जिणहिं सेस।
णाहहु[3] संदेसें णारि करण सिरि णेत्त-पट्ट महु आणि रमण।
अरि-करि-कुंभत्थल-मोत्तियाइँ आणहि पिय पावहिं जेत्तियाइँ।
कवि भणइ एक्क पिय सरसियाउ असिवरु[4] णिय-पोरुसु मज्झु दाउ।

१० घत्ता—वीरदमणु पहु णिग्गउ समरि अभग्गउ सिरिपालहु दूएँ[5] अक्खियउ।
अरिदवणहु णंदणु परवल-मद्दणु पिक्खि समग्गउ पित्तियउ॥२१॥

वस्तुवंध—ताम कुद्धउ भणइ सिरिवालु
[6]रह सज्जहु गयघड गुरहु चढहु सुहड सण्णद्ध[7] सज्जहि।
पल्लाणहु वर तुरय देहु ढक्क रण गहिर-गज्जहि॥
१५ आरूढउ करि-कंधलु देहि असीस पुरंधि।
आयदेवि तोणा-जुयलु दिढ धणहरु सरसंधि॥

२२

लेहु लेहु पभणंतु पधायउ चाउरंगु वलु कहिँमि ण मायउ।
णिग्गय धाणुक्किय वि महंतइँ [1]धणु-गुण-वाण-पंति लायंतइँ।
संगाम-तूर-काहलिय सद्द तिवलिय गुंजा काहलिय-सद्द।
डव-डिंडिम-डिम तुरु-तुरु रसंति सुणि वीर-सद्दु रण-मुहि सवंति।
५ कस-घाहिय ताडिय वर-तुरंग असवारहिं णिज्जिय जहिं समग्ग[2]।
[3]मल्हंतिउ गय-घड वेरियाउ करढह-सद्दें णच्चंतियाउ।
वहु-छत्त-चिंधणहु छाइयाइं तहिं उभय-वलइँ रणे आइयाइँ।
पहरंति परोप्परु सुहड-मल्ल तीरी-तोमर वावल्ल-भल्ल।
[4]रावत्तहिं सउ रावत्त खलिय गय-घडहिं वि गय-घड सघणमिलिय।
१० पाइक्क भिडिय पाइक्किएहिं धाणुक्का सिउ धाणुक्किएहिँ।
ता उभय-वलइँ देखिवि महंत पुणु रइय-मंत मंतिहिँ विचित्त।

घत्ता—णिय मणि पहु वुच्चइ दोण्णि वि जुज्झइ समरि वि जु जित्तइ अज्जु।
सो सुहडहँ वंदिउ परियण-णंदिउ महियलि भुंजइ रज्जु॥२२॥

---

२१. १. ग कामिणि-भुयंग-कर तुह वि णाय। २. ग कछिज्जमाण। ३. ग णाहहु संदेसउ णारिवयणु। ४. ग फरु। ५. ग दूए। ६. ग रह सज्जहु गयवर गुडहु। ७. ग सण्णद्ध।

२२. ग १. धणु गुणहं वाण सज्जंत संत। २. ग वरतुरंग। ३. ग माल्हंतउ। ४. ग रावत्तहं सिउ रावत्त खलिय।

घत्ता—राजा वीरदमन निकल पड़ा। अरिदमनके पुत्र श्रीपालसे दूतने जाकर यह बात कही कि देखो, शत्रुओंका दमनकारी तुम्हारा चाचा आ गया है ॥२१॥

वस्तुबन्ध—तब क्रुद्ध होकर श्रीपालने कहा—रथ और महान् गजघटा सजाओ। हे सुभटो, तैयार होकर उनपर चढ़ाई कर दो। अश्वोंपर कवच चढ़ा दो और युद्धके गम्भीर बाजे बजाओ। वह हाथीके कन्धेपर चढ़ गया। इन्द्राणी उसे आशीर्वाद देने लगी। उसने दो तूणीर और धनुष ले लिया। और धनुषपर तीर चढ़ाया।

२२

लो लो, कहता हुआ वह दौड़ा। उसकी चतुरंग सेना कहीं भी नहीं समायी। बड़े-बड़े धनुर्धारी निकले। उन्होंने धनुषोंपर बाणोंकी पंक्ति चढ़ा ली। भयंकर संग्राम-भेरी बज उठी। तिवलिय गूँज उठी और काहल शब्द कर उठे। डवडिम डिम-डिम करने लगे। तूर्य तुरु-तुरु शब्द करने लगे। वीरशब्द सुनकर, योद्धा रण की ओर चले। अश्ववर कोड़ों की मारसे पीड़ित होने लगे। अश्वारोहियोंने वहाँ सब कुछ जीत लिया। मस्तीमें झूमती हुई गजघटा प्रेरित कर दी गयी। करहडके शब्दपर वह नाचने लगी। बहुतसे छत्र और पताकाएँ छा गयीं। दोनों ओरकी सेनाएँ युद्ध के मैदानमें कूद पड़ीं। वीर योद्धा एक-दूसरेपर तीरी, तोमर, बावल्ल और भालोंसे प्रहार करने लगे। राजपुत्र गिरने लगे। गजघटाएँ भी सघन घटाओंसे मिल गयीं। पैदल सेनाएँ, पैदल सेनासे भिड़ गयीं। धनुर्धारी धनुर्धारियोंसे भिड़ गये। दोनों ओरकी सेनाओंको देखकर मन्त्रियोंने राजकीय मन्त्रणा की (और कहा)।

घत्ता—"हे राजा, अपने मनमें सोचिए कि हम दोनों ही द्वन्द्वयुद्ध करें। युद्ध में जो जीत जाये, वह वीर परिजनोंसे अभिवन्दित धरतीपर राज करे ॥२२॥

२३

आयण्णिवि मंतिहिं वयण-गइ पहु वीरदमण-सिरिवाल वइ।
[1]अब्भिडिय सुहड णं दोण्णि सीह णं मत्ता मयगल रसिय[2]-जीह।
णं सुव्वउ सत्ति[3]-कुमारु सारि णं भिडिय चपलेँउ तल-पहारि।
णं रावण-लक्खण सुहड-मल्ल णं भीम-दुसासण धरिय-सल्ल।
५ णं भरहु राउ वाहुवलि कुमारु णं जिणवर णं रइणाहु सवरु[5]।
णं अज्जुणु कण्णु महापयंडु अब्भिडिय वेवि णं मत्त-संडु।
सुग्गीउ वि विड-सुग्गीउ जेम हणुवहो अक्खय जिम भिडिय तेम।
जिम भीमसेणु भिडियउ कम्मीरु[6] तिम वीरदमणु सिरिवालु वीरु।
घत्ता—दोण्णि वि जिह मयगल समरि समुज्जल एकमेक्क हय-मोग्गरइं।
१० पुणु[7] असिवर-धारहिँ णिसिय पहारहिँ मुचंति परोप्परु तीमरइं ॥२३॥

२४

कउतले[1] कुंतह लाइँ कटारिय एवमाइ वहु पहरण-चूरिय।
कर अप्फालिवि विण्णिवि धाइय मल्ल-जुज्झ पुणु समरि पराइय।
ठोक्कर-करण-चरण-संधाणइँ[2] पइसहिँ खलहिँ वलहिँ विण्णाणइँ।
वीरदमणु सिरिवालेँ हक्किउ मरहि वप्प कहि जाहिँ ससंकिउ।
५ करणु देवि[3] गले लायउ ठोक्करु करु[3] करेण चूरिवि किउ सक्करु।
साहुंकारु कियउ सुर-विंदहिँ कुसुम-माल घालिय सुरसुंदहिँ।
वीरदमणु वंधिवि रण-मुक्कउ खम करि सुव तुहुँ अम्ह गुरुक्कउ।
पालि पुहवि मणि-कणय-गुरुक्कउ वीरदमणु वोलइ वियसंतउ।
हउं अवराहिय दिक्खा[4] जुत्तउ तुज्झि जि रज्जु पुत्त इउ उत्तउ।
१० घत्ता—कणय-तार-वर-कलसहिँ जणमण-हरिसहिँ सिरु कुवरहँ अहिसिंचिउ।
चामीयर-घडियउ रयणहिं जडियउ पट्टवंधु सिरिवाले किउ ॥२४॥

२५

तवयरणु भणिवि गउ वीरदमणु सिरिवालु पइट्ठउ णियय-भवणु।
घरि-घरि मोत्तिय[1] रंगावलीउ उब्भे तोरण-मयगल-गुलीउ[2]।
पुणु अइहव-मंगल-चारु गीउ वंभणहिं वेय-उच्चारु कीउ।
वेयालिय-गण सलहंति ताहि णारियणु णडइ वहु-उच्छवेहिँ।
५ सिगिरिय-छत्तहिं-चामर धरेहिँ[3] सामंत-मंति-साह-णियारेहिँ।
सेविज्जमाणु सिरिवालु तहिँ तहिँ अंगदेसु चंपापुरिहिं।
पट्टे[4]-महाएवि मयणासुंदरि अट्ठ[5]-सहस-अंतेउर-उप्परि।
सत्तंगरज्ज भुंजइ सुहेण पय पोसिय चारिउ-वण्ण तेण।
पहिलारउ साहिउ धम्म-तित्थु पुणु अत्थु कामु मोक्खवि पसत्थु।

---

२३. १. ग अविभडियरहं। २. ग रणि अभीह। ३. ग संति। ४. ग णं भिडिउ वापुलउ तल पहारि। ५. ग समरु। ६. ग कमारु। ७. ग हणु।

२४. १. ग क्कोंतल कोंतल तहय कटारिय। २. ग संदाणइं। ३. ग दिक्खइं।

२५. १. ग मुत्तिय रंगावलियउ। २. क गुडीउ। ३. ग चमरएहिं। ४. ग तहिं पट्ट मयणसुंदरि सिरीय। ५. ग जा अट्ठसहस मज्झहं गरीय।

२३

मन्त्रियोंके वचन सुनकर वीरदमन और राजा श्रीपाल दोनों योद्धा आपसमें भिड़ गये, मानो दोनों सिंह हों। या मतवाले दो चिग्घाड़ते हुए हाथी हों। मानो कुमार सुन्द उपसुन्द हों। मानो दो चपल तलप्रहार करनेवाले (चाँटोंसे प्रहार करनेवाले) भिड़ गये हों। मानो रावण और सुभद्र योद्धा लक्ष्मण आ भिड़े हों। मानो आशंकित होकर भीम और दुःशासन भिड़ गये हों। मानो कुमार वाहुवलि और भरत भिड़ गये हों। मानो जिनवर और कामदेवका युद्ध हो। मानो अर्जुन और महाप्रचण्ड कर्ण हों। वे ऐसे जा भिड़े मानो दो मत्त साँड़ हों। जैसे सुग्रीव और कपट सुग्रीव। हनुमान् और अक्षयकुमार जिस प्रकार भिड़े, उसी प्रकार जिस प्रकार भीमसेन और कम्मीर-वीर आपसमें भिड़े थे उसी प्रकार वीरदमन और श्रीपाल आपसमें भिड़ गये।

घत्ता—दोनों ही मतवाले गजके समान थे। युद्धमें समुज्ज्वल, एक-दूसरेको मुद्गरसे मारने लगे। फिर उन्होंने पैनी तलवारोंसे प्रहार किया। एक-दूसरेपर 'तोमर' छोड़ने लगे ॥२३॥

२४

कोंतल कुन्त और कटारें, ये और इस प्रकारके वहुत हथियार चूर-चूर हो गये। तब हाथ फटकारते हुए दोनों दौड़े। अव युद्धके मैदानमें मल्लयुद्ध प्रारम्भ हुआ। ढोक्कर, करण और चरणोंका संघात। कौशलसे वे घुसते, स्खलित होते और मुड़ते। तव श्रीपालने वीरदमनसे कहा—"वेचारे, तुम मरोगे, शंकित तुम कहाँ जाओगे? तव उसने करण दावसे गलेमें ढोकर (दाव) डाल दिया और हाथको हाथमें लेकर चूर-चूर कर दिया। तब सुरसमूहने जय-जयकार किया और उसके ऊपर पुष्पमालाएँ अर्पित कीं।" वीरदमनको वाँधकर श्रीपालने मुक्त कर दिया और उसने कहा—"तुम मुझे क्षमा करो, मैं तुम्हारा पूज्य हूँ। मणि और सोनेसे मण्डित महान् धरतीका तुम पालन करो।" तब वीरदमन हँसता हुआ बोला—"मैं अपराधी हूँ, मैं दीक्षाके योग्य हूँ। हे पुत्र, यह तुम्हारा राज्य है। यही ठीक है।"

घत्ता—जनमनोंको हर्षदायक सोनेके स्वच्छ श्रेष्ठ कलशोंसे कुमारके सिरका अभिषेक किया गया। स्वर्ण निर्मित रत्नोंसे जड़ा राजपट्ट श्रीपालके सिरपर बाँध दिया गया ॥२४॥

२५

तपश्चरणकी वात कहकर वीरदमन वहाँसे चला गया। श्रीपालने अपने भवनमें प्रवेश किया। घर-घर मोतियोंकी रांगोली की गयी। दोनों ओर तोरण वाँधे गये। मदगल हाथी गरजने लगे। अत्यन्त भव्य और सुन्दर गीत गाये जाने लगे। ब्राह्मण वेदोंका उच्चारण कर रहे थे। वैतालिक जी भर प्रशंसा कर रहे थे। वहुतसे उत्सवोंमें नारियाँ नृत्य कर रही थीं। ध्वजचिह्नों और छत्रोंके साथ चँवर ढोर रही थीं। सामन्त, मन्त्री और सेना श्रीपालकी सेवामें तत्पर थे। उस अंगदेशकी चम्पानगरीमें मदनासुन्दरी पट्टरानी थी, अट्ठारह हजार रानियोंके ऊपर। वह समग्र राज्यका सुखपूर्वक उपभोग करने लगा। उसने चारों वर्णोंकी प्रजाका पालन किया। सबसे पहले उसने धर्म-का साधन किया, फिर अर्थ, काम और प्रशस्त मोक्षका भी।

१० घत्ता—अरिदवणहो णंदणु णयणाणंदणु सहावइट्ठु सुहेण जहिँ।
वहु-फल-दल-फुल्लइँ सुट्ठु-णवल्लइँ, लइ आयउ वणवालु तहिं ॥२५॥

२६

पिय-भासण अरि-तासण णरेस वद्धावउ मुणि गुण-गण-असेस।
[1]जो जोइट्ठाण-गुणु जो विणीउ णर-सुर-खेयर-अहिवंदणीउ।
मल-मलिण-गत्तु चारित्त-पत्तु तव-त्रय-पहाणु विय-संत-वत्तु[2]।
सो संजयंतु मुणि आउ तेहिँ उववण-किउ सरइ वसंतु जेहिँ।
५ छइ वासपूज[3]-जिणहरि विचित्तु आयउ वंदहुँ अरिदवण-पुत्तु।
पय सत्त छँडिअ आसणु निवेण गुरु[4] णविउ परोक्खइँ विणइ तेण।
[5]णर-णियरहि परिवारिउ णरिंदु अंतेउर-सहियउ णं सुरिंदु।
पय णेउर-सद्दइँ रुणुझुणंति चल्लिय जुवईं[6] मुणि-गुण थुणंति।
आइय वंदण पुरलोय सव्व जे दूर-भव्व आसण्ण-भव्व।
१० घत्ता—जिण मंदिरि दिट्ठउ सिलहि णिविट्ठउ पिंडीदुम-छाया-वरेण।
तिय-पहाहिण देविणु विणउ करेविणु वंदिउ मुणिवरु णर-वरेण ॥२६॥

२७

धम्म-वुद्धि[1] दिण्णिय सब्भावें भाव-सुद्धि-सह णिव अणुराएं।
जल-चंदण-अक्खय-कुसुमोहें चरु-दीवहिं धूवहिं फल-ओहें।
पुणु कुसुमंजलि जिण-पय देप्पिणु दंसणु णाणु चरित्तु भणेविणु।[2]
पय पुज्जिवि वंदिवि अहिणंदिउ कहि पहु परम-धम्मु जगवंदिउ।
५ कहइ भडारउ हिंसा-वज्जिउ[3] धम्मु सुसच्चें वयणें पुज्जिउ।
पर-दविणु वि पर-तिय वज्जिज्जइ पुणु परिगह-पमाणु णिव किज्जइ।
तिण्णि गुण-व्वय सिक्ख चयारिं वि ग्रहु सायार-धम्मु सिरिवालु वि।
पुणु पणवेप्पिणु पुच्छइ णरवइ कहि परमेसर अम्हहँ भवगइ।
केण वि पुण्णें अइसउ जायउ अतुल-मल्लु तिहुयण[4]-विक्खायउ।
१० केण वि कम्में भउ रायहं मिणु ? पुणु केण कम्में कोढिउ णिग्घिणु।
कम्में केण वि सायरे घल्लिउ केण वि पावें डोमिउ वोल्लिउ।
मयणासुंदरि महु अइभत्ती[5] कहि परमेसर कारण-जुत्ती।
घत्ता—आयण्णिवि वयणइँ मुणिवरु पभणइ पुण्ण-पाव-फलु अक्खमि।
भो सुणि महिवाल णिव सिरिवाल तुव जम्मांतरु[6] अक्खमि ॥२७॥

---

२६. १. ग संजोइ। २. ग वंत। ३. ग वासपुज्ज। ४. ग गुरु णाविउ णरोम्ह विणइ तेण। ५. ग पुणु देवाविय आणंद तुरु, वंदण चल्लिउ भव कमल सूरु। ६. ग जयई।

२७. १. ग. विवि। २. ग. भणेप्पिणु। ३. ग. हिंस विवज्जिउ। ४. ग. तिहुवणि। ५. ग. पयभत्ति। ६. ग. जम्मंतरु।

घत्ता—नयनोंके लिए आनन्ददायक अरिदमनका पुत्र श्रीपाल एक दिन सुखसे राज्यसभामें वैठा हुआ था, इतनेमें वहुतसे सुन्दर और नये फल, दल और फूल लेकर वनपाल वहाँ आया ॥२५ ॥

२६

उसने कहा—"हे प्रियभाषी और शत्रुओंको सतानेवाले राजन्, वधाई है आपको। अशेष गुणगणवाले ज्योतिस्थानमें स्थित, नर, सुर और विद्याधरोंके द्वारा वन्दनीय, मलसे मलिन गात्र, परन्तु चारित्र्यसे पवित्र, तप और व्रतोंमें प्रमुख, प्रसन्नमुख, संजय नामक मुनि उपवनमें पधारे हैं। उन्होंने उपवनको शरद् और वसन्तकी भाँति वना दिया है। वह वासुपूज्य भगवान्के मन्दिरमें विराजमान हैं। अरिदमनका पुत्र वन्दनाके लिए वहाँ आया। आसनसे सात कदम धरती छोड़कर उसने नमन किया और परोक्षमें गुरुकी विनती की। फिर उसने आनन्द के नगाड़े वजवा दिये और भव्यरूपी कमलोंका सूर्य वह वन्दनाके लिए चल पड़ा। नर-नारियोंसे घिरा हुआ और अन्तःपुरके साथ ऐसा लगता था, जैसे इन्द्र हो। पैरोंके नूपुरोंसे रुनझुन शब्द करती हुई युवतियाँ मुनिगणकी स्तुति करती हुईं जा रही थीं। नगरके सभी लोग वन्दना भक्तिके लिए आये जो दूरभव्य और आसन्न भव्य थे वे सभी।

घत्ता—उन्होंने जिनमन्दिर देखा, जिसमें पिंडीद्रुमकी छायाके नीचे शिलापर मुनिराज विराजमान हैं। तीन प्रदक्षिणा देकर और विनय पूर्वक राजाने मुनिराजकी वन्दना की ॥२६॥

२७

मुनिराजने सद्भावसे उसे धर्मवुद्धि दी। अपनी मानशुद्धिके लिए राजाने प्रेमसे जल, चन्दन, अक्षत और कुसुम समूह, चरु, दीप, धूप और फलोंसे मुनिराजके चरणोंमें कुसुमांजलि अर्पित की। दर्शन, ज्ञान और चारित्र्यका नाम लेकर, पैरोंकी पूजा की एवं उनका अभिनन्दन किया और कहा—"हे प्रभु, विश्ववन्दनीय धर्मकी व्याख्या कीजिए। भट्टारकने कहना प्रारम्भ किया कि हिंसा रहित धर्म ही संसारमें श्रेष्ठ है, वह सत्यवचनसे पूजनीय है। दूसरेके धन और स्त्रीसे वचना चाहिए और परिग्रहका परिमाण करना चाहिए। तीन गुणव्रत और शिक्षाव्रतका आचरण करना चाहिए। इस प्रकार इस गृहस्थधर्मका परिपालन करना चाहिए। तव राजा प्रणामपूर्वक पूछता है—"हे परमेश्वर, मेरी भवगति वताइए। किस पुण्यसे मैं इतने अनिन्द्यवाला हुआ, अतुलनीय योद्धा तीनों लोकोंमें विख्यात। किस कर्मसे मैं राजाओंमें श्रेष्ठ हुआ ? किस कर्मसे कोढ़ी, निर्धन हुआ ? किस कर्मसे समुद्रमें फेंक दिया गया ? किस पापसे मैं डोम कहलाया ? मदनासुन्दरी मेरी अत्यन्त भक्त क्यों है ? हे परमेश्वर, इसका कारण वताइए।

घत्ता—ये वचन सुनकर मुनिवर वोले—"पुण्य और पापका फल कहता हूँ। हे राजा श्रीपाल, सुनो तुम्हारे जन्मान्तर कहता हूँ ॥२७॥

२८

तं णिसुणि णरेसर कहमि पुरि इह भरह-खेत्ति वेयड्ढगिरि ।
तहिँ रयण-संचु णामे णयरु विज्जाहर-लोयहँ सुक्खयरु ।
सिरिकंतु णरेसरु तहिँ वसइ सिरिमइ घरिणि[2] व णं कामरइ ।
सा जिण-सासणे अइ-णिउण-मइ जिण-ण्हवण-पुज्ज-मुणि-दाण-रइ ।
५ सिरिकंतु ण जाणइ धम्म-मग्गु भज्जइँ सिक्खाविउ सो समग्गु ।
तिणि लयउ धम्मु सावय-वयाइँ गुरुणा दिण्णइँ मणि-भावियाइँ ।
पालइ जिण-धम्मु सुहेण[4] जाम हुउ मिच्छादिट्ठिहिं संगु ताम ।
छाडिय जिण-धम्मु वि भयउ वाउ तें पावें रायहो भट्ठु जाउ ।
मुणि दिट्ठउ पइँ णग्गउ णियंतु [5]अइ-गउर-वण्णु वय-सील-वंतु ।
१० घत्ता—मलहारि मुणीसरु जो अवहीसरु कोटिउ अइसउ भणिउ पइं ।
सो गुरु दुग्गुंछिउ पइँ णिब्भंछिउ अवरइँ पीडियउ सरइं ॥२८॥

२९

मिच्छा-इट्ठिय मरिवि अयाणा कोढि भए सत्त-सय-राणा ।
सरि-तडि आतावणे थिउ मुणिंदु पेखेविणु[1] पइँ णिंदिउ अणिंदु ।
पइँ ठेल्लाविवि[2] णरवइ जलि पेल्लिउ[3] तें पावें तुहुँ सायरि छल्लिउ ।
उग्ग-दित्तु तव-चरणें खीणउ काय-किलेसहिँ दीसइ रीणउ ।
५ हिम[4]-पडलेहिँ अंगु पच्छायउ तें दीसइ जइवरु विच्छायउ ।
पइँ चिरु पाणु भणिवि मुणि तासिउ तेण कुकम्में डोमु वि भासिउ ।
सिरिमइ-देविहि केण वि कहियउ तुम्ह णाहु भउ धम्में रहियउ ।
णिंदउ सिरिहि अवलोइ-विवोलई करे उरु ताडइ सिरिसर ठेलइ ।
पाविय-मिच्छा-इट्ठिहिँ मेलहिँ कोढिय पाण चुवहि जण-रोलहिँ ।
१० णड-भड पाणहिं गहिउ अयाणउ लोय भणहिँ णिउ णाहि सयाणउ ।
घत्ता—णिसुणेवि विरत्तिय छंडिय तत्तिय णिव्विणी घरवारहो ।
कालि वि तउ लेसमि अज्जिय होसमि वज्जु पडउ भत्तारहो ॥२९॥

३०

एत्तहिँ गउ णरिंदु णियकेयण दिट्ठ देवि विच्छाय अचेयण ।
केण वि भिच्चें रायहो अक्खिउ पइँ जिण-धम्मु देउ उप्पेक्खिउ ।
तें दीसइ महएवि विदाणी जा अंतेउर सयल-पहाणी ।
जं भणियउ भिच्चें वयणुल्लउ लग्गउ कण्णे णरिंदहु भल्लउ ।
५ जाएवि देविहि पायहिँ पडियउ खमहि देवि हउँ पावें जडियउ ।
जइ णवि पालउँ धम्मु जिणेसर तो मइँ लज्जिय सयल णरेसर ।
ता बिण्णि वि लहु गय जिण-मंदिरु जिणु थुउ णविवि णविउ मुणि सुंदरु ।
आयण्णहु सामी वयणुल्लउ हउँ जु कुसंगहँ संगें भुल्लउ ।
दइ पायाछित्तु दंडु णिउ भासइ वउ उवएसहि पाउ जहिं णासइ ।

---

२८. १. ग भरह खित्ति । २. ग घरिविय णं कामरइ । ३. ग सावय वयाइं । ४. ग सुंहण ।
५. ग. वय णियम गरुय सीलवंतु । ६. ग. उवराइ पीडियउ सइं ।
२९. १. ग पिक्खेविणु । २. ग ठेलिवि । ३. ग वोलिउ । ४. ग हिमपडलहिं तहु अंगु पछायउ ।

२८

हे राजन्, सुनो कहता हूँ। इस भरत क्षेत्रके विजयार्ध पर्वतपर रत्नसंचय नामकी एक नगरी है जो विद्याधर लोकके लिए सुखकर है। उसमें श्रीकान्त नामका राजा निवास करता था। उसकी श्रीमती नामकी पत्नी वैसी ही थी जैसी कामकी रति। वह प्रतिदिन जिनशासनकी वन्दना करती थी। जिनका अभिषेक, पूजा और मुनियोंको दान देनेमें लीन रहती थी। श्रीकान्त धर्मका मार्ग नहीं जानता था। पत्नीने उसे समग्र धर्मका मार्ग सिखाया। उसने श्रावकके व्रत अंगीकार कर लिये। गुरु द्वारा प्रदत्त ये व्रत उसे बड़े अच्छे लगे। इस प्रकार वह सुखपूर्वक धर्मका पालन करने लगा। परन्तु उसकी संगति मिथ्यादृष्टियोंसे हो गयी। वह बावला हो गया। उसने धर्म ही छोड़ दिया। इसी पापसे वह अपने राज्यसे भ्रष्ट हुआ। तुमने एक नग्न साधुको आते हुए देखा, अत्यन्त गोरे और व्रतशील वाले।

घत्ता—मलधारी वह मुनि अवधिज्ञानी थे, परन्तु तुमने उन्हें कोढ़ी कहा। तुमने मुनिकी निन्दा की। तुमने भर्त्सना की उसीसे तुम समानरूपसे पीड़ित हुए ॥२८॥

२९

मिथ्यादृष्टि और अज्ञानी तुम लोग मरकर सातसौ राना कोढ़ी हुए। नदी किनारे आतापिनी शिलापर मुनि बैठे थे। उन्हें देखकर तुमने उन अनिन्द्य की निन्दा की। तुमने ढकेलकर मुनिको पानीमें डाला। इसी पापसे तुम समुद्रमें फेंक दिये गये। उग्रदीप्त मुनिका शरीर कायक्लेशसे क्षीण हो गया था। हिमपटलसे उनका शरीर ढक गया था और वह मुनिवर कान्तिहीन हो गये थे। तुमने उन्हें 'डोम' कहकर सताया। इसी कारण तुम डोम कहलाये। किसीने श्रीमती देवी से कहा कि तुम्हारा स्वामी धर्मसे रहित हो गया है। मुनिको देखकर निन्दा करता है। अबोल बोल बोलता है। अपने हाथसे आतापिनी शिलासे मुनिको नदीमें ठेलता है। वह पापी मिथ्यादृष्टिसे मिल गया है। लोग बात करते हैं कि वह उन्हें कोढ़ी, डोम कहता वह अज्ञानी नट....और डोमोंकी संगतिमें रहता है। लोग कहते हैं कि राजा सयाना नहीं है।

घत्ता—यह सुनकर श्रीमती विरक्त हो उठी। उसने उदासीन होकर घर-द्वारमें अपनी आसक्ति छोड़ दी। उसने निश्चय किया कि मैं कल तप ग्रहण कर लूँगी। आर्यिका बन जाऊँगी। ऐसे पति पर वज्र पड़े ॥२९॥

३०

इधर राजा भी अपने घर गया। उसने अपनी पत्नी श्रीकान्ता को कान्तिहीन और मूर्च्छित देखा। किसी अनुचरने राजासे कहा कि हे देव, आपने जैनधर्मकी उपेक्षा की है। महादेवी इसीसे दुःखी है। जो समूचे अन्तःपुरमें प्रमुख है। जब अनुचरने यह बात कही तो जैसे राजाके कानोंमें किसीने भाला मार दिया हो। जाकर वह देवी के पैरों पर पड़ गया। "हे देवि, मुझे क्षमा करो, मैं पापसे विजड़ित हूँ। यदि मैं जिनधर्मका पालन न करूँ, तो सब राजाओंमें लज्जित होऊँ।" तब दोनों शीघ्र जिनमन्दिर गये। दोनोंने जिनश्रुतको नमनकर मुनिको नमस्कार किया। उन्होंने कहा कि मुनिराज, हमारे वचन सुनिए—मैं कुसंगके साथ लग गया, मुझे प्रायश्चित्तका दण्ड दीजिए, जिससे पापका नाश हो जाये।

१० घत्ता—तउ भणइ तवोहणु णिज्जिय-मोहणु सिद्ध-चक्क-विहि जइ करहि।
तो पाउ पणासइ तिहुवणु णासइ पाप-उवहि लीलए तरहि ॥३०॥

३१

सिद्ध-चक्क-विहि तिहुयण-सारा केण विहाणें करउँ भडारा।
पुच्छइ रायवुत्तु मुणिणाहहो कहहि ति-णाणी पुहई-णाहहो।
कत्तिय-फग्गुण-साढ सुसोहहो सेय-पक्खि अट्ठमि कय-सोहहो।
कासु उदए धुअ वाहिर-गंथइँ धोय-वत्थ गिण्हेवि पसत्थइँ।
५ साकर-दुद्ध-दहिय-घिय-धारउ आणेवि जिणु ण्हविएहि भडारउ।
जल-चंदण-अक्खय-कुसुमोहहिँ चरु-दीवहिँ धूवहिँ फल-ढोकहिँ।
जिण-णाहहो चरणइँ संपुज्जहि पुणु सुय-देव-गुरुहिँ णविज्जहि।
णिय-भवियण-जण-विणउ पयासहि सिद्ध-चक्क-विहि गियमणि भासहि।
गुरुणा दिण्णउँ तइँ पडिवण्णउ अच्छहि णिय-मणि तुहुं पडिवण्णउ।
१० अट्ठमि चउदसि उववासेवउ मेहुण-सण्णावउ रक्खेवउ।

घत्ता—सिरिखंड-कपूरहिँ परिमल-पूरहिँ सिद्ध-चक्क-वउ उद्धरहि।
अट्ठोत्तर-सउ कलियहिँ वियसिय-ललियहिँ करहि जाउ मणे संभरहि ॥३१॥

३२

वारह-फल-फुल्लेहिँ सवंधहिँ[1] [2]वारह-दीवय-अक्खय पूजहिं।
वारह अंगारिय इकवाणहिँ अट्ठ-दिवस पुज्जेहि रवण्णहिँ।
वंभचरिउ वसुदिण पालिव्वउ आइ-अंत जायरणु करेव्वउ।
ण्हवण-पूज-बहु-गीय-विणोयहिँ सिद्ध-चक्क-कह-फलु णिसुणेज्जहि।
५ एण विहाणें[3] अह-णिसु णिज्जइ जिम मण-इंछिउ फलु पाविज्जइ।
पुणु पुण्णिम-दिणे एम करिज्जइ दाणु चउव्विह-संघहो[4] दिज्जइ।
जो पुणु करुणा-दाणु वि किज्जइ अंधहँ पंगुल-दीणहँ दिज्जइ।
वरिस-वरिस सपुण्णइँ किज्जइ पुणु उज्जवणु ससत्तिए किज्जइ।
जिणवर-विंवहँ तिलउ दिवावहि वारह अज्जियाइँ पहिरावहि।
१० वारह पोत्था-वडयँ विचित्तइँ। फुल्ली-डोरिएहिँ संजुत्तइँ।

घत्ता—सुय-दाणहिँ करहि पहाणहिँ सिद्ध-चक्क-आहासियउ।
जिन पावहि णाणउ पुणु णिव्वाणउ गणहर-एव-पयासियउ ॥३२॥

३३

संजमीहँ संजम-उवयरणइँ सीय-णिवारणाइँ वय-धरणइँ।
खुल्लय-अज्जिय-उत्तमसावहि[1] वहु-समाणु तिहुविणउ करावहि।
पुणु गोत्तहो आमंतणु किज्जइ सत्तिए[2] भत्तिए सम्माणिज्जइ।

---

३२. १. ग सुयंधहिं। २. ग में इसकी जगह पाठ है—"वारह विह णे व ज्जइ वण्णिय। ३. ग अह णिसिज्जहिं। ४. ग संघहिं। ५. ग पडइं।

३३. १. ग उत्तिम। २. ग प्रति में इसकी जगह पाठ इस प्रकार है—"सरसु भोउ चउ संघहु दिज्जइं"।

घत्ता—तव मोहका नाश करनेवाले तपोधनने कहा—"यदि तुम सिद्धचक्र विधिका विधान करो तो पाप नष्ट हो जायेगा। संसार भी नष्ट हो जायेगा और तुम पाप का यह समुद्र खेल-खेलमें तर जाओगे ॥३०॥

३१

'सिद्धचक्र विधि' तीनों लोकोंमें श्रेष्ठ है। राजपुत्र पूछता है—"हे मुनिवर, इसे किस प्रकार किया जाये ?" तव तीन ज्ञानके धारक परममुनि उन्हें वताते हैं—शुभ आषाढ़ कातिक फागुन माहके शुक्लपक्षकी अष्टमीको प्राशुक जलसे स्नान कर, वस्त्रोंको धोकर प्रशस्त वस्त्र धारण करे। शक्कर,...दूध, दही, घी लाकर जिनका अभिषेक करें। फिर जल, चन्दन, अक्षत और फूलों, सुन्दर-दीप-धूप और फलोंको धोये और जिनके चरणोंकी पूजा करे। देव शास्त्र गुरुकी वन्दनाकर अपने भव्य आत्मीय जनोंके साथ विनयसे वात करे। सिद्धचक्र विधिको अपने मनमें माने। गुरु जो (उपदेश व्रतादि) दे, उसे स्वीकार करे, तुम अपने मनमें यह अच्छी तरह समझ लो। अष्टमी और चतुर्दशीका उपवास करना चाहिए।

घत्ता—श्रीखण्ड, कपूर, परिमलपूरसे सिद्ध चक्र व्रतका उद्धार करें। १०८ वार सुन्दर ललित गुरियों से जाप करो, मनमें स्मरण करो ॥३१॥

३२

अच्छी तरह वँधे हुए वारह फल और फूल, वारह दीप और अक्षतसे पूजा करनी चाहिए। एक रंगके वारह अंगारिकोंसे आठ दिन सुन्दर पूजा करनी चाहिए। रातके प्रारम्भ और अन्तमें जागरण करना चाहिए, स्नान, पूजा वहुतसे गीत विनोदों के साथ। अव सिद्धचक्र कथाका फल सुनो। सुना जाता है कि इसके विधानसे रात-दिन मनचाहा फल मिल जाता है। फिर पूर्णिमाके दिन यह करना चाहिए कि चार प्रकारके संघको दान देना चाहिए। फिर करुणा दान भी करना चाहिए। अन्धों, लूलों, लँगड़ोंको दान करना चाहिए। वर्पमें इसे एक वार पूर्ण करना चाहिए। यथाशक्ति इसका उद्यापन करना चाहिए। जिनवरकी प्रतिमाका तिलक करना चाहिए। वारह अर्जिकाओंका पहनावा पहनाना चाहिए। वारह विचित्र फुल्ली और डोरीसे संयुक्त पंठन (पोथीपट) देना चाहिए।

घत्ता—मुख्यरूपसे शास्त्र दान करें। सिद्धचक्रका मैंने कथन किया इससे ज्ञान और फिर निर्वाणकी प्राप्ति होती है। गणधर देवने ऐसा प्रकाशित किया है ॥३२॥

३३

संयमी-जनोंको संयमके और व्रतधारियोंको शीतनिवारणके उपकरण दे, मुनियों, आर्यिकाओं और श्रेष्ठ श्रावकोंको सम्मान दे उनकी तीन प्रकारसे विनय करायें। फिर उसने

उज्जवणहो सत्तिय णउ[3] पुज्जइ   ता विविउणउ[4] वउ भविय करिज्जइ।
५ इय आयण्णिवि सिरिमइ-कंतें   सिद्ध-चक्क-विहि लइय तुरंतें।
वरिस चारि संपुण्णु करेप्पिणु   सिरिमइ-सरिसु विहाणु चरेप्पिणु[5]।
अंतयालि सण्णासु चरेप्पिणु   पंच णमोयारइं झाएविणु[6]।
सग्गइँ होएप्पिणु पुणु चइयउ   सो सिरिवाल-राय तुहुँ जइयउँ[7]।
सिरिमइ पुणु सग्गे[8] हवेइ चुअ   मयणासुंदरि तुह भज्ज हुअ।
१० घत्ता—इय जाणि णरेसर महि-परमेसर सिद्ध-चक्क-विहि जो करहि।
जो मुणिवर-भासिउ विवुह-पयासिउ भवसायरु लीलइँ तरहि ॥३३॥

३४

पुणु पाउ वि जं कियउ भवंतरि   तं सयलु वि मुच्चइ इत्थंतरि।
इय जाणेविणु करि दुह-हरणउ   धम्मु अहिंसा-लक्खणु सरणउ।
णिसुणेवि[1] सयल-धम्मु जग-सारउ   मुणि वंदिउ तिगुत्ति वय-धारउ।
सिरिवालें पुणु वउ उववासिउ   [2]णयरी-णयरी जण पडिहासिउ।
५ वणिवर रायउत्त वहुजाणिय   सिद्ध-चक्क-विहि करेवि[3] पहाणिय।
वउ किउ अट्ठ-सहस-अंतेउर   मणहर-पिंडवास-पय-णेउरें[4]।
सुंदरि मंजूसा गुणमाला[5]   चित्तलेह सुविलासिणिवाला[6]।
तहि जि सुहागगोरि सिंगारी   पउलोमी पोमामण-हारी।
अट्ठइँ वहिणि अंतेउर-सहियउ   सव्वहिं सिद्ध-चक्क-वउ गहियउ।
१० वउ लउ चित्त-विचित्त-कुमारें   पुणु सुकंठ-सिरिकंठ-भडारें।
विजयसेण-णंदणहिँ[7] सुलक्खण   लउ सुसील गंधव्व-वियक्खण।
ट्टाणा-कोकण-कुँवर-गुणालें   तहि हिरण्ण-वंधव णेहालें।
मयर-केय-तणयहिँ सुपियारें   जीवंती सुंदर सुकुमारें।
अंग-रक्ख सिरिवाल-पहाणा   पुणु वउ लयउ सात-सय-राणा।
१५ उज्जेणी-पयपालु णरेसरु   तहि तउ सिद्धचक्कु परमेसरु।
घत्ता—गूजर[9] मरहट्ठहँ तह सोरट्ठहँ खस वव्वर वउ भावियउ।
णर-णारि णिसंकहि[10] इसरक्खहि[11] मणवंछिउ सुहु पावियउ ॥३४॥

३५

सिरिवाल वि जिण-सासण-भत्तउ   चंपा-णयरिहि रज्जु करंतउ।
गय-वडाइँ हुअ वारह-सहसइ   तेत्तिय वेसरि करह पयासइ।
वारह-लक्ख तुरग-सपूरहँ   वारह-कोडिय पाइक-सूरहँ।
वारह-लक्खइँ सेणाणंदण   वारह-सहस अट्ठ-सय-णंदण।

---

३. ग सत्तिवउ। ४. ग विउणउ। ५. ग करेप्पिणु। ६. ग झाएप्पिणु। ७. ग भइयउ। ८. ग सग्गहु हुंति चुव।

३४ १. ग णिसुणिवि। २. ग णयर णायरीयहिं पडिहासिउ। ३. ग करहि। ४. ग णेवर। ५ ग गुणमालहिं। ६. ग वालहिं। ७. ग दंसण सुह लक्खण। ८. ग तिवि। ९. ग गुज्जर। १०. ग णिसंकहं। ११. ग ईसरक्खहं।

कुटुम्बियोंका निमन्त्रण करें। उद्यापनमें सतीजनोंकी पूजा करे तथा विनयभाव धारणकर भव्यव्रत करे। श्रीमतीके पतिने यह सुनकर तुरन्त सिद्धचक्र विधि अंगीकार कर ली। उसने चार वर्ष तक सम्पूर्ण रूपसे व्रत किया। श्रीमतीके ही समान आचरण कर अन्त समयमें संन्यास ग्रहणकर, पाँच णमोकार मन्त्र और जिन भगवान्का ध्यान कर, स्वर्गसे होकर फिर वहाँसे च्युत होकर, वहीं तुम राजा श्रीपाल उत्पन्न हुए। श्रीमती भी स्वर्गमें जाकर वहाँसे च्युत होकर आयी है। वही मदनासुन्दरीके रूपमें तुम्हारी भार्या हुई है।

घत्ता—यह जान कर हे पृथ्वीके परमेश्वर, जो सिद्धचक्र विधान करता है वह मुनिवरों द्वारा कथित और पण्डितोंके द्वारा प्रकाशित भव समुद्रको खेल खेलमें तर लेता है ॥३३॥

३४

फिर तुमने जो पूर्व जन्ममें पाप किया, इसी बीच वह सब भी नष्ट हो जाता है। यह जानकर अपने दुःखोंका हरण कर लो। अहिंसामूलक धर्मकी शरण जाओ। इस प्रकार धर्मके समस्त विश्वसारको सुनकर उसने त्रिगुप्ति मुनिकी वन्दना की। श्रीपालने फिर व्रतका उपवास किया। जाकर नगरमें इसका प्रचार किया। श्रेष्ठ वनियों और राजपुत्रोंने इसे बहुत सम्मान दिया। उन्होंने सिद्धचक्र विधिको प्रधानता प्रदान की। आठ हजार अन्तःपुरने यह व्रत धारण किया, सुन्दर सहृदयजनोंने जिनके पैरोंमें नूपुर थे, ऐसी सुन्दरी मंजूषा और गुणमालाने भी, सुविलासिनी वाला चित्रलेखाने भी सौभाग्यगौरी, शृंगारगौरी, पद्मलोमा, सुन्दरी पद्मा आदि आठ हजार अन्तःपुरके साथ यह व्रत किया। सबने सिद्धचक्र व्रत ग्रहण किया। चित्र-विचित्रकुमारोंने भी सिद्धचक्र विधि ग्रहण की। आदरणीय कण्ठ और सुकण्ठने भी। विजयसेनके सुलक्षण पुत्रोंने। विचक्षण सुशील गन्धर्वने भी। ठाणा-कोंकणके गुणी कुमारने और स्नेही हिरण्य बन्धुओंने भी। मकरकेतुके प्रिय पुत्रोंने जीवन्ती सुन्दरके कुमारों ने। श्रीपालके प्रधान अंगरक्षकोंने और नाना राजाओंने व्रत लिये। उज्जैनके पयपाल राजाने वहाँ सिद्धचक्र व्रत लिया।

घत्ता—गूजर, मराठा, सौराष्ट्र, खस, वब्बरोंको भी व्रत पसन्द आये। जो नर-नारी निःशंकभावसे इसकी रक्षा करते हैं, वे मनोवांछित फल पाते हैं ॥३४॥

३५

जिनशासनका भक्त श्रीपाल भी चम्पानगरीमें राज्य करने लगा। बारह हजार इसके पास गजसमूह था, उतने ही खच्चर और ऊँट भी थे। बारह लाख उसके पास घोड़े थे और बारह

५ पुहविवालु भूवालु सुसारहिं तुरिउ अचंभउ पुणु वि महारहिं।
ए जाए सुंदरि वरवाला सत्त मँजूस पंच गुणमाला।
एवमाइ सह-पुत्त समाणिय णा तहिं वाझण[1]-दूहव राणिय।
सहस-अट्ठ अंतेउरु गणियउ णं सुर-रमणिउ पुण्णें जणियउ[2]।
एवमाइ वहु-परियण-जुत्तउ करइ रज्जु सिरिवालु सइत्तउ।
१० धम्मु[3] अत्थु कामु वि वहु सारइं एयहु उतरि ण सुहु संसारइं।
वाल-जुवाण-वुड्ढ-सुहु भुत्तउ चउथी पयडी मोक्खु णिरुत्तउ।
सिद्ध-चक्क-फल-पुण्ण-पहाइय मण-वंछियइँ भोय संपाइय।

घत्ता—इय रज्जु करंतउ पुणु वि विरत्तउ देवि सयलु णिय-पुत्तउ।
संसारहो संकिउ पुणु दिक्खंकिउ मंति-पुरोहिय-जुत्तउ ॥३५॥

३६

पुहवीवालहो रज्जु समप्पिउ अप्पउ राय-महव्वइँ थप्पिउ।
मयणा सुंदरि-पमुह अंतेउर हार-डोर उत्तारिय णेउर।
सयल वि संजइयउ संजायउ दुविहें तवयरणेहिं विराइउ।
महा-सुक्के सुरइंदु हवेप्पिणु गइय देवि तिय-लिंगु हणेप्पिणु।
५ अंगरक्ख जहिं जहिं वउ भाविउ तहिं तहिं देवत्तण-सुहु पाविउ।
सयल वि णर-णरवइ खम देविणु घोरु वीरु तवयरणु करेविणु।
गउ सिरिवालु परम-णिव्वाणहो सिद्ध-चक्क-फलु भवियहो जाणहो।
अवरु वि णर-णारी जु करेसइ एवमाइ सो फलु पावेसइ।
सग्गे[1] सुराहिवासु भुंजेसइ सुर-कण्णहिं सिउ कील करेसइ।
१० कत्तिय-साढहिं फागुण मासहिं ते णंदीसुर-दीउ गवेसहिं।
वहु भत्तिहिं जिण पूज करेसहिं सिद्ध-चक्क-फलु पुण भुंजेसहिं।
जिणइँ अकित्तिमाइँ वंदेसहिं, पुणु महियलि चक्कवइ हवेसहिं।
करिवि रज्जु पुणु मोक्खु लहेसहिं

घत्ता—सिद्ध-चक्क-विहि रइय मइँ णरसेणु भणइ णिय-सत्तिए।
१५ भवियण-जण-आणंदयरु करिवि जिणेसर-भत्तिए ॥३६॥

इय सिद्ध-चक्क-कहाए, महाराय-चंपाहिपे-सिरिवालदेव-मयणा-सुंदरि-देविचरिए, पंडित-सिरि-णरदेव-विरइए। इहलोक-परलोक-सुह-फल-कराए, रोर-दुह-घोर-कोढ-वाहि-भवा-णाण-णासणाए। सिरिवाल-णिव्वाण-गमणो मयणासुंदरि-अवर-सयल-अंतेउर-अंगरक्ख-देवत्तणो णाम वीओ परिच्छेओ समत्तो।

---

३५. १. ग. वंझण। २. ग. जणियउ। ३. ग. "धम्मु अत्थु कामु वि वहु सहिउ एयहउ वहहु जइ अहियउ"।

३६. १. ग. सेग्गि।

करोड़ पैदल सेना। बारह लाख सेना कुमार। बारह हजार आठ सौ रथ। पृथ्वीपाल राजा कहता है कि फिर भी मुझे अचम्भा हो रहा है, ये सुन्दर बालाएँ, सात मंजूषा, पाँच गुणमाला इत्यादि अपने पुत्रों से सम्मानित हैं। कोई बाँझ नहीं है और न कोई दुःखसे क्षीण है। आठ हजार अन्तःपुरमें वे अग्रणी थीं। मानो सुर-सुन्दरियाँ पुण्यसे उत्पन्न हुई हों। इस प्रकार बहुतसे परिजनों-के साथ श्रीपाल स्वच्छन्दतासे राज करने लगा। उत्साहसे धर्म, अर्थ और कामको उसने ग्रहण किया। इससे बढ़कर संसार में दूसरा सुख नहीं है कि मनुष्य बचपन, यौवन और बुढ़ापेके सुखका भोग करे और फिर चौथे मोक्षका सुख। सिद्ध चक्र विधिके प्रभावसे उसने जीवनमें मनोवांछित फल प्राप्त किया।

घत्ता—इस प्रकार राज्य करते-करते वह विरक्त हो उठा। सब कुछ अपने पुत्रको देकर वह संसारसे विरक्त हो उठा। फिर उसने दीक्षा ले ली मन्त्रियों और पुरोहितोंके साथ ॥३५॥

३६

यशपालको उसने राज्य समर्पित कर दिया और अपने आपको उसने महाव्रती स्थापित किया। मदनासुन्दरीके साथ सभी अन्तःपुरने हार, डोर और नूपुर उतार दिये। वे सब संन्यासी बन गये। वे दो प्रकारके तपसे विभूषित थे। महा शुक्लध्यानसे कामको जलाकर वह देवी स्त्री-लिंगका हनन करके चली गयी स्वर्ग को। दूसरे अंगरक्षकोंको जो-जो व्रत अच्छे लगे, उन्होंने भी देवत्वके सुखको प्राप्त किया। सभी मनुष्योंके प्रति समताभाव धारण कर राजा श्रीपाल घोर तपश्चरण कर परम निर्वाणको प्राप्त हुआ। हे भव्य लोगो, सिद्धचक्रके फलको जान लो। और भी जो नर-नारी इस विधानको करेगा, वह भी इस और दूसरे फलोंको प्राप्त करेगा। स्वर्गमें देवताओं-के अधिवासका सुख भोगेगा। सुर कन्याओंके साथ क्रीड़ा करेगा। कार्तिक, आषाढ़ और फागुनमें वे नन्दीश्वर द्वीप जायेंगे। बहुत प्रकारसे जिन भगवान्की पूजा करेंगे। सिद्धचक्रके फलको भोगेंगे। अकृत्रिम जिन भगवानोंकी वन्दना करेंगे। फिर धरतीपर चक्रवर्ती होंगे, राज्य करके मोक्ष प्राप्त करेंगे।

घत्ता—नरसेन कवि कहता है कि मैं ने अपनी शक्तिसे इस सिद्धचक्र विधिका निर्माण किया है, जिनेश्वरकी भक्ति कर, भव्यजनोंके लिए आनन्ददायक यह रचना मैं ने की है ॥३६॥

इस प्रकार सिद्धचक्र कथामें महाराज चम्पाधिप श्रीपालदेव और मदनासुन्दरी देवीके चरितमें पण्डित नरदेव द्वारा रचित, इह लोकमें सुखकर घोर दुःख, कोढ़, व्याधि और भवके अज्ञानको नाश करनेवाली कथामें श्रीपाल मोक्षगमन नामका, मदनासुन्दरी दूसरे समस्त अन्तःपुर अंगरक्षक देवत्व नामका दूसरा परिच्छेद समाप्त हुआ।

इस प्रकार पण्डित श्रीनरसेन कृत श्रीपाल नाम शास्त्र समाप्त हुआ।

संस्कृत प्राकृत-अवतरण

'श्रीपाल चरित'में धर्म काव्य और उपदेशका अद्भुत मिश्रण है। कुछ वातोंमें उसे शास्त्रका रूप भी दिया गया है। चूँकि 'सिरिवाल चरिउ' एक संक्षिप्त काव्य है, अतः उसमें विस्तारका अभाव है, फिर भी वीच-वीचमें कुछ छन्द आते हैं, आलोच्य कृतिमें निम्नलिखित छन्द आये हैं, इनका कथानकसे कोई सम्वन्ध नहीं। प्रसंग सहित उनका संकलन यहाँ दिया जा रहा है।

सन्धि १–कड़वक १४—मयनासुन्दरीके विवाहके समय ये पद्य आते हैं—

उक्तं च—

जं चिय विहिणा लिहियं तं चिय परिणवइ सयल-लोयस्स
इय जाणेविणु धीरा विहुरोवि ण कायरा हुंति ॥
पाविज्जइ जत्थ सुखं पाविज्जइ मरण-बंधण जत्थ
तत्थ तहं चिय जीवो णियकम्म-हव-त्थिओ जाइ ॥

कड़वक १५—

उक्तं च—

सहियाण दुहं दुहियाण संपयाभणिया
अणचिंतियं पयट्टइ दुल्लहं दइव—वावारं

कड़वक १७—मयनासुन्दरीको समझाते हुए मुनि कहते हैं—

"धर्मे मतिर्भवतु किं वहुना कृतेन जीवे दया भवतु किं वहुभिः प्रदानैः।
शान्तं मनो भवतु किं कुजनैश्च रुष्टैःआरोग्यमस्तु विभवेन फलेन किं वा ॥६॥
वुद्धेः फलं तत्त्व-विचारणं च देहस्य सारं व्रत-धारणं च।
अर्थस्य सारं किमु पात्रदानं वाचाफलं प्रीतिकरं नराणाम्।

कड़वक ४०—धवलसेठके रत्नमंजूषाके प्रति कुचेष्टा करनेपर यह उक्ति है।

कामलुब्धे कुतो लज्जा अर्थहीने कुतः क्रिया।
मद्यपाने कुतः शौचं मांसहारी कुतो दया ॥

कड़वक ४६—श्रीपाल समुद्र पार कर रहा है, उस समय कवि पुण्यके समर्थनमें यह कहता है—

वने रणे शत्रु-जलाग्नि-मध्ये महार्णवे पर्वत-संकटेषु च।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा रक्षन्ति कर्माणि पुरा कृतानि ॥

समस्यापूर्ति—

'सिरिवाल चरिउ' में कुछ समस्याओंका उल्लेख है। श्रीपाल इनकी पूर्ति कर कई कन्याओं-से एक साथ विवाह करता है। ये समस्याएँ कवि की अपनी नहीं हैं। उत्तरकालीन अपभ्रंश चरित-काव्योंमें यह प्रवृत्ति अधिक थी। श्रीपाल; जैसे ही कंचनपुरसे कूच करता है, एक चर-पुरुष उसे बताता है कि ठाना-कोकणके राजा विजयकी १६ सौ कन्याएँ हैं। उनमें शृंगारगौरी आदि आठ कन्याएँ प्रमुख हैं। इनकी अपनी आठ वचन-गतियाँ (शब्द-समस्याएँ) हैं, जो इनका हल करेगा, कन्याएँ अपनी सहेलियोंके साथ, उसीसे विवाह करेंगी। कुमार पहुँचकर उनसे कहता है—"अपनी-अपनी बात कहो।" सबसे पहले सौभाग्यगौरी की समस्या है :

"जिसके पास साहस है सिद्धि उसी की है।"

श्रीपालका उत्तर है—शत्रु शरीरसे जीता जाता है, बुद्धि दैवके अधीन है। परन्तु इसमें जरा भी भ्रान्ति नहीं कि जहाँ साहस है वहाँ सिद्धि होगी ही।

शृंगारगौरी का वचन है—"देखते-देखते सब चला गया।"

श्रीपालका प्रतिवचन है—"कंजूसने धन न धर्ममें खर्च किया और न स्वयं खाया, केवल संचय करता रहा। दरबारमें जुआ देखते-देखते उसका सब धन चला गया।"

पद्मलोमाका वचन—"उसे काचरा मीठा लगता है।"

श्रीपालका प्रतिवचन—"कुएँमें बैठकर मेंढक समुद्रको छोटा बताता है। जिसने कभी नारियल नहीं खाया उसे काचरा ही मीठा लगता है।"

रण्णादेवीका वचन—"वे पंचानन सिंह हैं।"

श्रीपालका प्रतिवचन—"जो लोग शीलसे रहित हैं, उनके भाग्यकी रेखा काली है; जो चरित्रसे पवित्र है वे ही पंचानन सिंह हैं।

सोमकलाका वचन—"दूध किसे पिलाऊँ।"

श्रीपालका प्रतिवचन—"रावणने दसमुख और एक शरीरवाली विद्या सिद्ध की। कैकशी (रावणकी माँ) चिन्तामें पड़ जाती है कि दूध किस मुँहको पिलाऊँ।"

सम्पदा देवीका वचन—"वह मैंने कहीं नहीं देखा।"

प्रतिवचन—"मैं सातों समुद्रोंमें फिरा। जम्बूद्वीपमें मैंने प्रवेश किया जो दूसरोंको पीड़ा नहीं पहुँचाता, ऐसा आदमी मैंने नहीं देखा।"

पद्माका वचन—"उसने क्या कमाया ?"

प्रतिवचन—"कुन्तीने पाँच पुत्रोंको जन्म दिया, वे पाँचों ही प्रिय हैं। गान्धारीने सौ पुत्रोंको जन्म दिया, उसने क्या पाया ?

चन्द्ररेखा कहती है—"वह उसका क्या करे ?"

प्रतिवचन—"सत्तर वर्षमें जिसकी आयु गल चुकी है फिर भी वह बालासे विवाह करता है, वह उसके पास भी बैठा हो, तो भी वह करेगा क्या ?"

स्पष्ट है कि ये समस्याएँ नयी नहीं हैं, कवि केवल समस्यापूर्तिके कुतूहलका अपने काव्यमें समावेश करनेके लिए इनका उल्लेख करता है। चन्द्ररेखाके वचनसे यह अवश्य हम जान सकते हैं कि उस समय (कविके समय) सत्तरसालके बूढ़े भी छोटी उम्रकी कन्यासे विवाह करते थे, और यह भारतीय समाजके लिए नयी बात नहीं।

शब्दावली

[अ]

अमलमइ २।९ अमलमति = निर्मल बुद्धिवाला
अवही २।१२ अवधि = समय की सीमा
अवहि १।९, ३०, २।१४ = अवधिज्ञान
अगिवान २।१३ = अग्निवाण
असिवर २।२३ असिवर = श्रेष्ठ तलवार
अरिखय २।२० अरिक्षय = शत्रु का नाश
अयजाण १।६ अजायज्ञ = अज > अअ > अय। यज्ञ > जण्ण > जाण।
अप्परिद्धि १।३२ आत्मऋद्धि
अट्ठवट्ठ १।२४ = आठ रास्तों-वाले
अट्ठकाम १।८ अष्टकर्म = अष्टकर्म
अणंगु १।३१ अनंग = कामदेव
असिया उसा १।१७ = मंत्र = णमोकार का संक्षिप्तरूप
अंगरख २।२० अंगरक्ष
अणुराय २।१७ अनुराग (अतिभक्ति)
अंगु २।२१ अंग = शरीर का हिस्सा
अज्जियाई २।३२ आर्यिका = जैन साध्वी
अज्जिय २।३३ अर्जित = प्राप्त किया।
अंतयाल २।३३ अंतकाल = अन्तिम समय

अंतेउर २।३४ अन्तःपुर = रनिवास
अपाउ २।३६ अपाय
अकित्ति १।४ अकीर्ति = अपयश
अंतरखसिय २।१३ = नीचे खिसक गयी
असीस २।२२ आशीष = आशीर्वाद
अंवा १।१७ अम्वा = माँ
अवसण १।१७ अवसन
अवजसु १।१९ अपयश
अमियहलु १।१५ अमृतफल
असुमेह १।६ अश्वमेध
अमरकोसु १।७ अमरकोष
अखोहु १।७ अक्षोभ = क्षोभ रहित
अवलोय १।२५ = अवलोक ?
अलि १।३३ = भ्रमर
अंजुलि १।४३ = अञ्जुलि
अलिय १।२४ अलीक = झूठ
अवचार १।३२ = अपचार
अछरीय २।८ = अप्सरा
असहण १।३१ = असहन
असराल १।३६ अश्वशाला > असताल > असराल ?
आणंदभेरि १।३६ = आनन्दभेरि
अलावणि १।३८ आलापिनी वीणा
अयाण २।२ = अज्ञान

[आ]

आण २।३१ = आज्ञा
आगमण १।१३ आगमन = आना

आहरण १।१४, २।२ आभरण = गहना
आगम १।२२ आगम = शास्त्र
आलउ १।२५ आलय = घर
आलवनी २।४ = आलापिनी
आगासण १।१३ = अग्रासन
आयपत्त १।१० आतपत्र = छाता
आहंडल १।३२ आखंडल = इन्द्र
आणणारि १।२० = अन्य नारी
आयर १।२६ = आदर
आसीवाउ १।८ = आशीर्वाद
आतावण २।२९ = आतापन
आणा १।२२ = आज्ञा
आइसु १।१३ = आदेश
आवणि १।३३ आपण = बाजार
आमंतण २।३३ = आमन्त्रण

[इ]

इच्छु १।२१ = इच्छुक
इसरु = ईश्वर ?
इच्छा १।३ = इच्छा
इक्तरउ = इकतरा
इंद १।३४ = इन्द्र

[उ]

उक्खा १।११ इक्षु = ईख
उरिण १।२९ = उऋण
उवसि १।४३ = उर्वशी
उच्छाह १।३८ = उत्साह
उच्छव १।४७ = उत्सव
उल १।२७ = कुल
उयर १।३६, २।३३ = उदर

उदए २।३१ उदक = जल
उवहि २।५ = उदधि
उंदेस १।२ = उपदेश
उत्ति १।९ = उक्ति
अंतेउर २।१५ अंतःपुर
उत्तमंगु १।२ उत्तमांग
उवराउ १।१० = कोढ़का एक भेद
उग्घाडणु १।३७ = उद्घाटन
उज्जण २।३३ = उद्यापन ।
उवडिडिम २।२२ = डुगडुगी

[ए]

एकंतगोठ २।७ = एकान्तगोठ

[क]

कपूर २।३१ कर्पूर
कडतल २।२४ कटितल
कटारिय २।२४ कटारी
करडह २।२२ करट = ऊँट ?
करह २।१२ = करभ ?
कणया २।१८ कनक = सोना
करकंकण २।१७ = करकंगन
कवाण २।३२ कपाट = किवाड़
कडय २।१४ कटक = सेना
कप्पविडउ १।३१ कल्पविटप = कल्पवृक्ष
कण्णड २।९ = कन्नड़
कण्णउ २।११ = कन्या
कयंतु २।२१ कृतान्त = यम
कव्वड़ १।३ = खराव गांव
कलोलु २।१२ कल्लोल = लहर
काहल १।११, ३६; २।१३, १८ = वाद्यविशेष ।
काज्जु १।१९ = कार्य, कज्ज> काज्जु>काज
काहलिय २।२२ कातर
कारंड १।८ = पक्षी विशेष
किवण १।३४ = कृपण
किसाणु १।३१ = किसान
कील १।१८ = कीलना, मन्त्रादिसे किसीको जड़ कर देना
उकुट्टु १।२८ = उत्कृष्ट
कूड २।२, १।३२ कूट = कपट
कुलाहल १।४० = कोलाहल
कुंजर २।१८ = हाथी ।
कुवरि १।६ = कुमारी
कुंत २।२४ = कुन्तमाला
कुसुमोह २।२७ = कुसुमौघ (फूलों का समूह)
कुडुव १।९ कुतुप
कुटवालिय १।११ (?)
कुलभंडिय १।४४ = कुलभांड
कुसवाल १।२९ (?)
कुवलय २।१० = पृथ्वीमंडल, कुमुद
कुवलचन्दु २।१४ = कुवलयचन्द्र
कूकर १।४४ = कुत्ता
कूउ २।५ = कूप
केउर २।९ = केयूर
कोढिय १।१४ = कोढ़ी
कोढ़ियण १।१५ = कोढ़ीजन
कोडिवीरु १।२५ कोटिवीर
कोट्ठ १।२ = कोठा

[ख]

खवणय १।६ = क्षपणक
खयकालु २।१ = क्षयकाल
खडरस २।७ = षड्रस
खय १।४१ = क्षय
खर १।१३, २।३, ७ = गधा
खम २।५ = क्षम
खग्ग २।१८ = खड्ग
खण १।४१ = क्षण
खंभ १।१२ = स्तम्भ
खंडी १।३१ = खण्डित, खण्डित किया
खंधावार २।१८ = स्कन्धावार
खाण १।४४ = खान, खदान
खानी २।११ = खदान
खाण-पाण १।३७ = खान-पान
खुल्लय १।२, २।३३ = क्षुल्लक
खीर १।१५ क्षीर = दूध
खेत्त २।१८ = क्षेत्र
खेड १।३ = गांव (खेड़ा)
खेयर २।२ खेचर = विद्याधर

[ग]

गंधक २।२१ = गन्धक
गवाख १।३४ गवाक्ष = झरोखा
गव्व १।२२ = गर्व
गंजण २।१ गंजन = विनाश
गंडय १।६ = गंडक, गैंड़ा
गंधोवउ १।८, १८ = गन्धोदक
गल २।९ = गला
गयघड २।१०, १८, २१, २२; २।२२ = गजघटा
गण १।४० = समूह
गत्त २।२६ गात्र = शरीर
ग्राह २।१२ = ग्राह
गायण १।२६ = गायन
गिद्धि १।६ = गृद्धि
तियलिय-गुंज २।२२ = वाद्य-विशेष की गूंज
गुसुव १।६ = गोसुत
गुज्झवत्त १।२० = गुह्यवार्ता
गेय १।२९ = गेय
गोहिण १।२७ = पीछे (लगना)
गोमेय १।३४ = गोमेध
गोमुह १।१७ गोमुख

[घ]

घड १।४३ = घटा
घिय २।३१ घृत = घी
घरवार २।२९ = गृहद्वार
घण-उंवरु १।३० (?)

[च]

चउगली २।१२ (?)
चक्क १।४५ = चक्र
चित्तसाल १।२२ = चित्रशाला
चिंवण २।२२ = चिह्न
चोज्जु २।३ = आश्चर्य

[छ]

छहि १।३७ = छह
छंद १।४६ = स्वभाव–कपट
छण १।१६ = क्षण
छत्त २।१८,२२ = छत्र
छहहरि १।३४ = छह हरि
छार १।१३ = क्षार
छीदु १।४१ छिद्र > छिद् > छीदु = छेद
छोहु १।२१ = क्षोभ

[ज]

जलण १।२४ ज्वलन = जलना
जंपाय १।१५ = वाहन विशेष
जलहर १।२४ = जलधर
जंमायउ १।३ = जामाता
जम्मंतरु २।२७ = जन्मान्तर
जक्खेसर १।१७ = यक्षेश्वर
जंतु १।१५ = यन्त्र
जण्ण २।३ = यज्ञ
जाला १।१७ = ज्वाला
जाण १।१५ = यज्ञ
जार १।४५ = विट
जिणाहिय १।१ = जिनाधिप
जीह २।२३ जिह्वा = जीभ
जुव २।१२ = युवा
जुवाण २।३५ युवान = युवा
जुवइण १।३२ = युवतीजन

[झ]

झाण १।३५ = ध्यान

[ट]

टापू १।४५ = टापू
ट्ठग १।२४ = ठग
ट्ठाउ १।१५ = ठाँव
ट्ठाणा २।११ = स्थान

[ठ]

ठाण २।२६ = स्थान
ठाकुर १।४१ }
ठोक्कर २।२४ } = ठाकुर

[ड]

डाइणि १।२४
डासणि २।४५
डिंडिम २।१८
डोमु २।३ = चंडाल
डोमणिय २।३ = डोमिनी

[ण]

णउ २।७,२९ = नृप
णंचु २।२ = नृत्य
णंण १।२ = ज्ञान
णाडि २।९ = नाड़ी
णरय २।७ = नरक
णवराउ १।१३ = नवराग
णहयल १।२६ = नभतल
णाभि १।१ = नाभि
णाउ १।१९ = नाम
णाणु १।१७ = ज्ञान
णाय २।२१ = नाग
णाडउ १।१७ = नाटक
णामिउ १।४५ = नाम
णरियणु १।३६ = नारीजन
णातियउ २।३ = नाती
णारियर १।२ = नारियल
णिसाण २।१२ = चिह्न
णियड २।१९ = निकट
णिहाण २।६ = निधान
णिरति १।१७ = निरति
णिग्गइ १।३३ = निर्गति
णिव्वाण २।३६ = निर्वाण
णिहय १।४ = निहत
णिग्घंटु १।७ = निघंटु
णिवेय १।१६ = नैवेद्य
णिग्गहण २।४ = निर्गहन
णियंविणी १।१७ = नितम्बिनी
णियरुइ १।३१ = निजरुचि
णिमत्तिय २।१० = नैमित्तिक
णिवसुत १।१० = नृपसुत
णीरु १।३ = नीर
णीलोप्पल १।३ = नीलोत्पल

[थ]

थण १।४,३३ = स्तन
थत्ति १।१ = स्थिरता
थंभण १।४१ = स्तंभन
थाल १।३६ = स्थाल
थट्ट २।६,१९ = समूह
थुवा १।१६ = स्तुति (स्तवन)
थणि २।१४ = स्थान
थुई १।१२ = स्तुति
थेर २।३ = स्थविर

[द]

दहि १।२५ = दधि
दक्ख १।३ द्राक्षा = दाख
दप्पु १।४४ = दर्प
दतीणहि १।२४ = दन्तीनख
दहिय २।३१ = दही
दइव १।१७ = दैव
दव्व २।१२ = द्रव्य
दवणु = द्रवण
दहमि १।१७ = दशमी
दहलक्खणु १।३० = दशलक्षण
दारा १।३३ = स्त्री
दाउ २।२१ = दाव
दाइज्ज २।१२ = दहेज
दिसंबर १।१५ = दिगम्बर
दीवय २।३२ = दीपक
दुद्ध २।३१ = दुग्ध

सर्वनाम

संशोधन

णाह णाह १।४२
पिय-पिय १।३२,४३
भो १।९, २।२७
री-री २।२०
रे १।१५,२८
हे १।४४

क्रिया

मुवति २।२३
मुच्चइ २।३४
मुणहि २।६
मुच्छहि २।२
मुणइ १।३१, १।७,७, १।६
मुणिहि १।१५
मुणेइ १।७
मुवइ १।४१
मुक्कमि १।२३

[र]

रमंति १।५
रमण १।२६
रसंत १।२६, २।१२
रक्खे १।४२
रुच्चइ १।३८
रक्खहिं १।११,३४
रसंति २।२२
रसिय २।२३
रक्खहु १।४४,४५
रसइ १।४,७,१५,३१
रुच्चइ १।६
रुवंती १।४२,४२
रुवहि १।४३
रोलहि २।२९
रोवइ १।४२,१४
रोवहि १।४३, २।२
रोपहि १।९
रोवंति १।१४

[ल]

लग्गउ १।११,११,२८,३४
१।४६, २।६
लवइ २।४
लसइ १।२९
लहेसहि २।३६
लग्गइ १।३०,३८
लग्गइं १।३०, २।१
लब्भइ १।४१
लग्गय १।४२
लवमि १।३३
लवंति
लईयउ १।३६
ललिहहि २।३१
लेहि १।१७,१७,१९; २।१८
लेइ १।१९, २।२, २।१२
लेविणु १।१६,२५,३०; २।६,२०
लेसमि २।२९
लेसइ १।४३
लेखमि १।२४
लद्धे २।६
लइय १।१३,१६; २।३३
लहइ १।१
लवइ २।४
लाइ १।२८
लवहि २।१८
लावति १।७
लावइ १।३८
लायंतहं २।२२
लिमहि १।१७
लितु १।१६,४२
लिहहि १।१७, १७
लिज्जइ १।३०, २।४
लिहियहि १।१७
लोलहि १।३७
लिहाइ २।३

[व]

वट्टइ १।६
वट्टहि २।१२
वज्जरेहि १।४०
वंदेसहि २।३६
वज्जिज्जइ २।२७
वारसि १।१७
वारह १।१४
वालउ १।३३
वायंतइ १।२९
वट्टइ १।२०,३३
वज्जहो २।६
वंदय २।६
वंदइ १।२३,३२
वहइ १।४१,३,३
वसइ १।४६,५,५ २।२८
वज्जहि १।२८
वज्जइ १।१४
वइसि १।९
वसहि २।११,३,४
वलइ १।३८
वलहि २।२४
विणोयहि २।३२
विफरइ १।६
विभासइ १।४१
विणासइ १।४१
विवारहि १।४३
विसारहो १।२२
वियारहि १।२१
विहडावण १।४३
विट्ठिहि १।१५
विलाइ १।४१
विहाइ १।४१
वीचलइ १।२३
विछोडइ १।२९
विहसइ १।३८
विलसइ १।१४
विजाणहि २।१०
बोलइ २,४,७,२४
बोल्लइ १।८
बोल्लिज्जइ १।३३
वुच्चइ २।१२, २।२२
वुज्झइ १।७
वुल्लावइ १।८,१२,१३,४८
वीसरइ १।१५,२२,२३
वीसरहु १।२२,२२, १।२२,२२
वीसरहु १।२२
वीसरहि १।२४,२८, १।२८,२८
विवाणि १।१७
विलसहि १।३१
विहुणि १।३६

सामान्य भूत

सा. भू. कृ.

कृ. विशेषण

पूर्वकालिक क्रिया

अव्यय

[अ]

अव १।२९,४४, २।२२
अहवा १।१५
अग्गइं १।९,१३,३०, २।१४
अंत २।७,३२
अहि २।२६,२७
अहणिसु १।३१, २।३२
अवरु २।८, १४, ३६, ८,
    १।१२, २९
अंतरि १।१७
अवरइं २।११,१३,२८
अइ १।३,१४,१५,१५,१९,३३,
    २।६,८,१५,१९,२०,२८,
अद्ध-रत्ति २।१२
अज्जवि १।४७
अहो १।४४
अरु १।१०
आपुणु १।११
आयइं १।४४
आसण्ण २।२६
आपणी २।११
आपु-आपु १।२५
आइयाइं २।२२
आमु २।७,१४

[इ]

इहि १।१३, २।२८
इम १।१५,३४,३५,२०,४३,
    २।१४,१४
इउ १।४३
इन २।१४,१४
इत्यंतरि २।३४
इय १।९,११,१२,३९, २।७,
    १०, २।१०,१२,१२,१२,
    १९,३३,

[उ]

उल १।३,२८
उद्ध १।४५
उहु १।३८
उण १।३९
उवरि १।२७, २।३५
उपरा-उपरि १।२८
उप्परि २।२५
उवरू १।२७

[ए]

एयहो १।१३
एयहि १।२०
एउ १।६,२१,२५, २।३
एसहु २।१७
एव १।५,१४,१८, २।१२,३२,
    ३५,३६
एम १।८,९,९,२०,२३,३३,
    २।४,१६,१६,३२,३५
एहि २।३१
एत्थु २।१२
एवि २।११
एत्तहि १।३३,३५,४२,४५
    २।१,२,३०
एवमाइ १।४५, २।२४
एकमेक्क २।२३
एकम्मकि १।१९
एम १।३०, २।३७,

(सर्वनाम अव्यय)

[क]

कलियहि २।३१
कहि १।४३
कमेण १।१७
कारणु १।१६
कि (प्र.वा.) १।४,१३,१७,२९,
    ४४,४०, २।२,४,४,१४,
    २०, २९,
किय (प्र. वा.) १।११,११,२६,
    २।१७,१७
किर १।१०,१४,४४, २।५,
    १२,१८
किउ १।२५,२६, २।२,७,
    २।१२,१५,१८,२४,२४
को १।११, २।४,९, २।१४
कुवा २।१२
केवल १।२२

[ख]

खणेण २।१२
खणु १।३३, २।१८
खलु १।१५

[घ]

घोर १।१८,४०,४१, २।३६

[च]

चिर २।३, ३९

[ज]

जइ-जइ १।१६
जत्थ १।४२,४९
जहि-जहि १।१८, २।३६

संख्या

[स]

सउ २।८,९,१२,३१
सत्तमिय २।११
सत्तरि २।२२
सय २।१७
सयपंच १।१५,२६
सातसइ २।१२
सातसय २।२०,३४
सयसत्त १।२५
सहस-अट्ठ २।३५
सयसत्तय १।३७
सत्तरी १।७
सहसु २।१२
सहस १।१७,३२,३४,३७
सयइं १।३०,२।१०,१०
सातउ २।१२,१७
सुद्ध २।१०
सोलह-सइ २।१२
सोलह-सय २।११

परसग

सेत्तिय १।२१
केरि १।१७,२९

क्रिया विशेषण

●

Bhāratīya Jñānapīṭha
Mūrtidevī Jaina Granthamālā

General Editors :

Dr. H. L. JAIN, Balaghat : Dr. A. N. UPADHYE, Mysore.

The Bhāratīya Jñānapīṭha, is an Academy of Letters for the advancement of Indological Learning. In pursuance of one of its objects to bring out the forgotten, rare unpublished works of knowledge, the following works are critically or authentically edited by learned scholars who have, in most of the cases, equipped them with learned Introductions, etc. and published by the Jñānapīṭha.

Mahābandha or the Mahādhavalā :

This is the 6th Khaṇḍa of the great Siddhānta work *Ṣaṭkhaṇḍāgama* of Bhūtabali : The subject matter of this work is of a highly technical nature which could be interesting only to those adepts in Jaina Philosophy who desire to probe into the minutest details of the Karma Siddhānta. The entire work is published in 7 volumes. The Prākrit Text which is based on a single Ms. is edited along with the Hindī Translation. Vol. I is edited by Pt. S. C. DIWAKAR and Vols. II to VII by Pt. PHOOLACHANDRA. Prākrit Grantha Nos. 1, 4 to 9. Super Royal Vol. I : pp. 20 + 80 + 350; Vol. II : pp. 4 + 40 + 440; Vol. III : pp. 10 + 496; Vol. IV : pp. 16 + 428; Vol. V : pp. 4 + 460; Vol. VI : pp. 22 + 370; Vol. VII : pp. 8 + 320. First edition 1947 to 1958. Vol. I Second edition 1966. Price Rs. 15/– for each vol.

Karalakkhaṇa :

This is a small Prākrit Grantha dealing with palmistry just in 61 gāthās. The Text is edited along with a Sanskrit Chāyā and Hindī Translation by Prof. P. K. MODI. Prākrit Grantha No. 2. Third edition, Crown pp. [illegible]. Third edition 1964. Price Rs. 1/50.

Madanaparājaya :

An allegorical Sanskrit Campū by Nāgadeva (of the Saṁvat 14th century or so) depicting the subjugation of Cupid. Critically edited by Pt. RAJKUMAR JAIN with a Hindī Introduction, Translation, etc. Sanskrit Grantha No. 1. Super Royal pp. 14 + 58 + 144. Second edition 1964. Price Rs. [illegible]

Kannaḍa Prāntīya Tāḍapatrīya Grantha-sūcī :

A descriptive catalogue of Palmleaf Mss. in the Jaina Bhaṇḍāras of Mūḍbidri, Karkal, Aliyoor, etc. Edited with a Hindī Introduction, etc. by Pt. K. BHUJABALI SHASTRI. Sanskrit Grantha No. 2. Super Royal pp. [illegible]. First edition 1948, Price Rs. 13/–.

Ratna-Mañjūṣā with Bhāṣya :

An anonymous treatise on Sanskrit prosody. Edited with a critical Introduction and Notes by Prof. H. D. VELANKAR. Sanskrit Grantha No. 5. Super Royal pp. 8 + 4 + 72. First edition 1949. Price Rs. 3/-.

Nyāyaviniścaya-vivaraṇa :

The Nyāyaviniścaya of Akalaṅka (about 8th century A. D.) with an elaborate Sanskrit commentary of Vādirāja (*c*. 11th century A. D.) is a repository of traditional knowledge of Indian Nyāya in general and of Jaina Nyāya in particular. Edited with Appendices, etc. by Pt. MAHENDRAKUMAR JAIN. Sanskrit Grantha Nos. 3 and 12. Super Royal Vol. I : pp. 68 + 546; Vol. II : pp. 66 + 468. First edition 1949. and 1954. Price Rs. 18/-each.

Kevalajñāna-Praśna-cūḍāmaṇi :

A treatise on astrology, etc. Edited with Hindī Translation, Introduction, Appendices, Comparative Notes etc. by Pt. NEMICHANDRA JAIN. Sanskrit Grantha No. 7. Second edition 1969. Price Rs. 5/-.

Nāmamālā :

This is an authentic edition of the Nāmamālā, a concise Sanskrit Lexicon of Dhanaṁjaya (*c*. 8th century A. D.) with an unpublished Sanskrit commentary of Amarkīrti (*c*. 15th century A. D.). The Editor has added almost a critical Sanskrit commentary in the form of his learned and intelligent foot-notes. Edited by Pt. SHAMBHUNATH TRIPATHI, with a Foreword by Dr. P. L. VAIDYA and a Hindī Prastāvanā by Pt. MAHENDRAKUMAR. The Appendix gives Anekārtha nighaṇṭu and Ekākṣarī-kośa. Sanskrit Grantha No. 6. Super Royal pp. 16 + 140. First edition 1950. Price Rs. 4/50.

Samayasāra :

An authoritative work of Kundakunda on Jaina spiritualism. Prākrit Text, Sanskrit Chāyā. Edited with an Introduction, Translation and Commentary in English by Prof. A. CHAKRAVARTI. The Introduction is a masterly dissertation and brings out the essential features of the Indian and Western thought on the all important topic of the Self. English Grantha No. 1. Super Royal pp. 10 + 162 + 244. Second edition 1971. Price Rs. 15/—.

Jātakaṭṭhakathā :

This is the first Devanāgarī edition of the Pāli Jātaka Tales which are a storehouse of information on the cultural and social aspects of ancient India. Edited by Bhikshu DHARMARAKSHITA. Pāli Grantha No. 1, Vol. 1. Super Royal pp. 16 + 384. First edition 1951. Price Rs. 9/-.

Mahāpurāṇa :

It is an important Sanskrit work of Jinasena-Guṇabhadra, full of encyclopaedic information about the 63 great personalities of Jainism and about Jaina lore in general and composed in a literary style. Jinasena (837 A. D.) is an outstanding scholar, poet and teacher; and he occupies a unique

place in Sanskrit Literature. This work was completed by his pupil Guṇabhadra. Critically edited with Hindī Translation, Introduction, Verse Index, etc. by PT. PANNALAL JAIN. Sanskrit Grantha Nos. 8, 9 and 14. Super Royal : Vol. I : pp. 8 + 68 + 746, Vol. II : pp. 8 + 556; Vol. III : pp. 24 + 708; Second edition 1963–68. Price Rs. 20/- each.

Vasunandi Śrāvakācāra :

A Prākrit Text of Vasunandi (*c.* Saṁvat first half of 12th century) in 546 gāthās dealing with the duties of a householder, critically edited along with a Hindī Translation by PT. HIRALAL JAIN. The Introduction deals with a number of important topics about the author and the pattern and the sources of the contents of this Śrāvakācāra. There is a table of contents. There are some Appendices giving important explanations, extracts about Pratiṣṭhāvidhāna, Sallekhanā and Vratas. There are 2 Indices giving the Prākrit roots and words with their Sanskrit equivalents and an Index of the gāthās as well. Prāktit Grantha No. 3. Super Royal pp. 230. First edition 1952. Price Rs. 6/-.

Tattvārthavārttikam or Rājavārttikam :

This is an important commentary composed by the great logician Akalaṅka on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti. The text of the commentary is critically edited giving variant readings from different Mss. by Prof. MAHENDRAKUMAR JAIN. Sanskrit Grantha Nos. 10 and 20. Super Royal Vol. I : pp. 16 + 430; Vol. II : pp. 18 + 436. First edition 1953 and 1957. Price Rs. 12/- for each Vol.

Jinasahasranāma :

It has the Svopajña commentary of Paṇḍita Āśādhara (V. S. 13th century). In this edition brought out by PT. HIRALAL a number of texts of the type of Jinasahasranāma composed by Āśādhara, Jinasena, Sakalakīrti and Hemacandra are given. Āśādhara's text is accompanied by Hindī Translation. Śrutasāgara's commentary of the same is also given here. There is a Hindī Introduction giving information about Āśādhara, etc. There are some useful Indices. Sanskrit Grantha No. 11. Super Royal pp. [illegible]. First edition 1954. Price Rs. 6/-.

Purāṇasāra-Saṁgraha :

This is a Purāṇa in Sanskrit by Dāmanandi giving in a nutshell the lives of Tīrthaṁkaras and other great persons. The Sanskrit text is edited with a Hindī Translation and a short Introduction by Dr. G. C. JAIN. Sanskrit Grantha Nos. 15 and 16. Crown Part I : pp. 20 + [illegible]; Part II : pp. 16 + 206. First edition 1954 and 1955. Price Rs. 5/- each. (out of print)

Sarvārtha-Siddhi :

The Sarvārtha-Siddhi of Pūjyapāda is a lucid commentary on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti called here by the name Gṛdhrapiccha. It is edited here by PT. PHOOLCHANDRA with a Hindī Translation, Introduction, a table of contents and three Appendices giving the Sūtras, quoted in the commentary and a list of technical terms. Sanskrit Grantha No. 13. Double Crown pp. 116 + 505, Second edition 1971, Price Rs. [illegible].

Jainendra Mahāvṛtti :

This is an exhaustive commentary of Abhayanandi on the *Jainendra Vyākaraṇa*, a Sanskrit Grammar of Devanandi alias Pūjyapāda of circa 5th-6th century A. D. Edited by Pts. S. N. TRIPATHI and M. CHATURVEDI. There are a Bhūmikā by Dr. V. S. AGRAWALA, *Devanandikā Jainendra Vyākaraṇa* by PREMI and *Khilapāṭha* by MIMĀṀSAKA and some useful Indices at the end. Sanskrit Grantha No. 17. Super Royal pp. 56 + 506. First edition 1956. Price Rs. 18/-.

Vratatithinirṇaya :

The Sanskrit Text of Sinhanandi edited with a Hindī Translation and detailed exposition and also an exhaustive Introduction dealing with various Vratas and rituals by Pt. NEMICHANDRA SHASTRI. Sanskrit Grantha No. 19. Crown pp. 80 + 200. First edition 1956. Price Rs. 5/-.

Pauma-cariu :

An Apabhraṁśa work of the great poet Svayambhū (677 A. D.). It deals with the story of Rāma. The Apabhraṁśa text with Hindī Translation and Introduction of Dr. DEVENDRAKUMAR JAIN, is published in 5 Volumes. Apabhraṁśa Grantha. Nos. 1, 2, 3, 8 & 9. Crown Vol. I : pp. 28 + 333; Vol. II : pp. 12 + 377; Vol. III : pp. 6 + 253, Vol. IV : pp. 12 + 342, Vol. V : pp. 18 + 354. First edition 1957 to 1970. Price Rs. 5/- for each vol.

Jīvaṁdhara-Campū :

This is an elaborate prose Romance by Haricandra written in Kāvya style dealing with the story of Jīvaṁdhara and his romantic adventures. It has both the features of a folk-tale and a religious romance and is intended to serve also as a medium of preaching the doctrines of Jainism. The Sanskrit Text is edited by PT. PANNALAL JAIN along with his Sanskrit Commentary, Hindī Translation and Prastāvanā. There is a Foreword by PROF. K. K. HANDIQUI and a detailed English Introduction covering important aspects of Jivaṁdhara tale by Drs. A. N. UPADHYE and H. L. JAIN. Sanskrit Grantha No. 18. Super Royal pp. 4 + 24 + 20 + 344. First edition 1958. Price Rs. 15/-.

Padma-purāṇa :

This is an elaborate Purāṇa composed by Raviṣeṇa (V. S. 734) in stylistic Sanskrit dealing with the Rāma tale. It is edited by PT. PANNALAL JAIN with Hindī Translation, Table of contents, Index of verses and Introduction in Hindī dealing with the author and some aspects of this Purāṇa. Sanskrit Grantha Nos. 21, 24, 26. Super Royal Vol. I : pp. 44 + 548; Vol. II : pp. 16 + 460; Vol. III : pp. 16 + 472. First edition 1958-1959. Price Vol. I Rs. 16/-, Vol. II Rs. 16/-, Vol. III Rs. 13/-.

Siddhi-viniścaya :

This work of Akalaṅkadeva with Svopajñavṛtti along with the commentary of Anantavīrya is edited by Dr. MAHENDRAKUMAR JAIN. This is a new find and has great importance in the history of Indian Nyāya literature. It is a feat of editorial ingenuity and scholarship. The edition is equipped with

exhaustive, learned Introductions both in English and Hindi, and they shed abundant light on doctrinal and chronological problems connected with this work and its author. There are some 12 useful Indices. Sanskrit Grantha Nos. 22, 23. Super Royal Vol. I : pp. 16 + 174 + 370; Vol II : pp. 8 + 808. First edition 1959. Price Rs. 20/-and Rs. 16/-.

Bhadrabāhu Saṁhitā :

A Sanskrit text by Bhadrabāhu dealing with astrology, omens, portents, etc. Edited with a Hindī Translation and occasional Vivecana by PT. NEMICHANDRA SHASTRI. There is an exhaustive Introduction in Hindī dealing with Jain Jyotiṣa and the contents, authorship and age of the present work. Sanskrit Grantha No. 25. Super Royal pp. 72 + 416. First edition 1959. Price Rs. 14/-.

Pañcasaṁgraha :

This is a collective name of 5 Treatises in Prākrit dealing with the Karma doctrine the topics of discussion being quite alike with those in the Gommaṭasāra, etc. The Text is edited with a Sanskrit Commentary, Prākrit Vṛtti by PT. HIRALAL who has added a Hindī Translation as well. A Sanskrit Text of the same name by one Śrīpāla is included in this volume. There are a Hindī Introduction discussing some aspects of this work, a Table of contents and some useful Indices. Prākrit Grantha No. 10. Super Royal pp. 60 + 804. First edition 1960. Price Rs. 21/-.

Mayaṇa-parājaya-cariu :

This Apabhraṁśa Text of Harideva is critically edited along with a Hindī Translation by PROF. Dr. HIRALAL JAIN. It is an allegorical poem dealing with the defeat of the god of love by Jina. This edition is equipped with a learned Introduction both in English and Hindī. The Appendices give important passages from Vedic, Pāli and Sanskrit Texts. There are a few explanatory Notes, and there is an Index of difficult words. Apabhraṁśa Grantha No. 5. Super Royal pp. 88 + 90. First edition 1962. Price Rs. 8/-.

Harivaṁśa Purāṇa :

This is an elaborate Purāṇa by Jinasena (Śaka 705) in stylistic Sanskrit dealing with the Harivaṁśa in which are included the cycle of legends about Kṛṣṇa and Pāṇḍavas. The text is edited along with the Hindī Translation and Introduction giving information about the author and this work, a detailed Table of contents and Appendices giving the verse Index and an Index of significant words by PT. PANNALAL JAIN. Sanskrit Grantha No. 27. Super Royal pp. 12 + 16 + 812 + 160. First edition 1962. Price Rs. [illegible]

Karmaprakṛti :

A Prākrit text by Nemicandra dealing with Karma doctrine. Its contents being allied with those of Gommaṭasāra. Edited by PT. HIRALAL JAIN with the Sanskrit commentary of Sumatikīrti and Hindī Ṭīkā of Paṇḍita Hemarāja, as well as translation into Hindī with Viśeṣārtha. Prākrit Grantha No. 11, Super Royal pp. 32 + 160. First edition 1964. Price Rs. [illegible]

Upāsakādhyayana :

It is a portion of the Yaśastilaka-campū of Somadeva Sūri. It deals with the duties of a householder. Edited with Hindi Translation, Introduction and Appendices, etc. by Pt. KAILASHCHANDRA SHASTRI. Sanskrit Grantha No. 28. Super Royal pp. 116 + 539. First edition 1964. Price Rs. 16/-.

Bhojacaritra :

A Sanskrit work presenting the traditional biography of the Paramāra Bhoja by Rājavallabha (15th century A. D.). Critically edited by Dr. B. CH. CHHABRA, Jt. Director General of Archaeology in India and S. SANKARNARAYANA with a Historical Introduction and Explanatory Notes in English and Indices of Proper names. Sanskrit Grantha No. 29. Super Royal pp. 24 + 192. First edition 1964. Price Rs. 8/-.

Satyaśāsana-parīkṣā :

A Sanskrit text on Jain logic by Ācārya Vidyānanda critically edited for the first time by Dr. GOKULCHANDRA JAIN. It is a critique of selected issues upheld by a number of philosophical schools of Indian Philosophy. There is an English compendium of the text, by Dr. NATHMAL TATIA. Sanskrit Grantha No. 30. Super Royal pp. 56 + 34 + 62. First edition 1964. Price Rs. 5/-.

Karakaṇḍa-cariu :

An Apabhraṁśa text dealing with the life story of king Karakaṇḍa, famous as 'Pratyeka Buddha' in Jaina & Buddhist literature. Critically edited with Hindī & English Translations, Introductions, Explanatory Notes and Appendices, etc. by Dr. HIRALAL JAIN. Apabhraṁśa Grantha No 4. Super Royal pp. 64 + 278. 1964. Price Rs. 15/-.

Sugandha-daśamī-kathā :

This edition contains Sugandha-daśamī-kathā in five languages, viz. Apabhraṁśa, Sanskrit, Gujarātī, Marāṭhī and Hindī, critically edited by Dr, HIRALAL JAIN. Apabhraṁśa Grantha No. 6. Super Royal pp. 20 + 26 + 100 + 16 and 48 Plates. First edition 1966. Price Rs. 11/-.

Kalyāṇakalpadruma :

It is a Stotra in twenty five Sanskrit verses Edited with Hindī Bhāṣya and Prastāvanā, etc. by Pt. JUGALKISHORE MUKHTAR. Sanskrit Grantha No. 32. Crown pp. 76. First edition 1967. Price Rs. 1/50.

Jaṁbū sāmi cariu :

This Apabhraṁśa text of Vīra Kai deals with the life story of Jaṁbū Svāmi a historical Jaina Ācārya who passed in 463 A. D. The text is critically edited by Dr. VIMAL PRAKASH JAIN with Hindī translation, exhaustive introduction and indices, etc. Apabhraṁśa Grantha No. 7. Super Royal pp. 16 + 152 + 402. First edition 1968. Price Rs. 15/-.

Gadyacintāmaṇi :

This is an elaborate prose romance by Vādībha Singh Sūri, written in Kāvya style dealing with the story of Jīvaṁdhara and his romantic adventures. The Sanskrit text is edited by PT. PANNALAL JAIN along with his Sanskrit Commentary, Hindī Translation, Prastāvanā and indices, etc. Sanskrit Grantha No. 31. Super Royal pp. 8 + 40 + 258. First edition 1968. Price Rs. 12/-.

Yogasāra Prābhṛta :

A Sanskrit text of Amitagati Ācārya dealing with Jaina Yoga vidyā. Critically edited by Pt. JUGALKISHORE MUKHTAR with Hindī Bhāṣya, Prastāvanā, etc. Sanskrit Grantha No. 33. Super Royal pp. 44 + 236. First edition 1968, Price Rs. 8/-.

Karma-Prakṛti :

It is a small Sanskrit text by Abhayacandra Siddhāntacakravartī dealing with the Karma doctrine. Edited with Hindī translation, etc. by Dr. GOKUL CHANDRA JAIN. Sanskrit Grantha No. 34. Crown pp. 92. First edition 1968. Price Rs. 2/-.

Dvisaṁdhāna Mahākāvya :

The Dvisaṁdhāna Mahākāvya also called Rāghava-Pāṇḍavīya of Dhanaṁjaya is perhaps one of the oldest if not the only oldest available Dvisaṁdhāna Kāvya. Edited with Sanskrit commentary of Nemicandra and Hindī translation by Prof. KHUSHALCHANDRA GORAWALA. There is a learned General Editorial by Dr. H. L. Jain and Dr. A. N. Upadhye. Sanskrit Grantha No. 35. Super Royal pp. 32 + 401, First edition 1970. Price Rs. 15/-.

Saḍdarśanasamuccaya :

The earliest known compendium giving authentic details about six Darśanas, i. e. six systems of Indian Philosophy by Ācārya Haribhadra Sūri, Edited with the commentaries of Guṇaratna Sūri and Somatilaka and with Hindī translation, Appendices, etc. by Pt. Dr. MAHENDRA KUMAR JAINA NYĀYĀCĀRYA. There is a Hindī Introduction by Pt. D. D. MALVANIA. Sanskrit Grantha No. 36. Super Royal pp. 22 + 536. First edition 1970. Price Rs. 22/-.

Śākaṭāyana Vyākaraṇa with Amoghavṛtti :

An authentic Sanskrit Grammar with exhaustive auto-commentary. Edited by PT. ŚAMBHU NĀTHA TRIPĀTHI. There is a learned English Introduction by PROF. Dr. R. BIRWE of Germany, and some very useful Indices, etc. Sanskrit Grantha No. 37. Super Royal pp. 14 + 127 + 4[illegible]. First edition 1971. Price Rs. 32/-.

Jainendra-Siddhānta Kośa :

It is an Encyclopaedic work of Jaina technical terms and a source book of topics drawn from a large number of Jaina Texts. Extracts from the basic sources and their translations in Hindī with necessary references are given.

Some Twenty-one thousand subjects are dealt in four vols. Compiled and edited by Śrī Jinendra Varṇī. All the four volumes are published and as Sanskrit Grantha No. 38, 40, 42, and 44. Super Royal pp. Vol. I pp. 516, Vol. II pp. 642, Vol. III pp. 637, Vol.IV pp. 544. First edition 1970-73. Price Vol. I Rs. 50/-, Vol. II Rs. 55/-, Vol. III Rs. 55/-, and Vol. IV Rs. 50/-. Advance Price for full set Rs. 150/-.

Dharmaśarmābhyudaya :

This is a Sanskrit Mahākāvya of very high standard by Mahākavi Haricandra. Edited with Sanskrit commentary, Hindī translation, Introduction and Appendices, etc. by PT. PANNALAL JAIN. Sanskrit Grantha No. 39. Super Royal pp. 30 + 397. First edition 1971. Price Rs. 20/-.

Nayacakra (Dravyasvabhāvaprakāśaka) :

This is a Prakrit text by Śrī Māilla Dhavala dealing with the Jaina Theory of Naya covering all the other topic dealt in the Ālāpapaddhati, Edited with Hindī translation and useful indices, etc. by PT. KAILASH CHANDRA SHASTRI. In this edition Ālāpapaddhati of Devasena and Nayavivaraṇa from Tattvārthavārtika are also included with Hindī translations. Prakrit Grantha No. 12. Super Royal pp. 50 + 276. First edition 1971. Price Rs. 15/-.

Purudevacampū :

It is a stylistic Campūkāvya in Sanskrit composed by Arhaddāsa of the 13-14th century of the Vikrama era. Edited with a Sanskrit Commentary, Vāsantī, and Hindi Translation by Pt. Pannalal Jaina. Sanskrit Grantha No. 41. Super Royal pp. 36 + 428. Delhi 1972. Price Rs. 21/-.

Ṇāyakumāracariū

An Apabhraṁśa Poem of Puṣpadanta (10th century A.D.), critically edited from old Mss. with an Exhaustive Introduction, Hindi Translation, Glossary and Indices, Old Ṭippaṇa and English Notes by Dr. Hiralal Jaina. This is a Second Revised edition. Apabhraṁśa Grantha No. 10. Super Royal pp. 32 + 48 + 276. Delhi 1972. Price Rs. 18/-.

Jasaharacariū :

It was first edited by Dr. P. L. Vaidya. Here is a Second edition of the same with the addition of Hindi Translation and Hindi Introduction by Dr. Hiralal Jaina. This is the famous Apabhraṁśa Poem of Puṣpadanta (10th century A.D.), so well-known for its story. Apabhraṁśa Granth No. 11. Super Royal pp. 64 + 246. Delhi 1972. Price Rs. 18/-.

Dakṣiṇa Bhārata Men Jaina Dharma :

A study in the South Indian Jainism by PT. KAILASH CHANDRA SHASTRI. Hindī Grantha No. 12. Demy pp. 209. First edition 1967. Price Rs. 7/-.

Sanskrit Kāvya ke Vikāsa men Jaina Kaviyon kā Yogadāna :

A study of the contribution of Jaina Poets to the Development of Sanskrit Kāvya literature by Dr. NEMI CHANDRA SHASTRI. Hindī Grantha No. 14. Demy pp. 32 + 684. First edition 1971. Price Rs. 30/-.

For Copies Please write to :

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪṬHA,
B/45-47, Connaught Place, New Delhi-1